भोजराज विरचित चम्पूरामायण का आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल्० उपाधि
के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध
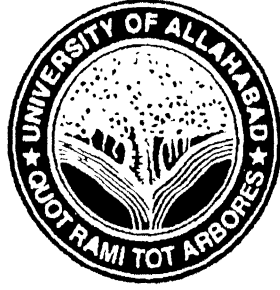
निर्देशिका
डॉ० (श्रीमती) ज्ञान देवी श्रीवास्तव
एम०ए० (स्वर्ण पदक प्राप्त) डी०फिल्०
प्रो० तथा भू०पू० अध्यक्ष संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

शोधकर्त्री
कु० राधा रानी वर्मा
एम०ए० (संस्कृत)

2001

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्राक्कथन

मानव जीवन विश्व के समस्त प्राणियों में सर्वोत्तम माना गया है। मानव के अतिरिक्त अन्य प्राणियो का अधिकार मात्र कर्म के फल का भोग है। किन्तु मानव का कर्मफल भोग एवं कर्म करने दोनों का अधिकार है। इसीलिए इसकी सर्वोत्तकृष्टता स्वीकार की जाती है।

मानव यद्यपि विश्व के समस्त देशों में उत्कृष्ट माने जाते हैं। तथापि भारतवर्ष में उसमें भी पवित्र देवभूमि समुत्पत्ति महान् सौभाग्य का विषय होता है। सौभाग्य से मेरा जन्म भगवती भागीरथी के निकट एक नगर (फतेहपुर) में जन्म हुआ। माता-पिता के स्नेह से पालित-लालित हुई प्रारम्भिक शिक्षा के अनन्तर देवभाषा संस्कृत के माध्यम से स्नातकोत्तर कक्षाओं तक के अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ । उन पूज्य माता-पिता के प्रति अपनी श्रद्धा समर्पित करते हुए नमन करती हूँ।

मेरे अध्ययन कार्य आदि के सम्पादन में मेरी बहन एवं मेरे अग्रज भाइयों का सर्वथा पितृवत् स्नेह एवं आर्शीवचन रहा उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

मेरे धर्म भ्राता अग्रज श्री मेवालाल वर्मा जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जो सर्वदा मेरे उन्नति में सहायक रहे।

जिनसे सर्वदा गुरू एंवं माता का हार्दिक स्नेह प्राप्त हुआ मेरे उन्नति में जिनका महत्वपूर्ण योगदान है। जिनका आर्शीवचन सर्वदैव मेरा संरक्षक रहता है। उन ममतामयी गुरु श्रीमती अन्नपूर्णा साही के प्रति श्रद्धा से नमन करती हुई, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

प्रारम्भ से लेकर स्नातकोत्तर अध्ययन तक की सम्पूर्ण प्रक्रिया किसी न किसी रूप में सम्पन्न तो होती है, किन्तु शोध कार्य गुरुतर भार तब तक व्यक्ति

वहन करने में सक्षम नहीं होता जब तक ऐसे परम विद्वान् विचारक अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न आचार्य प्राप्त न हो। इस विषय में मै अपने को अत्यन्त सौभाग्यशालिनी समझती हूँ जो मुझे ऐसे ही परम विदुषी पूज्य आचार्या का सानिध्य प्राप्त हुआ।

मेरी मार्ग निर्देशिका डॉ० ज्ञान देवी श्रीवास्तव एम०ए० संस्कृत (लब्ध स्वर्ण पदक) डी०फिल० भूतपूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष का स्नेह आर्शीवचन एवं पग-पग पर मार्ग दर्शन मेरे लिए सर्वथा सहायक रहा, जिसे मैं अपने पूर्व जन्म के पुण्य कर्मों का फल समझती हूँ। इन पूज्य आचार्या के सानिध्य में बैठकर जहाँ ग्रन्थ की दृढ़तर ग्रन्थियाँ शिथिल हुई वहीं उनके वैदुष्यपूर्ण कुशल मार्ग दर्शन में मेरा ग्रन्थ सम्पन्न हुआ।

अतः इन परम विदुषी स्नेहमयी पूज्य आचार्या के प्रति श्रद्धायुक्त नमन करती हुई हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

इनके ही सत्प्रेरणा से मुझे शोधकार्य करने में प्रवृत्ति हुई। एम०ए० तक के अध्ययन से मेरी संतुष्टि नहीं हुई। मेरी इनके अतिरिक्त भी विशिष्ट अध्ययन की इच्छा थी किन्तु शोध कार्य जैसे- गुरुतर भार वहन का सामर्थ्य मैं अपने अन्दर अनुभव नहीं कर पा रही थी। पूज्य आचार्या के स्नेहमय सम्बोधन एवं उत्साहवर्धन से मेरी इस कार्य में प्रवृत्ति हुई।

राधा रानी
(कु० राधा रानी वर्मा)

शोधग्रन्थ का विवेचन-प्रकार (भूमिका)

शोध प्रबन्ध को नो अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में चम्पूरामायण के रचनाकार राजा भोज का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है। जिनमें उनका वंश परिचय, उनका काल, शासन व्यवस्था, सामाजिक परिवेश, भोजराज का सम्प्रदाय, उनकी साहित्यिक साधना, उनके द्वारा लिखे गये ग्रन्थ आदि का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है। साथ ही इतिहास में प्रसिद्ध धारा नरेश के अतिरिक्त अन्य भोज नामक व्यक्तियों का परिचय दिया गया है।

द्वितीय अध्याय काव्य के स्वरूपों को ले करके है। इसमें काव्य का लक्षण, काव्य का महत्व, काव्य के भेद के साथ-साथ चम्पू काव्य के लक्षण को प्रस्तुत करते हुए चम्पू काव्य के इतिहास को क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है। इसी में चम्पू-रामायण काव्य का भी पूर्ण परिचय दिया गया है।

तृतीय अध्याय चम्पूरामायण काव्य के स्वरूप एवं विवेचन प्रकार को ले करके है। इसमें चम्पूरामायण काव्य का सम्पूर्ण कथानक, मूलस्त्रोत, चम्पूरामायण की मौलिकता आदि विषय विवेचित हुए हैं।

चतुर्थ अध्याय औचित्य एवं वाल्मीकि रामायण तथा चम्पू-रामायण के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक विवेचन से सम्बन्धित है। इसमें चम्पूरामायण के कथानक में कविकृत परिवर्तनों के औचित्य के साथ-साथ वाल्मीकि रामायण की मुख्य कथा संरचना का विवेचन हुआ है। तदनन्तर वाल्मीकि एवं चम्पूरामायण के कथानकगत एवं घटनागत साम्य वैषम्य के विवेचन के साथ-साथ ऋष्यश्रृंगादि सत्रह उपकथाओं का साम्य एवं वैषम्य की दृष्टि से विवेचन करते हुए उनकी समीक्षा की गई है।

पंचम अध्याय में चम्पूरामायणगत वाल्मीकि राम सीता आदि लगभग बीस पात्रों का चरित्र-चित्रण एवं समीक्षा के साथ-साथ इन पात्रों के चरित्र से प्राप्त होने वाली शिक्षाओं को निरूपित किया गया है।

षष्ठ अध्याय में चम्पूरामायण मे सम्प्रात रसों का विवरण है जिसमें श्रृंगार, करुण आदि से लेकर वात्सल्य तक सभी रसों के साथ-साथ भावों एवं रसाभासों का सोदाहरण विवरण दिया गया है।

सप्तम अध्याय में श्लेषादि शब्दालंकारों तथा उपमादि अर्थालंकारों का विवेचन हुआ है जिसमें लगभग 42 अलंकारों का विवेचन हुआ है।

अष्टम अध्याय में छन्द, दोष, गुण एवं रीति का विवेचन हुआ है जिसमें मात्रिक एवं वर्णिक अनुष्टुप आदि लगभग पच्चीस छन्दों का सोदाहरण विवरण हुआ है। साथ ही दोष, गुण एवं रीति का भी सोदाहरण विचार प्रस्तुत किया गया है।

नवम अध्याय उपसंहार के रूप में है जिसमें पूर्वोक्त सभी अध्यायों के सिद्धान्त सम्मत निष्कर्षों को यथा सम्भव प्रस्तुत किया गया है।

परिशिष्ट में शोध कार्य के लिए जिन ग्रन्थों का अध्ययन किया गया है। शोध कार्य की प्रामाणिकता के रूप में सन्दर्भ के लिए जिनसे सहायता ग्रहण किया गया है। उन सभी का विवरण आकार आदि क्रम से दिया गया है।

अनुक्रमणिका।

क्रमांक	विषय	पृष्ठ

प्रथम अध्याय

चम्पू रामायण के रचयिता का इतिवृत्त

समाज के स्वरूप को समुचित दिशा देने वाला, उसके स्वरूप का कुशल चितेरा अपने साधना के द्वारा समाज का परम उपकारक कवि के अतिरिक्त दूसरा व्यक्ति नहीं हो सकता। समाज के दर्पण के रूप में कवि की कृति ही सर्वदा से स्वीकृति रही है। कवि न केवल रचनाओं का ही स्रष्टा होता है। वह अपने सामाजिक परिवेश को अपने ज्ञान के माध्यम से सर्वदा संस्कृत करता रहता है। कवि की पहचान उसकी प्रतिभा सम्पन्न लेखनी है जिससे अनुपम रचना साहित्य समाज को धरोहर के रूप में प्राप्त होती है। इसलिए कोई भी समाज कवि से उऋण नहीं हो सकता, विद्वानों को कति के लिए उपमान के रूप में साक्षात् प्रजापति का ही स्वरूप समझ में आया और वे कह बैठे - " अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः "।

कवियों की इस अनुपम परम्परा में परमारवंशीय भोज-राज का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। ये न केवल कुशल प्रशासक, दानी तथा शत्रुरहित सुखी समाज के निर्माता थे, अपितु संस्कृत - साहित्य का विपुल भण्डर जितना इनके कार्य-काल में समृद्ध हुआ, उतना सम्भवतः अन्य राजाओं के समय में नहीं हुआ। राजा भोज स्वमेव दुर्धष विद्वान् कवि समालोचक तथा तत्वज्ञ थे और अनेक विश्रुत विद्वानों के समीक्षक, पण्डितों तथा कवियों के आश्रयदाता थे। सरस्वती की साधना इतने सुन्दर रीति से चलती थी कि ऐसा प्रतीत होता था मानों सरस्वती का निवासभूमि राजा भोज की नगरी ही है।

भोजराज के विषय में अनेक कल्पनाएं किवदंतियों के रूप में प्राप्त होती हैं ' नामूला जनश्रुतिः ' इस सिद्धांत के अनुसार जनश्रुति को भी प्रमाणिकता अंशतः स्वीकार्य होती है, क्योंकि सत्यता का अपलाप जनश्रुतियों में भी नहीं किया जा सकता।

वंश परिचय -

राजाभोज परमार वंश के क्षत्रिय माने जाते हैं। परमार वशां की उत्पत्ति के विषय में ' नवसाहसांकचरित '[1] में एक कथा प्राप्त होती है। इसके अनुसार ' आबू पर्वत पर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ आश्रम बनाकर रहते थे। उनके पास नन्दिनी नामक कामधेनु गाय थी जिसे विश्वामित्र हठात् हरण करके अपने साथ ले गये। वसिष्ठ की धर्मपत्नी अरुन्धती इस प्रकार नन्दिनी गाय के हरण से अत्यन्त दुखी होकर रुदन करने लगी। इस प्रकार अत्यन्त दु:खी अरुन्धती को देखकर महर्षि वसिष्ठ अत्यधिक क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अर्थवमंत्र के द्वारा यज्ञ में आहुति करके अपने अग्निकुण्ड से एक वीर व्यक्ति को उत्पन्न किया। उस अग्नि कुण्ड से उत्पन्न पुरुष ने विश्वामित्र को सेना सहित पराजित करके कामधेनु को अपने अधिकार में लेकर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के पास पहुँचा दिया। उसके इस अलौकिक कार्य से प्रसन्न महर्षि वसिष्ठ ने इस वीर पुरुष का नाम परमार रख दिया, और उस क्षेत्रविशेष का राज्य इसे समर्पित कर दिया" । परमार का अर्थ होता है ' परान् शत्रु जनान मारयति नाशयति इति परमार:' अर्थात् जो शत्रुओं का नाश करे उसे परमार कहते हैं। इस कथानक से यह सिद्ध होता है कि परमार वंश की उत्पत्ति अग्नि से हुई है। यद्यपि ' वाल्मीकि - रामायण ' में विश्वामित्र एवं वसिष्ठ की परस्पर वैमनस्य की कथा बड़े विस्तार से वर्णित है। वहाँ शक, पल्लव, यवन आदि म्लेच्छों के कामधेनु द्वारा उत्पादन का कथन तो है, किन्तु इस परमार वंश के आदि पुरुष के जन्म की कथा नही है।[2]

एपिग्राफिया इण्डिका[3] में प्रकाशित उदयपुर प्रशस्ति में भी परमार वंश

---

1. नवसाहसांक सर्ग ।। श्लोक 64-76.
2. तस्या हुंभारवोत्सृष्टा: पह्लवा: शतशो नृप ॥18॥ उत्तरार्ध ।
   भूय एवासृजद् घोरांछकान् यवनमिश्रितान् ।
   तैरासीत् संवृता भूमि: शकैर्यवनमिश्रितै: ॥2।॥
   (बाल्मीकि- रामायण सर्ग 54 बालकाण्ड)
3. भाग । पृष्ठ 234, श्लोक ।।

की उत्पत्ति से सम्बन्धित उक्त कथा प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त आबू पर्वत के समीप स्थित अचलेश्वरनाथ के मंदिर से प्राप्त शिलालेख में भी उक्त विवरण प्राप्त होता है। जिसका एक श्लोक इस प्रकार है -

' तत्राथ मैत्रावरुणस्य जुह्वत
श्चण्डोडग्निकुण्डात्पुरुषः पुराभवत् ।
मत्वा मुनीन्द्रः परमाणक्षमं
स व्याहरत्त परमार संज्ञया' ।।

इस प्रकार इसके माध्यम से भी परमारवंशीय क्षत्रिय अग्नि से उत्पन्न सिद्ध होते हैं।

वी0ए0 स्मिथ का कहना है कि आबू का परमार राज्य मालवा के परमार राज्य से पहले स्थापित हुआ था।[1] परन्तु मालवा के परमारों की प्रशस्तियों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है, कि आबू पर्वत के परमार राज्य और मालव के परमार राज्य की स्थापना का समय लगभग एक ही था।

भोज ने भी अपने वंश की प्रशंसा करते हुए ' सरस्वतीकण्ठाभरण में परमार वंश की उत्पत्ति अग्नि से स्वीकार किया है। परमार, प्रतिहार, चालुक्य, चाहमान ये चार क्षत्रियों के वंशज अपने वंश की उत्पत्ति अग्नि से मानते हैं।

' वासिष्ठैः सुकृतोद्भवो [illegible]स्याग्नि कुण्डोद्भवो[2]
भूपालः परमार इत्यधिपतिः सप्ताब्धिकांचेर्भुवः
अद्याप्यद्भुतहर्षगद्गदगिरो गायन्ति यस्योद्भटं
विश्वामित्रजयोर्जितस्य भुजयोर्विस्फूजितं गुर्जराः।

आबू पर्वत इस प्रकार परमार वंशियों की उत्पत्ति स्थान है। यहीं से

---

1. Early History of Indian people Page- 410.

2. सरस्वतीकण्टाभरण पंचम परिच्छेद पृष्ठ - 32।

ये भारत-वर्ष के विभिन्न भागों में जाकर बसे। इन्ही परमारों की एक शाखा नवम शताब्दी में मालवा में आकर बसी जो मालवा के राजा के रूप में प्रसिद्ध हुए। मालवा के परमार राज्य का संस्थापक राजा उपेन्द्रराज था। इतिहास में यह कृष्णराज के नाम से प्रसिद्ध है। इसका शासनकाल विक्रम संवत के नवम शताब्दी का प्रारम्भ माना जाता है।

इनके वंश परम्परा का संक्षेप में विवरण इस प्रकार है [1] -

उपेन्द्र- ई0 सन् 808 से 837

वैरसिंह प्रथम - ई0 सन् 837 से 863

सीयक प्रथम - ई0 सन् 863 से 890-91

वाक्पति प्रथम - ई0 सन् 890-91 से 917-18 ई0 तक

वैरसिंह द्वितीय ई0 सन् 917-18 से 949 ई0 तक

सीयक द्वितीय - ई0 सन् 949 से 973 ई0 तक

(मुंज) वाक्पति द्वितीय - ई0 सन् 973-74 से 996 ई0 तक

सिन्धुराज (सिन्धुल) - ई0 सन् 996 से 999 ई0

उपुर्यक्त विवरण में वाक्पति मुंज एंव सिन्धुल सगे भाई हैं, कुछ लोगों के (भोज के प्रबन्ध) मत में सिन्धुल ज्येष्ठ एवं वाक्पति मुंज कनिष्ठ माने गये हैं। किन्तु इतिहास में वाक्पति मुंज को ही ज्येष्ठ बन्धु माना गया है। सीयक द्वितीय के उत्तराधिकारी के रूप में वाक्पति मुंज ही थे। उनके समय में मालव के परमारों की शक्ति का चरमोत्कर्ष रहा। राजा मुंज ने मुंजपति, उत्पलराज, अमोघवर्ष, पृथ्वीवल्लभ, श्रीवल्लभ आदि अनेक उपाधियों को धारण किया जो सम्मान के रूप में तत्कालीन विद्वानों से प्राप्त हुई। इससे विद्वान् एवं पराक्रमी होने की प्रमाणिकता सिद्ध होती है। उपेन्द्र-नाथ के अनुसार मुंज ने लगभग 974 ई0 में प्रशासन की बागडोर सम्भाली और 995 ई0 तक राज्य के अधिष्ठाता रहे। वाक्पति मुंज न केवल असाधारण योद्धा

---

1. परमार वंश का इतिहास पृष्ठ संख्या 20 से 59.

थे, अपितु कवि एवं विद्वान् होने के साथ-साथ विद्वानों एवं कवियों के आश्रयस्थान एवं सर्वथा शुभचिन्तक रहे। 'नवसाहसांक चरित' में 'पद्मगुप्त' ने राजा मुंज के लिये 'कविबान्धव' शब्द व्यहृत किया है।[1] 'पद्मगुप्त' ने यहाँ तक लिखा है कि 'मुंज' की विषेष कृपा से वे श्रेष्ठ कवि के मार्गों का अनुसरण करने लायक बने, तथा श्रेष्ठ काव्य रचना में इनकी सम्यक् प्रवृत्ति हो सकी।[2] 'भट्टहलायुद्ध' ने जीवन के अन्तिम समय में मुंज के आश्रम में रह कर ही व्यतीत करते हुए 'पिंगलछन्दः' सूत्र पर 'मृत संजीवनी' नामक प्रसिद्ध टीका का निर्माण किया था, और उसमें राजा 'मुंज' की प्रशंसा में टीका के पहले कई पद्यों की रचना की है।[3] इसी प्रकार 'दशरूपक' के रचनाकार 'आचार्य धनंजय' ने जो मुंज के दरबारी कवि थे, अपने ग्रन्थ में आदर सहित राजा मुंज को स्मरण किया है -

विष्णोः सुतेनापि धनंजयेन विद्वन्मनोरागनिबन्धहेतुः[4]।
आविष्कृतं मुंजमहीशगोष्ठी वैदग्ध्यभाजा दशरुपमेत् ।।

इसी प्रकार तिलक मंजरी ' पाइयलच्छी नाममाला' एवं 'सुभाषितरत्नसन्दोह' ग्रंथों के रचयिता क्रमशः 'धनपाल एवं अमितगति' मुंज के आश्रित कवि थे। 'सरस्वतीकण्ठाभरण'[5] में भी मुंज का नाम उल्लिखित हुआ है।

---

1. 'तस्यामुजन्म कवि बान्धवस्य'। 1/8
   (श्री जितेन्द्र चन्द्र भारतीय द्वारा सम्पादित नवसाहसांक चरितम्)
2. 'सरस्वतीकल्पलतैककन्दं वन्दामहे वाक्पतिराजदेवम्।
   यस्यप्रसादाद्वयभप्यनन्यकवीन्द्रचीर्णे पाथि संचरामः (6)
   (नवसाहसांक चरित प्रथम सर्ग)
3. मृत संजीवनी 4/30, पं0 उपेन्द्रनाथ विद्याभूषण द्वारा संपादित भोजप्रबन्ध की भूमिका
4. दशरुपकावलोक धनिक उपसंहार श्लोक - 86.
5. सरस्वतीकण्ठाभरण (1-83) पं0 उपेन्द्रनाथ विद्याभूषण द्वारा सम्पादित।

यद्यपि मुंज के द्वारा लिखित कोई भी ग्रंथ विशेष प्राप्त नहीं होते, किन्तु सुभाषितावलि आदि ग्रंथों में इनके नाम से इनके पद्यों को देखकर भी ये कवि थे, इसका ज्ञान होता है।[1] ऐसा आभास होता है कि राजा मुंज कवि एवं ग्रन्थकार दोनों थे। 'आचार्य धनिक' ने 'दशयपक' की टीका 'दशरूपकावलोक' में मुंजराज के एक श्लोक का दो बार उल्लेख भी किया है[2] - जिसका रचयिता उसने एक स्थान पर वाक्पतिराज लिखा है और दूसरे स्थान पर मुंज ।

' प्रणयकुपिता दृष्टवा देवीं ससम्भ्रमविस्मित -
स्त्रिभुवनगुरुर्भीत्या सद्यः प्रणामपरोऽभवत् ।
नमितशिरसो गंगालोके तया चरणाहता -
ववतु भवतस्त्र्यक्षस्यैतद्विलक्षमवस्थितम्' ।।

इसी प्रकार ' अमरूशतक ' पर ' रसिक संजीवनी ' नामक अपनी टीका में अर्जुनवर्मन ने एक श्लोक उद्धृत किया है जिसके रचयिता का नाम उसने मुंज लिखा है जिसका अपर नाम वाक्पति था और उसका पूर्वज था[3]। " अस्मत्पूर्वजस्य वाक्पतिराज - अपर नाम्नो मुंजदेवस्य " ।

महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी 'सुवृत्ततिलक'[4] कविकण्ठाभरण[5] और

---

1. ' घनोद्यानच्छायामिव मरुपथाद्दावदहनात्तुषाराम्भोवापीमिव विषविपाकादिव सुधाम।
   प्रवृद्धादुन्मादात्प्रकृतिमिव निस्तीर्य विरहाल्लभे यं त्वद्भक्तिंनिरुपमरसां शंकरकदा ।।
   सुभाषितावलि श्लोक 3414 पृष्ठ - 559-60
2. ' दशरूपक ' चतुर्थ प्रकाश सूक्त संख्या 66-67.
3. ' दासे कृतागसि भवत्युचितः प्रभूणां पादप्रहार इति सुन्दरि नास्मि दूये।
   उद्यत्कठोरपुलकांगुरकुण्टकाग्रैर्यत्खिद्यते तव पदं ननु सा व्यथा मे ।।
   अमरूशतक की रसिक संजीनी टीका पृष्ठ 23 में श्लोक सं0 22 की टीका में ।
4. ' सुवृत्तलिक ' 2-6.
5. कविकण्ठाभरण - 2।

'औचित्य -विचारचर्चा' नामक अपनी पुस्तकों में उत्पलराज द्वारा रचित विभिन्न श्लोकों को उद्धृत किया है। कवि क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में जिस एक श्लोक के रचयिता का नाम उत्पलराज लिखा है[1] उसी श्लोक के रचयिता का नाम वल्लभदेव ने वाक्पतिराज लिखा है -

अहौ वा हारे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा[2]
मणौ वा लोष्टे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः
कदा पुण्येऽरण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः'।।

इनसे इनके रचनाकार होने की पर्याप्त पुष्टि होती है। मुंजराज की मृत्यु 995 से 998 ई0 के मध्य में हुई थी। ऐसा इतिहासकारों का मत है।

राजा मुंज के बाद उनके अनुज सिन्धुल अर्थात् सिन्धुराज को राजा के रूप में स्थापित किया गया था। इसका स्पष्ट उल्लेख उदयपुर आदि प्रशस्तियों में तथा ताम्रपत्रों में पाया जाता है।

यद्यपि 'भोज प्रबन्ध' में राजा मुंज को सिन्धुराज के अनुज के रूप में चित्रित किया गया है जिसमें मृत्यु के समय सिन्धुराज बालक भोज को छोटा जानकर अपने राजनीति का स्पष्ट परिचय देते हुए राज्य एवं बालक भोज को मुंज को ही सौंप देते हैं। ऐसा करके वह भोज की सुरक्षा का स्थाई समर्थन करते हैं।[3] चिंतामणि में यद्यपि मुंज को सिन्धुल के बड़े भाई के रूप में चित्रित किया गया है तथापि मुंज का उत्तराधिकारी भोज को ही बनाया गया।

---

1. 'औचित्यविचारचर्चा' कारिका 16 पृष्ठ 32.
2. 'सुभाषितावलि' श्लोक संख्या 3413.
3. श्री राजदेव मिश्र द्वारा सम्पादित 'भोज प्रबन्ध' पृष्ठ 1-3.

'अथ मालवमण्डले तद्वृत्तांतवेदिभिः सचिवैस्तद्भ्रातृत्वो भोजनामा राज्येऽभ्यषिच्यत'।[1]

इतिहासकार इन दोनों ग्रन्थों के उल्लेख का मूलाधार न प्राप्त होने के कारण इसे कल्पित ही मानते हैं। सिन्धुराज ने हूणों का तथा दक्षिण, कोशल, वागड लाट और मुरलवालों पर विजयश्री प्राप्त की थी।[2]

उनकी मृत्यु विक्रम संवत 1066 से कुछ वर्ष पूर्व ही गुजरात के राजा सोलंकी चामुण्डराज के संग युद्ध करते समय 'वीरगति' प्राप्त होने पर हुई।[3] सिन्धुराज के शासन की अवधि 8 या 9 वर्ष की सिद्ध होती है।

भोजराज ने सिन्धुराज की मृत्यु के पश्चात् (लगभग 1010 ई0 में) राज्यपद को प्राप्त किया और लगभग 55 वर्ष तक पूर्ण कुशलता के साथ सन्तानवत् प्रजा का पालन किया। भोज-प्रबन्ध में की गई यह भविष्यवाणी -

'पंचाशत्पंचवर्षाणि सप्त मासदिनत्रयम्।[4]
भोजराजेन भोक्तव्यः सगौडो दक्षिणापथः' ।।

सर्वथा सत्य होती है ।

राजा भोज की माँ का नाम 'सवित्री' पत्नी का नाम 'लीलावती'[5] था। इनके दो सन्तानें थी, जिनमें पुत्र का नाम 'जयसिंह' तथा कन्या का नाम 'भानुमती' था।[6]

भारतवर्ष की ऐसी परम्परा रही है कि आध्यात्मिक विचारधारा से सम्पन्न श्रेष्ठ मनीषीगण भौतिकवाद की सर्वदा उपेक्षा करते रहे हैं। उनके सभी कार्य

---

1. 'प्रबन्ध चिन्तामणि' पृष्ठ 25, विश्वभारती प्रकाशन शक्ति निकेतन।
2. 'नवसाहसांकचरित' सर्ग 10/15-19.
3. राजा चामुण्डाराजोऽथः..........।
   सिन्धुराजमिवोन्मत्त सिन्धुराजं मृधेऽवधीत् (3।) (नवसाहसाकंचरित)
4. भोज प्रबन्ध श्लोक संख्या 6.
5. भोज प्रबन्ध श्लोक 148 पृष्ठ 91-93.
6. भोजप्रबन्ध भूमिका पृष्ठ 11

'स्वान्तः सुखाय सर्वजनहिताय' की भावना से प्रेरित होते रहे हैं। कतिपय रचनाकारों को छोड़कर प्रायः कविगण तथा दार्शनिक विद्वान् एवं शास्त्रकार अपनी रचनाओं में अपने परिचय का उल्लेख नही करते। फलतः उनके समय निर्धारण आदि में अनेक भ्रान्तियाँ एवं कुतर्कों की स्थिति बनती है। यही स्थिति राजा भोज की भी थी। इन्होंने अपनी रचनाओं में अपना पूर्ण परिचय तथा समय का उल्लेख नहीं किया। फिर भी इनकी प्रशंसा में समय-समय पर लिखे गये ताम्रपत्रों, दानपत्रों, प्रशस्तियों, शिलालेखों द्वारा तथा अनेक कवियों के द्वारा विरचित प्रबन्ध ग्रन्थो के आधार पर ऐतिहासिक दृष्टि से भोजराज का समय लगभग निश्चित है। यद्यपि अनेक आलोचकों ने भोज से सम्बन्धित प्रमाणों के अनुसार अपने मतों को अभिव्यक्त किया है और उनका समय 1010 ई0 से 1062 ई0 तक का निर्धारित किया है। उपर्युक्त काल निर्धारण में भी विद्वानों के मत में कुछ भेद दिखाई देता है। उन सभी प्रमाणों का संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है-

समय निर्धारण

वन्स्वार का ताम्रपत्र -[1] (बंसवाड़ा) इस दानपत्र में राजा भोज के 'कोंकण विजय' के उपलक्ष्य में दिये गये दान का स्पष्ट उल्लेख हुआ है -

श्रीमतो भोजदेवस्य ताम्रपत्रम्

परम भट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीसीयकदेवपदानुध्यात् - परमभट्टारकमहाराजाधिराज-परमेश्वरश्रीवाक्पतिराजदेवपदानुध्यात्- परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीसिन्धुराजदेवपदानुध्यात्-परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजराजदेव.......यथाऽस्माभिः कोकंणविजयपर्व्वणि-स्वहस्तोऽयं श्रीभोजदेवस्य'।

इस लेख-पत्र का समय विक्रम संवत् 1076 माघ शुक्ल पंचमी है। डॉ0 फ्लीट की गणनानुसार उस दिन 3 जनवरी[2] 1020 ई0 थी। इसके अलावा जिन दान पत्रों की उपलब्धि अभी तक हुई है उनका विवरण इस प्रकार है ।

---

1. इसका प्रकाशन एपिग्राफिया इण्डिका भाग 11 पृष्ठ 182-183 में हुआ है।
2. रेउकृत राजा भोज पृष्ठ 109.

बटमा ताम्र दानपत्र[1]

यह ताम्रपत्र इंदौर से आठ कोस पश्चिम बटमा ग्राम में प्राप्त हुआ था। इसमें सवत् 1076 भाद्र शुक्ल पूर्णिमा का उल्लेख है तथा इसमें भोजराज का हस्ताक्षर है।[2] उस दिन 4 सितम्बर 1020 तारीख थी।

उज्जैन का दानपत्र[3]

उज्जैन के समीप नागझरी से प्राप्त इस दानपत्र का समय माघ कृष्ण तृतीय रविवार संवत् 1078 है जिसमें 1021 ई0 सन् सिद्ध होता है। एक अन्य दानपत्र चैत्र शुक्ल चतुर्दशी संवत् 1078 का है जिसमें भोजराज के हस्ताक्षर हैं।

देपालपुर का दानपत्र[4]

यह दानपत्र इंदौर से 24 मील दूर उत्तर पश्चिम कोण में स्थित देपालपुर नामक गाँव से प्राप्त हुआ है जिसमें चैत्र शुक्ल चर्तुदशी संवत् 1079 का समय लिखा है तथा राजा भोज के हस्ताक्षर हैं। तदनुसार 1022 ई0 निश्चित होता है।

यशोवर्मा का कल्याण दानपत्र[5]

भोजदेव के सामन्त यशोवर्मा का यह दानपत्र नासिक जिले के कल्याण नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। इसका समय 1113 विक्रम संवत् है जो 1056 ई0 के रूप में निश्चित होता है।

---

1. एपिग्राफिया इण्डिका भाग 18 पृष्ठ 320 से 325 तक प्रकाशित हो चुका है।
2. इति (संवत् 1073 भाद्रपद शुदि 15 स्वयमाज्ञा) मंगलमहाश्रीः (स्वहस्तोऽयं श्रीभोजदेवस्य' ।
3. क. परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवः कुशली नागद्रहपश्चिमपथकातः' (छठी पंक्ति)
   ख. 'यथा अतीताष्टसप्तधिकसार्द्धस्त्रिकसम्म्वत्सरे माघसिततृतीयायाम् खावुददगयनपर्व्वाण-कल्पितहलानां लेख्ये' (पंक्ति 8,9,10)।
4. रेउकृत राजा भोज में परिशिष्ठ (पृष्ठ 6)
5. Annual Report of the Archaeological Survey of India India 1921-22, P. 118

राजा भोज के समय की एक सरस्वती की मूर्ति[1] - जो एक पाठशाला से प्राप्त हुई है संप्रति ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है जिसके नीचे विक्रम संवत् 1091 उल्लिखित है और इसके अनुसार भोज का समय 1034-35 निश्चित होता है।

तिलकवाड़ ताम्रपत्र[2]

यह ताम्रपत्र बड़ौदा प्रान्त के तिलकवाड़ नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। इसमें बिलुहज एवं घण्टापल्ली ग्राम की सौ एकड़ भूमि विक्रम संवत् 1103 ई0 सन् 1046 में प्रदान करने का उल्लेख है जिससे राजा भोज का समय 1046 ई0 सिद्ध होता है।

अलबेरूनी[3]

इसमें श्रवण वृत्तांत के साथ - साथ राजा भोज का भी उल्लेख है। यह ग्रन्थ विक्रम संवत् 1087 ई0 सन् 1030 में लिखा गया है जिसमें राजा भोज की स्थिति मानी गयी है।

राजमृगांककरण[4]

यह ज्योति विषयकोभोजराज विरचित ग्रन्थ है। इसकी रचना का समय विक्रम संवत् 1099 तथा ई0 सन् 1042 सिद्ध होता है।

---

1. E.J. Vol. XVIII. P 320 Fn-3 Trangs Cribed by Dikshit Rupam.

2. Edited by Kudalkar - Proceedings and transaction of first oriental conference, Poona, Vol. II PP. 319-26.

3. रेउकृत पृष्ठ 98 से उद्धृत।

4. History of Sanskrit poeties, P.V. Kane P. 260 Fn.
   'शाको वेदर्तनन्दोनोरविघ्नो मास संयुक्तः ।
   अधो देवान्वितो द्विस्थस्त्रिवेदघ्नस्तयोर्हतः ‖2‖

राजा भोज ग्रन्थ ।-

रेउकृत इस ग्रन्थ में भोज का समय विक्रम संवत् 1010 से 1066 तक का स्वीकार किया गया है जिसके अनुसार 953 से 1019 ई0 काल सिद्ध होता है।

उदयपुर प्रशस्ति -[1]

इसमें मालवा के परमार-वंशीय राजाओं का वर्णन यथाक्रम से पूर्ण उल्लेख हुआ है जिसकी साम्यता प्रबन्ध चिन्तामणि के कथानक से होती है। इसके अनुसार चेदि राजकर्ण एवं गुजरात के राजा भीम प्रथम के सम्मिलित आक्रमण से भोजराज की युद्ध भूमि में वीरगति प्राप्त होने से मृत्यु प्राप्त हुई थी। कर्ण का समय 11वीं शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है। इस आधार पर इनका समय 1005 ई0 से 1066 ई0 क बीच का सिद्ध होता है। 'नवसाहसांक चरित' के अनुसार जिसकी रचना 1005 ई0 में हुई थी। उस आधार पर 1010 भोज के राज्यग्रहण का समय माना जा सकता है।

विश्वेश्वर नाथ रेउ ने राजा भोज का जो परिचय लिखा है उसके आधार पर भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह का संवत् 1112 (1055 ई0) का दानपत्र एवं विक्रम संवत् 1116 (1059 ई0) का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिससे इनकी मृत्यु तिथि 1042 ई0 से लेकर 1055 ई0 के मध्य का समय राज्य पर बैठने का निश्चित होता है। सम्प्रति उक्त विवेचनों से यह निश्चित होता है कि भोजराज को 1005 ई0 से 1010 ई0 के मध्य में राजपद प्राप्त हुआ और कम से कम 1054 ई0 तक एवं अधिक से अधिक डॉ0 बुहलर आदि विद्वानों के मतानुसार राज्य शासन करते हुए 1062 ई0 तक जीवित रहे।

---

1. इस प्रशस्ति की प्रतिलिपि का प्रकाशन एपिग्राफिया, इण्डिका भाग -1, पृष्ठ 223 में डॉ जी बुहुलर द्वारा हुआ है।

शासनकाल एवं व्यवस्था -

राजा भोज के विषय में परमार-वंशीय अन्य राजाओं की अपेक्षा राज्य प्रशासन की प्रणाली अत्युत्तम बतलाई गयी है। यद्यपि उदयपुर प्रशस्ति में राजा भोज के राज्य की सीमा को हिमालय से मलयाचल तक उदयाचल से अस्ताचल तक बताई गई है।[1] किन्तु यह मत इतिहास की दृष्टि से सटीक नहीं है। डॉ बुहुलर[2] के मतानुसार भोज के राज्य की अवधि आधुनिक मालवा से अधिक नहीं थी। श्री विश्वेश्वर नाथ रेउ ने नर्मदा के उत्तरी प्रदेश का एक बड़ा भू-भाग भोज के अधिकार में था। दक्षिण में उनके राज्य की अवधि किसी समय गोदावरी के तट तक थी। नर्मदा और गोदावरी के मध्य में स्थित किसी भू-प्रदेश के लिये परमार वंशियों और सोलंकियों में अनेक बार युद्ध भी हुए थे। इस विवेचन से यह ज्ञात होता है कि मालव सम्पूर्ण नर्मदा का उत्तरी प्रदेश दक्षिण में गोदावरी तट तक का इतना प्रदेश ही भोजराज के अधिकार क्षेत्र में था। मध्य काल के इस युग में इन छोटे मोटे राजाओं में बहुधा युद्ध की स्थिति बनी रहती थी। राजा भोज भी इससे अछूते नहीं थे। इन्होंने चेदीश्वर, इन्द्ररथ, भीम, तोग्गल, कर्णाट, लाट एवं गुर्जर देश के राजाओं तथा तुरुष्कों पर विजय प्राप्त की थी।[3]

राजा भोज वीर विद्वान् तथा अनेक प्रकार से दान करने के कारण अतीव प्रसिद्ध थे। इन ताम्रपत्रों तथा दानपत्रों में इनके अनेक नामों का तथा उपाधियों का उल्लेख हुआ है जैसे - परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, मालवचक्रवर्ती, मालवनरेश तथा मालवपति आदि।

परमार वंशियों की राजधानी मालव क्षेत्र का प्रमुख ऐतिहासिक एंव तीर्थ स्थल होने से उज्जैनी ही राजधानी के रूप में समाद्रित रही परन्तु राजा भोज ने उज्जैनी

---

1. आकलासान्म ·मगिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयाद्वा ।
   भुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन ॥17॥
   (एपिग्राफिया इण्डिका भाग 1, पृष्ठ 235)
2. एपिग्राफिया इण्डिका भाग-1, पृष्ठ 230
3. दृष्टव्य रेउकृत राजा भोज पृष्ठ - 67

की ऐतिहासिकता को सुरक्षित रखते हुए, प्रशासन व्यवस्था एवं अपने साहित्य साधनों को ध्यान में रखकर स्वतंत्र स्थान धारानगर में राजधानी को स्थापित किया और तत्कालीन धारानगर को अपने प्रभाव से विश्वविख्यात् बनाया। इसीलिए इन्हें धारेश्वर नाम से जाना जाता है। इन्होंने राजस्थान के चित्रकूट दुर्ग (चित्तौड़) में त्रिभुवन नारायण के मंदिर की स्थापना की थी। जिसके कारण इनका एक नाम त्रिभुवन नारायण भी प्रसिद्ध हुआ। ज्योतिष, व्याकरण, आयुर्वेद, साहित्य, दर्शन आदि विविध विषयों के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण अन्य उपाधियों के साथ - साथ ज्योतिषाचार्य, व्याकरणाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, साहित्याचार्य, दर्शनाचार्य आदि उपाधियों से लोगों द्वारा विभूषित हुए। उदयपुर प्रशस्ति में इन्हें कविराज इस उपाधि से भी अलंकृत किया गया है। राजा भोज न केवल कवियों और विद्वानों के आश्रयदाता रहे, अपितु स्वयमेव एक तत्वज्ञ पण्डित एवं कवि थे।

सामाजिक परिवेश -

महाराज भोज के द्वारा अनेक सामाजिक कार्य प्रजा के हित में किये गये। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में कहा गया है कि - 'हे भोज ! तुम्हारे नगर में तुम्हारे द्वारा बनवाये गये 104 प्रासाद हैं। इतने ही 'गीत प्रबन्ध' और लगभग इतनी ही तुम्हारी उपाधियाँ हैं।[1] यद्यपि 'प्रबन्ध चिन्तामणि' का यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से कितना उपयुक्त है यह कहना कठिन है तथापि अनेक विद्वानों का इनके विषय में कहना सत्यता का आभास कराता है। 'श्री निवास अयंगर' ने कहा है कि -

"Bhoja is said to have built 104 temples."[2]

डॉ बुहुलर द्वारा सम्पादित नागपुर प्रशस्ति में - केदार रामेश्वरसोमनाथ- (सुं) - डीरकालानलरुद्रसत्कैः। सुराश्रयैर्व्याप्य च यः समन्ताद्ययार्थसंज्ञाजगती चकार।[3] (20)

---

1. 'भवदीयनगर्यां भवत्कारिताश्चतुरुत्तरं शतं प्रासादः एतावन्त एव गीतप्रबन्धाः भवदीयाः एतावन्ति च विरुदानि।'
   (सिन्धी जैन- ग्रन्थमाला, विश्वभारतीय, शान्तिनिकेतन पृष्ठ 50)
2. भोज ग्रन्थ पृष्ठ 93
3. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग । पष्ठ 236.

इस श्लोक के अनुसार भोज ने केदारेश्वर, रामेश्वर, सोमनाथ, सुण्डीर, काल, अनल और रुद्र देतवा के मंदिरों का निर्माण कराया था।

उक्त विवेचनों से यह सिद्ध होता है कि राजा भोज की भवन एवं मंदिरों के निर्माण में अत्यधिक रुचि थी। वास्तुशास्त्र का प्रमाणिक ग्रन्थ समरांगणसूत्रधार की रचना इनके वास्तुकला मर्मज्ञता में प्रमाण स्वरूप है। इन्होनें कश्मीर राज्य में 'कपटेश्वर' नामक स्थान में पापसूदन नामक एक कुण्ड का निर्माण कराया था।[1] यह कुण्ड सम्प्रति कश्मीर राज्य के कोटेर गाँव में आज भी है जिसका व्यास 60 गज के लगभग है। इसके चारो ओर पत्थर की दीवारें हैं। यही पर एक जीर्ण अवस्था में मंदिर भी है, जिसे वहाँ के निवासी मालवेश्वर भोज का बनवाया हुआ कहते हैं।

राजा भोज ने धारा नगरी में 'भोजशाला' नामक एक विद्यालय की भी स्थापना की थी। 'पारिजात-मंजरी' नाटिका[2] में 'शारदासदन' यह नाम इस विश्वविद्यालय का उल्लिखित है। इसमें अनेक प्रतिभाशाली विद्वान् अध्ययन - अध्यापन में संलग्न रहते थे। महमूद शाह खिलजी नामक यवन शासक ने संवत् 1515 में इस विश्वविद्यालय को तुड़वाकर मस्जिद बनवा दिया था। आज भी उस स्थान पर 'कमाल मौला की मस्जिद' प्रसिद्ध है।

1358 संवत् चित्तौड़ के किले में राजा भोज ने एक स्वर्ण मंदिर की स्थापना की थी जिसमें शिव मूर्ति की स्थापना किया और शिव मूर्ति का नाम 'भोजस्वामी' रखा। भोज की 'त्रिभुवन नारायण' यह उपाधि थी[3] जिसके आधार पर शिव मूर्ति को 'त्रिभुवन नारायण देव' भी कहते थे।

---

1. मालवाधिपतिर्भोजः? प्रहितैः स्वर्णसंचयैः।
   आकारयद्येन कुण्डयोजनं कपटेश्वरे (90)
   (रेउकृत राजा भोज में उद्धृत पृष्ठ 86)
2. जगज्जडता चकारशातनशरच्चन्द्रिकायाःसा (शा) रदादेव्याः सद्मनि सकल-
   दिगन्तरोपगतानेक[illegible]संकुले।
   एपिग्राफिया इण्डिका भाग 8 पृष्ठ 101.
   श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायणारण्देवगृहे।
   यो विरचयति स्म सदाशिवपरिचर्यां स्वशिवलिप्सुः' (3)
   विएनाओरियण्टल जर्नल,भाग 21,पृष्ठ 143, रेउकृत भोज पृष्ठ 92 में उद्धृत।

भोज ने 'भोजपुर' नामक एक नगर भी बसाया था जो आधुनिक भोपाल से लगभग तीस किलोमीटर दक्षिण दिशा में है। भोज का एक अतीव आश्चर्य जनक एवं प्रसिद्ध कार्य 'भोजपुर झील' है जो बटमा की घाटी के समीप ढाई सौ वर्ग मील मे फैली हुई है। इसके दक्षिण पूर्व में गोलाकार पहाड़ियां है, खुले भागों में बड़े-बड़े बाँधो से बाँधा गया है। यह झील भोजकाल के शिप्लकारों के कुशलता का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। 15वीं शताब्दी में एक मुसलमान बादशाह ने इसे तुड़वा दिया था।[1] धारा और मण्डप दुर्ग के कोट भी (चहार दिवारी) राजा भोज ने ही बनवाया था। ऐसा कुछ लोगों का मत है।

कवि का सम्प्रदाय -

परमारवंशीय महाकवि भोजराज एक धर्मनिष्ठ राजा थे। वैदिक धर्म में उनकी पूर्ण निष्ठा थी। वैदिक धर्म की उपासना पद्धति में इष्ट के भेद से सम्प्रदायों का भेद हो जाता है। विष्णु को इष्टदेव मानकर उपासना करने वाले जैसे - वैष्णव, शक्ति की उपासना करने वाले शाक्य, गणपति की उपासना करने वाले गाणपत्य माने जाते हैं, वैसे ही शिव को इष्टदेव मानकर उपासना करने वाले शैव सम्प्रदाय के माने जाते हैं। भोजराज भी शैव मतानुयायी ही थे। सनातन धर्म के इस शैव सम्प्रदाय की उपासना पद्धति में शिव को ही पूर्ण रूप से इष्टदेव के रूप में स्वीकार किया जाता है और वही स्थिति लगभग अन्य सम्प्रदायों की भी है। वैदिक धर्म के इन सम्प्रदायों में भिन्नता होने पर भी सभी देवाताओं में विद्यमान ब्रह्तत्व की एक स्थिति मानने पर वह परमात्मा एक ही सिद्ध होता है। फलतः अनेकों में एकता की स्थिति इस धर्म का रहस्य है।

राजा भोज के शैव मतानुयायी होने के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। ग्वालियर के उदयपुर की प्रशस्ति में इन्हें 'भर्गभक्त' (शिव भक्त) शब्द से उल्लिखित किया गया है -

---

1. Indian Antiquary जिल्द 17, पृष्ठ 348-50 में हुआ है।
 (Dr. Vincent Smith)

तत्रादित्य प्रतापे गतवति सदनं स्वर्गिणां भर्गभक्ते ।[1]

व्याप्ता धारेण धात्रीरिपुतिमिरभरैर्म्मौललोकस्तदाभूत् ।

स्वयं भोज के विक्रम संवत् 1076-1078 के दानपत्रों में जो मंगलाचरण है, उसमें सर्वप्रथम भगवान शिव की ही स्तुति की गई जिससे भोजराज की शिव भक्ति सूचित होती है।

'ओं जयति व्योम केशौसौ यः सर्गाय विभर्ति तां।[2]

ऐंदवी शिरसा लेखांज ....

गद्वीजांकुराकृतिं ।। तन्वंतु वः स्मराराते:

कल्याणमनिशं जटा:।।

'ओं जयति व्योमकेशोऽसौ यःसर्गाय विभर्तितां।[3]

ऐन्दवी शिरसा लेखां जगद्वीजांकुराकृतिम्'।।

'तन्वंतु वः स्मराराते: कल्याणमनिशं जटा:

कल्पान्तसमयो छामतड़िद्वलय ....

भोजराज ने कश्मीर में महादेव मंदिर के पास कुण्डादि का निर्माण कराया था। इससे भी इनकी शिवभक्ति सूचित होती है।

गणरत्न महोदधि नामक ग्रन्थ में जहां भोज का शिप्रा नदी तटस्थ ऋष्याश्रम में प्रवेश करने का वर्णन है वहां पर ऋषि के मुख से यह कहलाया गया है कि आपके पूर्वज वैरसिंह आदि शिव परम भक्त थे किन्तु आप उनसे बहुत ही अधिक शिव भक्त थे, इन्होंने भगवान शिव को अपनी तपस्या के बल से साक्षात्कार किया था-

---

1. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग - 1, पृष्ठ 236.
2. विक्रम संवत् 1076 के दानपत्र का श्लोक पृष्ठ संख्या 110 .
3. विक्रम संवत् 1078 के दानपत्र का श्लोक पृष्ठ संख्या 119 .
   (रेउकृत राजा भोज से उद्धृत)

' द्रष्टोड्डुलोमेषु मयोड्डुलोमे श्रीवैरसिंहादिषु रुद्रभक्तिः ।[1]
अपार्थिव सा त्वयि पार्थिवीयां नौत्स्यौदपान्योऽपि न वर्णयन्ति' ॥1॥

' कस्तारुणस्तालुनवाष्कयौ वा सौबष्कयिर्वा हृदये करोति।[2]
विलासिनोर्वीपतिना कलौयद् व्यलोकि लोकेऽत्र मृगांकमौलिः' ॥2॥

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि महाकवि प्रजावत्सलय राजा भोज वैदिक सनातन धर्म के शैव सम्प्रदाय मतावलम्बी थे। किन्तु अन्य देवताओं में भी इनकी पर्याप्त श्रद्धा थी। ये अपने प्रजा में भी सभी धर्मों एवं सम्प्रदाओं में विभक्त प्रत्येक वर्ग को समान दृष्टि से ही देखते थे। इसीलिए प्रजा का पूर्ण स्नेह इन्हें प्राप्त था।

साहित्यिक साधना

विश्व में बहुत ही कम ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुए है, जो एक बहुत बड़े भू-भाग के कुशल प्रशासक रहे हैं। अनेक युद्धों में सेना संचालन स्वयं अपने हाथ से करते हुए विजय पताका फहराए हैं। प्रजा के सुख सुविधा के लिये अनेक निर्माणकारी एवं व्यवस्थाओं को प्रदान किये हैं और साथ ही संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार में स्थित रहते हुए सारस्वत साधना से संस्कृत साहित्य जगत को पूर्ण समृद्ध बनाये हैं। ऐसे श्रेष्ठतम व्यक्तियों में राजा भोज का नाम विद्वनों द्वारा बड़े ही सम्मान से लिया जाता है। इनकी अलौकिक प्रतिभा इतने उच्चकोटि की थी कि इन्होंने लगभग 84 ग्रन्थों की रचना की। ' सरस्वतीकण्ठाभरण' के टीकाकार 'आजाद' ने भी यही स्वीकार किया है।[3]

राजा भोज ने व्याकरण, अलंकार,- शस्त्र, तर्क-शास्त्र, ज्योतिष, चिकि--त्साशास्त्र, राजसिद्धान्त, वनस्पति-विज्ञान, वास्तुविज्ञान, अध्यात्म, स्वप्न-विज्ञान, सामुद्रिक -शास्त्र आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना की थी।

---

1. तद्धितगणाध्याय, 4, पृष्ठ 163.
2. तद्धति गणाध्याय, 4, पृष्ठ 163.
3. श्रृंगार प्रकाश वी0 राघवनकृत शोध प्रबन्ध 3/5 से उद्धृत ।

विभिन्न विषयों के लिखे हुए ग्रन्थों का विवरण जो डॉ० टी० आवट्रैच द्वारा सम्पादित Catalogus Catalogorium में इस प्रकार है।

1. ज्योतिष - आदित्यप्रतापसिद्धान्त, राजमार्तण्ड, राजमृगांक, विद्वज्जनवल्लभ।
2. वैद्यक- आयुर्वेदसर्वस्व, विश्रान्तविद्याविनोद, शालिहोत्र (अश्व वैद्यक)
3. शैवशास्त्र- तत्वप्रकाश, शिवतत्वरत्नमालिका, युक्तिकल्पतरु, सिद्धांतसंग्रह
4. नीतिशास्त्र - चाणक्य - नीति
5. कोष - नाममालिका
6. पतंजलि - योगसूत्र -टीका - राजमार्तण्ड
7. धर्मशास्त्र- व्यवहारसमुच्चय, चारुचर्या
8. व्याकरण - शब्दानुशासन
9. शिल्पशास्त्र - समरांगणसूत्रधार
10. सुभाषित - सुभाषित - प्रबन्ध
11. अलंकारशास्त्र - सरस्वतीकण्ठाभरण
12. चम्पू - चम्पू -रामायण

इस सूची में 23 ग्रंथों का उल्लेख है। इसमें राजमृंगांक ज्योतिष तथा तथा वैद्यक दोनों में तथैव राजमार्त्तण्ड भी एक ज्योतिष ग्रन्थ है तो दूसरा पातंजलि योग सूत्र की टीका है।

विश्वनाथ रेउ ने अपनी 'राजा भोज ' नामक पुस्तक में 34 ग्रन्थों का विवरण दिया है।[1]

इनमें ज्योतिष विषय का 'भुजबल-निबन्ध' अलंकारशास्त्र पर 'सरस्वतीकण्ठाभरण' एवं श्रृंगार श्रृंगार प्रकाश,राजनीति एवं धर्मशास्त्र पर पूर्वमार्तण्ड विविध-विद्या-विचार,चतुरासिद्धांतसार-पद्धति महाकाली,

---

1. राजा भोज विश्वनाथ रेउकृत पृष्ठ संख्या 236-37.

विजय,विद्याविनोद,श्रृंगार-मंजरी हैं। दो कूर्मशतक (नाटक और काव्य), प्राकृत व्याकरण, सरस्वतीकण्ठाभरण (व्याकरण ग्रन्थ) राजमार्त्तण्ड सार संग्रह नामक ग्रन्थों का उल्लेख अधिक प्राप्त होता है। 'श्री पी0टी0 श्रीनिवास अयंगर' ने भोजराज नामक अपने पुस्तक में 104 मंदिरों के समान ही 104 ग्रन्थों की भी रचना की थी जिनमें सम्प्रति 28 ग्रन्थों की ही खोज हुई है।[1] इस प्रकार लिखा है। इन ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है -

1. ज्योतिष एवं नक्षत्र विद्या - राजमार्त्तण्ड, राजमृगांक, विद्वज्जनवल्लभ (प्रश्न ज्ञान), आदित्यप्रतापसिद्धांत।
2. औषधि - आयुर्वेदसर्वस्व, विश्रान्तविद्याविनोद, शालिहोत्र (अश्व वैद्यक)
3. शिल्पशास्त्र - समरांगणसूत्रधार ।
4. व्याकरण - शब्दानुशासन
5. दर्शन - राजमार्तण्ड (वेदांत) राजमार्तण्ड (पतंजलि को योगसूत्र पर टीका) तत्वप्रकाश, सिद्धांत संग्रह, शिवतत्वरत्नमालिका, युक्तिकल्पतरु (4 शैव गन्थ हैं)
6. धर्म शास्त्र - व्यवहारसमुच्चय, चायचर्या ।
7. अर्थशास्त्र - चाणक्यनीति (दण्डी नीति) और पुत्रमार्तण्ड
8. अलंकार - सरस्वतीकण्ठाभरण, श्रृंगार प्रकाश ।
9. गद्य एवं पद्य - रामायणचम्पू, विद्याविनोदकाव्य, दो प्राकृतकाव्य (जिसका अन्वेषण हाल ही में धार में हुआ है), महाकालीविजय (स्तोत्र) श्रृंगारमंजरी (गद्य कथा) सुभाषितप्रबन्ध।
10. कोष - नाममालिका ।

इस प्रकार दो ग्रन्थों की सूचियाँ उल्लिखित की गई। इनमें विषय की दृष्टि से ग्रन्थों के विभाजन में दोनों ही सूचियों में कोई भेद नहीं है। पी0टी0 श्रीनिवास ने जिन सात नवीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है। वे रेउ के भी ग्रन्थ सूची में उपलब्ध

---

1. Bhoja is said to have composed 104 poems to match with the 104 temples he built of these 28

होते हैं जैसे - वेदांत में राजमार्तण्ड अर्थशास्त्र में पुत्रमार्तण्ड अलंकार में श्रृंगार प्रकाश, विद्याविनोद काव्य दो प्राकृत काव्य, महाकाली विजय, श्रृंगार मंजरी, सुभाषित प्रबन्ध। अयंगर ने मात्र अलंकार शास्त्र परक सरस्वतीकण्ठाभरण का निर्देश तो किया है, किन्तु व्याकरण परक सरस्वतीकण्ठाभरण का निर्देश नही किया है। युक्तिकल्पतरु को जहां अयंगर शैव विषयक ग्रन्थ मानते हैं। वही रेउ भी शैव परक ही मानते हैं। रेउ ने वास्तुशास्त्र का समरांगणसुधार का उल्लेख किया है, किन्तु अयंगर ने वास्तुशास्त्र के किसी भी ग्रन्थ का उल्लेख नहीं किया है। रेउ 'पूर्तमार्तण्ड' ग्रन्थ मानते हैं, किन्तु अयंगर पुत्रमार्तण्ड के नाम से इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है।

इन ग्रन्थ के अलावा हनुमन्नाटक ग्रन्थ राजा भोज का स्वीकार किया जाता है। शिला में उत्कीण समुद्रक्षिप्त इस ग्रन्थ का समुद्धार राजा भोज ने ही किया था। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि न तो रेउ ने और न अयंगर ने ही इस ग्रन्थ की चर्चा की है। श्री सी0वी0 वैद्य ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि हिन्दु-ला (कानून) पर भी भोज के द्वारा लिखित पुस्तक है। परन्तु इस विषय से सम्बन्धित किसी भी ग्रन्थ की उपलब्धि अध्यावधि नहीं हुई। 'प्रायश्चित विवेक' में शूलनाथ तथा 'मिताक्षरा' में विज्ञानेश्वर ने हिन्दू कानू से सम्बन्धित पुस्तकों को उल्लेख किया जिसके आधार पर भोज द्वारा रचित हिन्दू राजनीति एवं धर्मविषयक ग्रन्थ की उपलब्धि थी और ये लोग उससे सम्बद्ध थे। सरस्वतीकण्ठाभरण भाग चार के 'हृदयहारिणी' टीका में भी भोज रचित 24 ग्रन्थों का उल्लेख है जिनमें कुछ नये नाम उभरकर आये हैं। साहित्य में शालिकथा साम्यमिनाममालिका एवं अमरव्याख्या (निघण्टु) रत्नावली (धर्मशास्त्र) प्रश्नचिन्तामणि (ज्योतिष) कोदण्डमण्डन (धनुर्वेद) शालिहोत्र (न्याय) नामक ग्रन्थों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। भोज के द्वारा संगीत सम्बन्धी भी किसी ग्रन्थ की रचना हुई है। किन्तु किसी ग्रन्थ का उल्लेख नही प्राप्त होता। 'उपेन्द्रनाथ विद्याभूषण' द्वारा सम्पादित बल्लाल के द्वारा रचे गये 'भोज प्रबन्ध' की भूमिका में भोज के साहित्यिक साधना के विवेचन के समय कानून से सम्बन्धित एक ग्रन्थ का उल्लेख हुआ है। किन्तु कई नीति विषयों का संग्रह होने से इसकी स्थिति नीति संग्रह के रूप में ही है। लगता है भोज के निर्देशन में उन सभी नीतिवाक्यों का संग्रह विद्वानों ने किया होगा। 'मिताक्षरा' दायभाग, हारलता

आदि ग्रन्थों में धर्मशास्त्र विषयक भोज के उद्धरणों के विषय के आधार पर यह कहा जा सकता है कि धर्मशास्त्र से सम्बन्धित भी भोजराज के ग्रन्थ थे। इस प्रकार भोजराज द्वारा विरचित साहित्य इनके प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं बहुमुखी प्रतिभा का विशिष्ट स्वरूप है।

समीक्षा -

संस्कृत जगत के शास्त्रीय, व्यावहारिक, नीति आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थों की प्रभूत स्थिति को देखकर विद्वान् आलोचकों को यह संदेह होने लगता है कि क्या यह सभी ग्रन्थ राजा भोज के द्वारा ही रचे गये हैं। आधुनिक समालोचकों में यह एक धारणा बनी हुई है कि राजदरबार में स्थित विद्वान् कवियों के द्वारा रचे गये ग्रन्थ को अपने नाम से प्रसिद्धि तत्कालीन राजा लोग देते थे। ऐसी स्थिति में कई ग्रन्थों का वास्तविक कर्ता लुप्त सा हो जाता था। इतिहास में इस प्रकार के अनेकों उदाहरणों के होने के कारण इस समस्या का अपलाप नहीं किया जा सकता। इसके दो कारण होते थे। एक तो आश्रयदाता के नाम से कृत होने के कारण आर्थिक लाभ होता था, साथ ही कृति की प्रसिद्धि भी शीघ्र हो जाती थी। कितने कवि तो ऐसे भी हुए हैं जो साधारण कृतियों के नाम विख्यात महाकवियों से जोड़ देते थे। फलतः मूल ग्रन्थ लेखक का अन्वेषण अत्यंत कठिन हो जाता था। ऐसी स्थिति में भिन्न विषय भोजराज के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों में भी इस प्रकार का संदेह होना स्वभाविक हो सकता है।

भोजराज के बाल्यकाल से लेकर अन्तिम समय तक के सम्पूर्ण जीवन एवं उनके कर्तव्य के विषय में सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाये तो समीक्षक विद्वानों की उक्त धारणा समुचित नहीं कही जा सकती है। अनेक दानपत्रों में इनकी प्रशस्तियां इनके बुद्धि वैशद्य की साक्षी है। भोजराज बाल्यावस्था से ही अत्यधिक प्रतिभाशालीथे। इनके चाचा मुंज ने विभिन्न विषयों के प्रसिद्ध विद्वानों के द्वारा परम्परा से अनेक शास्त्रों एवं विषयों का अध्ययन कराया है। इनके विषय में प्रचलित नाना किंवदन्तियों एवं अनेक कवियों की इनके विषय में प्राप्त प्रशस्तियों इनके प्रकाण्ड पाण्डित्य को सर्वथा सत्य

बतलाती हैं। अतः प्रखर प्रतिभा के धनी राजा भोज ने यदि समस्त विषयों से सम्बन्धित गन्थों की रचना की तो कोई आश्चर्य की बात नही है। इसमें इनके प्रतिभा की ही श्रेष्ठता स्वीकार करनी चाहिए।

ग्रन्थ परिचय

राजा भोज के द्वारा सम्प्राप्त ग्रन्थों का परिचय संक्षेप में इस प्रकार है-

1. **राजमृगांक -**

यह ग्रन्थ ज्योतिष विषय का है। किन्तु 'पातंजलयोग- सूत्र' की टीका के आरम्भ में लिखित[1] 'शब्दानुशासनं विदधता पातंजले कुवर्ता। वृत्तिं राजमृगांकसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके'। इस श्लोक के द्वारा यह ज्ञात होता है कि वैद्यक में भी राजमृगांक नामक ग्रन्थ भोज द्वारा लिखा गया था। किन्तु सम्प्रति उपलब्ध नहीं होता। ज्योतिष पर इस ग्रन्थ के 14 हस्तलिखित पत्र प्राप्त हुए हैं।[2] किन्तु अन्त में भोजराज का स्पष्ट नाम उल्लेख न होने से भोज की रचना के विषय में लोगों की संदिग्ध धारणा है। आठ अधिकारों में विभक्त यह ग्रन्थ अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

2. **राजमार्तण्ड -**

रेउकृत राजा भोज[3] नामक ग्रन्थ में राजमार्तण्ड नामक यह ग्रन्थ ज्योतिष विषय में योगशास्त्र विषय में और वेदांत विषय में प्राप्त होता है। इस प्रकार नाम तो एक है किन्तु ग्रन्थ तीन हो जाते हैं। इसके अलावा रेउ ने **'राजमार्तण्डनामयोगसारसंग्रह'** नामक वैद्यक ग्रन्थ का भी निर्देश किया है।

---

1. आफ्रेट महोदय Cat.Cat में राजमृगांक को ज्योतिष एवं वैद्यक- उभयपरक बतलाया गया है।
2. रेउकृत पृष्ठ 238
3. रेउकृत राजा भोज पृष्ठ 236-37

ज्योतिष विषयक राजमार्तण्ड में चौदह सौ इक्कीस श्लोकों का संग्रह है। इसमे जीवन की समस्त घटनाओं के मुहुर्त दिये गये हैं। विभिन्न विषयों में सुराचार्य, विशालाक्ष, विष्णु, यवनाधिपति, भागुरि, गण्डागिरि वराहमिहिर आदि के मतों का उल्लेख हुआ है।

योगविषयक राजमार्तण्ड ग्रन्थ पातंजलि योगदर्शन के सूत्रों पर व्याख्या रूप में है।

वेदान्तविषयक राजमार्तण्ड ग्रन्थ का विस्तृत विवरण न तो रेउकृत राजा भोज में प्राप्त होता है न ही श्रीनिवास अयंगर ने ही इसका विवरण दिया है। केवल नाममात्र का उल्लेख दोनों ने किया है।

राजमार्तण्डयोगसारसंग्रह नामक ग्रन्थ की समाप्ति में प्राप्त 'महाराज श्रीभोजराजविरचितो राजमार्तण्डयोगसार संग्रहः समाप्तः' इस पुष्पिका से भोजराज की यह कृति है प्रमाणित होता है इसमें 560 श्लोक हैं।

विद्वज्जनवल्लभ[1] - ज्योतिष शास्त्र विषयक इस ग्रन्थ में सत्रह अध्याय हैं जिनमें ज्योतिष सम्बन्धित विभिन्न विषयों का विवेचन हुआ है।

भुजबलनिबन्ध[2] - यह ग्रन्थ भी ज्योतिष का है। यह 18 प्रकरणों में विभक्त है जिसमें विविध विषयों का ज्योतिष सम्बन्धित विचार हुआ है।

सरस्वतीकण्ठाभरण - सरस्वतीकण्ठाभरण नाम से दो ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें सरस्वतीकण्ठाभरण व्याकरण विषय से सम्बद्ध है तो दूसरा अलंकारों से सम्बन्धित है। व्याकरण विषयक इस ग्रन्थ में अतिविस्तृत आठ अध्याय

---

1. 'प्रश्नज्ञानमिदं स पार्थिवशिरोविन्यस्तपादाम्बुजः। श्री विद्वज्जनवल्लभोडयमकरोच्छी-भोजदेवोनृपः ।।
2. 'इतिश्रीभोजराजकृतौ भुजबलनिबन्धे ज्योतिश्शास्त्रेद्वादशमासकृत्यं समाप्तम्' (रेउकृत पृष्ठ क्रमशः 243 एवं 246 में उद्धृत सामग्री के आधार पर)

है और प्रत्येक अध्याय चार पादों में विभक्त है। इस ग्रन्थ में सूत्रों की संख्या 6411 है। दण्डनाथवृत्ति सहित सरस्वतीकण्ठाभरण के सम्पादक साम्य शास्त्री ने यद्यपि सात अध्यायों का ही उल्लेख किया है। किन्तु युधिष्ठिर मीमांसक ने आठवें अध्याय का विवरण भी दिया है।[1] इसमें परिभाषा लिंगानुशासन गुणादि एवं गणपाद आदि प्रकरणों को स्थापित किया है। इस ग्रन्थ का मुख्य आधार पाणिनि एवं चान्द्र व्याकरण है, चान्द्र व्याकरण की ओर इस व्याकरण का अधिक झुकाव है।

सरस्वतीकण्ठाभरण के अतिरिक्त प्राकृत व्याकरण की भी रचना उल्लिखित मिलती है। इसका विस्तृत विवेचन प्राप्त नही होता।

अलंकार विषयक सरस्वतीकण्ठाभरण ग्रन्थ उनकी वैदुष्यपूर्ण रचना है जिसमें बड़े ही सुन्दर ढंग से अलंकार आदि का विवेचन हुआ है। कुछ आलोचक इसे मौलिक रचना न मानकर पूर्वाचार्यों के मतों का संग्रहमाना है। यह पांच परिच्छेदों में विभक्त है। भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरण नामक इस ग्रन्थ में दण्डी के काव्यदर्श के लगभग 164 उद्धरण वामन के 22 रुद्रट के 19 ध्वन्यालोक के 10 उद्धरण हुए हैं। उद्धृत उदाहरणों की संख्या काण्डों के अनुसार 1500 है। इसमें कालिदास भवभूति का पग-पग पर उल्लेख हुआ है।

श्रृंगार प्रकाश[2]- साहित्यिक आलोचना से सम्बन्धित शास्त्रीय संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में श्रृंगार प्रकाश एक विशाल ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल 36 प्रकाश हैं। इसका उल्लेख और विषय वर्गीकरण राघवन ने इस प्रकार किया है - 1 से 6 प्रकाश तक शब्द और अर्थ का 7 से 11 तक साहित्य और 7 से 11 व्याकरण सम्बन्धी अंश 9 से 11 साहित्य का काव्यात्मक अंश है। 12 में नाटक से सम्बन्धित 13 से 17 तक रस के विषय में 18 से 21 तक पुरुषार्थ चतुष्टय में 22, 23 में सामान्य प्रेम 24 से 32 तक विप्रलम्भ श्रृंगार तथा 33 से 34 तक सम्भोग श्रृंगार का वर्णन है।

---

1. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास प्रथम भाग पृष्ठ 557.
2. एतस्मिन् श्रृंगारप्रकाशे सुप्रकाशमेव अशेषशास्त्रार्थसम्पुदुपनिषदाम् ।
अखिलकलाकाव्यौचित्यकल्पनारहस्यानां च सन्निवेशो दृश्यते ।।
(रेउकृत राजाभोज पृष्ठ 250 में उद्धृत)

समरांगणसूत्रधार[1] - वास्तुशास्त्र विषय से सम्बन्धित समरांगणसूत्रधार ग्रन्थ एक विशाल ग्रन्थ है। इसमें 83 अध्याय है। यह ग्रन्थ बड़ा ही पारिभाषिक मनोवैज्ञानिक तथा क्लिष्ट है। इसमें आठ विषयों का विस्तृत विवेचन है। यथा -

1- प्राचीन कालीन

2. पुरनिवेश

3. पुरोचित साधारणजनोचित भवन निवेश - शालभवन

4. राजनिवेश तथा राजहर्म्य (भवन)

5. देवमंदिर - प्रासाद - वास्तु

6. देवप्रमि - मूर्तिकला या प्रतिमा-शिल्प

7. चित्रकला

8. यन्त्र, शयन, आसनादि ।

इसके 53 अध्याय में अनेकों मशीनों का वर्णन है जैसे - गजयन्त्र, व्योमचारी, विहंगयन्त्र, आकाशगामी दारूमयविमान यंत्र, द्वारपाल यन्त्र आदि इसमें कुल 83 अध्याय है।

चाणक्यनीति राजनीति शास्त्र[2] - इस ग्रन्थ में आठ अध्यायों का उल्लेख है। पंचम अध्याय में ऐसे गुणों का विवेचन जिसके द्वारा राजा अपनी प्रजा एवं कर्मचारियों को नियंत्रित करता है। सभी अध्यायों में सांसारिक, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

---

1. 'इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समरांगणसूत्रधारापरनाम्नि वस्तुशास्त्रे......अध्यायः।

2. 'चाणक्यमाणिक्यमिदं कण्ठे विभ्रति ये बुधाः ।
प्रहितं भोजराजेन भुवि किं प्राप्यते न तैः ।।
(रिउकृत 964)

नीतिशास्त्र विषयक[1]- चारूचर्या नामक ग्रन्थ भी भोजराज विरचित ग्रन्थ है। यह वस्तुतः नित्यकर्म से सम्बन्धित है जिसमें गुरू वन्दना से लेकर परसेवा आदि तक के उपदेश दिये गये हैं।

विविधविद्याविचार चतुरा[2] - इस ग्रन्थ में नवग्रह, तुलापुरूष (तुलादान) बावली, तालाब, कुँआ, आदि के सरंचना प्रकार का वर्णन है। यह धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थ है।

सिद्धांतसारपद्धति - यह भी ग्रन्थ धर्मशास्त्र का है इसमें 1384 श्लोक उपलब्ध होते हैं जिनमें विविध विषयों का कथन है।[3]

युक्तिकल्पतरु - यह ग्रन्थ शैव आगम पर है। इसमें 2016 श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में आमात्यादि बल, यान, यात्रा, विग्रह, दूतलक्षण, द्वैध, दण्ड, मन्त्रनीति, युक्ति द्वन्द्वयुक्ति, नगरीयुक्ति, वास्तुयुक्ति आदि विभिन्न विषयों का विवेचन इसमें हुआ है। ये लगभग 122 है।

श्रृंगारमंजरी कथा - एक काव्यात्मक निबन्ध भोजराज विरचित है। 'इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचितायां श्रृंगारमंजरीकथायां पद्मराककथानिका द्वादशी समाप्ता'[4] जिसमें 12 पद्मराक है। यह गद्यपद्यमय रचना है।

कूर्मशतक दो[5]- ये दोनों प्राकृत काव्य ग्रन्थ हैं। इनमें से प्रत्येक काव्य ग्रन्थों की रचना आर्याछन्द में निबद्ध 109 श्लोक हैं। दोनों काव्यों का प्रारम्भ 'ऊ नमः शिवाय' से होता है।

---

1. सुनीतशास्त्रसद्वैद्यधर्मशास्त्रानुसारतः।
   विरच्यते चारूचर्या भोजभूपेन धीमता'।। (रेउकृत, पृष्ठ 258)
2. 'इति श्रीमद्भोजदेवविरचितायां विविधविद्याविचारचतुराभिधानायां
   नवग्रहमखतुलापुरुषादिमहादानादिकर्मपद्धता तडागवापीकूपप्रतिष्ठाविधि।
   (रेउकृत पृष्ठ 261)
3. रेउकृत पृष्ठ 263
4. द्रष्टव्य Annals of Venkateshwar Oriental Institute Vol.II PP.459-60

तत्वप्रकाश[1] - शैव सम्प्रदाय से सम्बन्धित तत्व प्रकाश नामक ग्रन्थ एक अपूर्व रचना है जिसका प्ररम्भ शिव स्तुति से ही होता है।

द्रव्यानुयोगतर्कणाटीका - श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय से सम्बन्धित द्रव्यानुयोगतर्कणा नामक ग्रन्थ की टीका राजा भोज के द्वारा हुई थी।[2]

भोजदेव संग्रह[3] - वराहमिहिर के मतों के आधार पर राजा भोज ने ज्योतिष शास्त्र के मतों का एक संग्रह संचित किया था जो इस ग्रन्थ के रूप में है।

हनूमन्नाटक[4] - इस नाटक में 14 अंक है। श्लोक सं0 1775 हैं। यह एक वृहद् नाटक राजा भोज के द्वारा रचित हुआ था। 'मोहनदास विरचिता 'हनुमन्नाटक दीपिका' में एक कथा लिखी है -

'अत्तेयं कथा पूर्व्वमेवेदं टंकेगिरिशिलासु लिखितं, तत्तु वाल्मीकिना दृष्टम्। तदेतस्य अतिमधुरत्वमाकथ्य प्रचारभार्वशंकया हनुम - त्वं समुद्रे निधेहि। तथेति तेनाब्धौ प्रापितं - भग्नेन भोजेन बल रूद्धृतमिति'।

शालिहोत्र - अश्व वैद्यक के आधार पर भोज द्वारा विरचित यह ग्रन्थ पशुचिकित्सा का अत्युत्तम ग्रन्थ है। इसमें अश्वविषयक सम्पूर्ण चिन्तन है। वर्ण, आवर्तलक्षण, अश्वप्रमाण, वेग, आरोहरण, श्लेष्मरक्तलक्षण, रक्तमोक्षण, ऋतुचर्या, नस्य, पिण्ड, अश्वशालाविधि इन 11 विषयों का विवेचन हुआ है। जयदत्तकृत अश्ववैद्यक में भोजविरचित पशु चिकित्सा से सम्बन्धित ग्रन्थों से कई पद्य अवतरित किये गये है।

---

1. 'यस्याखिलं करतलामलकक्रमेण देवस्य विस्फुरति चेतसि विश्वजातम्।
   श्रीभोजदेवन्तपतिः स शिवागमार्थ तत्वप्रकाशमसमानमिमं व्यधत्त (35)
   रेउकृत पृष्ठ 94.
2. रेउकृत पृष्ठ 298
3. रेउकृत पृष्ठ 299.
4. रेउकृत पृष्ठ 303.

1. 'तेजो निसर्गजं वाजिनां सत्तवं स्फूरण रजः ।
क्रोधास्तमा इति ज्ञेयास्त्रयोऽपि सहजा गुणाः (पृष्ठ 74)

2. भोजस्तु द्वादशसु कालेषु .... आह
' तीक्ष्णं मध्यं पुनर्द्वाभ्याम् जघन्यम् निष्ठुरैस्त्रिभिः ।
उपवेशेऽथ निद्रायां क्षालिते दुष्टचेष्टिते' (पृष्ठ 79)

3. अत्त भोजोऽप्येवमाह -
'ग्रीवायाम् भीतमाहन्यात् त्रस्तं चैव च वाजिनम् ।
विभ्रान्तचित्तमधरे त्यक्तशिक्षं च ताडयेत् (पृष्ठ 79)

इस प्रकार राजा भोज ने अनेक शास्त्रीय विषयों का विवेचन अपने गन्थों के माध्यम से करके संस्कृत जगत का अत्यधिक उपकार किया है।

अन्तिम समय

भोज राज का अन्तिम ग्रन्थ चम्पू रामायण प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि चम्पू रामायण की रचना चल रही थी जिसके सुन्दर काण्ड तक की कथाओं का पूर्ण वर्णन हो गया था। किन्तु उसी समय चेदिराज करण और गुजरात के राजा प्रथम भीम भोजराज के ऊपर एक साथ आक्रमण कर देते हैं। ये वही राजा हैं जिनको राजा भोज ने बड़ी बुरी तरह परास्त किया था। वे दोनों मिलकर अपना बदला लेने की नियत से सम्मिलित होकर आक्रमण करते हैं, और उस महायुद्ध में एक शक्ति सम्पन्न विद्वान् प्रजावत्सल धार्मिक राजा भोज वीरगति को प्राप्त होते हैं और उससे सबसे बड़ी क्षति होती है संस्कृत जगत की, क्योंकि राजा भोज की मृत्यु होने से न केवल चम्पू रामायण अधूरा रह जाता है, अपितु संस्कृत के सच्चे सेवक विद्वानों, कवियो का संरक्षणत्व भी भोज जैसा न मिलने से एक दुखद स्थिति बनती है जिसका अन्त नहीं हो पाता।

राजा भोज का संस्कृत साहित्य जगत में अत्यधिक सम्मान था। उनके वैदुष्य की चर्चा तत्कालीन विद्वानों ने यथोचित अपने ग्रन्थों में किया है। अमरकोश

के टीकाकारों में टीका सर्वस्व[1] के लेखक सर्वानन्द ने भानु दीक्षित[2] ने क्षीरस्वामी ने यथास्थान पर राजा भोज के मतों का उल्लेख किया है।

अलंकारों की विवेचना करने वाले भोजराज के परकालीन रचनाकारों ने इनके मतों का समुचित उल्लेख किया है। एकावली के प्रणेता विद्याधर ने मल्लिनाथ के पुत्र कुमार स्वामी, ने शारदातनय ने मन्दारमरन्द चम्पू में रसावर्णवसुधाकर के रचयिता शिंगभूपाल ने दशरूपक के टीकाकार भावरूप मिश्र ने, राजशेखर ने, साहित्य-दर्पण में विश्वनाथ ने भोजराज के अलंकारशास्त्रीय मतों का उल्लेख किया है। उत्तराम चरित की टीका में वीरराघव ने, मेघदूत के टीकाकार दिवाकर ने, रघुवंश के टीकाकार नारायण ने काव्यानुशासन के छठे अध्याय के अन्त में हेमचन्द्र ने भोज के मतों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार मैसूर से प्रकाशित माणिक्यचन्द्र कृत काव्य प्रकाश की टीका में अलंकार महोदधि के कर्ता नरेन्द्रनाथ सूरि ने अलंकार सर्वस्वकार जयरथ ने भोज के मतों का ससम्मान उल्लेख किया है। इस तरह परिवर्तन करके कई प्रसिद्ध रचनाकारों ने स्थल-स्थल पर राजा भोज के मतों का ससम्मान उल्लेख किया है।

भोज नामक अन्य व्यक्ति

- ' संस्कृत साहित्य के विशेष अध्ययन यह ज्ञात होता है कि इतिहास में परमार-वंशीय मालव नरेश भोजराज के अतिरिक्त भोज नाम से विख्यात अनेक व्यक्ति हुए हैं और वे भी अपने समय में उत्कृष्ट कार्यों के द्वारा विख्यात हुए हैं। ऋग्वेद[3] में भोज शब्द का प्रयोग उस क्षत्रिय के लिये हुआ है जो सर्वदा यज्ञ कार्य का आयोजन करता रहा हो अर्थात् यज्ञप्रिय हो। निरुक्त में भी " भोजस्ययेदं पुष्करिणीव वेश्य "।[4]

---

1. राघवन कृत श्रृंगार प्रकाश पृष्ठ 720.
2. राघवन कृत श्रृंगार प्रकाश
3. इमें भोजाअंगिरसो विरूपा: दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीरा: ।।
4. निरुक्त 7, 1, 3 पृष्ठ 347.

महाभारत में जिस भोज का संकेत मिलता है वह राजाजरासंध के अधीन था और एक ऐसे भोज का भी वर्णन आता है जो कृष्ण का सम्बन्धी था और द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित रहा।

" अश्वस्थामा च भोजश्च सर्वशस्त्रभृतां वरौ" [1]

रघुवंश में भी भोज नामक एक राजा का उल्लेख मिलता है जो विदर्भ का राजा तथा इन्दुमती का पिता था।

अथेवरेण क्रथकैशिकानां स्वयम्वरार्थं स्वसुरिन्दुमत्याः [2]।
आप्ताः कुमारोनयनोत्सुकेनभोजेन दूतो रघवे विसृष्टः।।

उड़ीसा के इतिहास में भी भोज नामक वीर तथा उदार श्रेष्ठ गुणयुक्त भोज नामक एक राजा हुआ है जिसकी सभा में 750 उत्कृष्ट कोटि के कवि थे।[3]

भानुमती नामक एक बंगला उपन्यास है जिसमें भोज को विक्रम के श्वसुर के रूप में चित्रित किया गया है।

Peri Teiffentholer की सूची में तीन भोजों का उल्लेख हुआ है।

1. Col. Tod का छठी शती का भोज - इसके अनुसार यह भोज परमार वंश का एक राजा था और मालवा में इसका राज्य था।

Col.Tod ने सातवीं शताब्दी में भी किसी एक राजा भोज का उल्लेख किया है।

दसवीं शताब्दी में एक ऐसे भोज का उल्लेख मिलता है जो आबू पर्वत में रहा है।

---

1. महाभारत आदि पर्व 52/6
2. रघुवंश 5/39
3. भोजकृत शालिहोत्र सम्पादित।

ग्वालियर राज्य में भी एक भोजराज का उल्लेख प्राप्त होता है।

ई0 सन् 876 में कन्नौज में भी एक भोजराज का उल्लेख प्राप्त होता है। जिसका वर्णन राजाधिराज के रूप में हुआ है।

इतिहास में एक ऐसे भोज का उल्लेख है जो पेहेवा में था।

ग्यारहवी शताब्दी का भोज यही धारा नरेश है जो उत्कृष्ट लेखक कवि तथा कुशल प्रशासक एवं अनेक विषयक ग्रन्थों का लेखक रहा तथा जिसके गुणों एवं कृतियों का इतिहास सर्वदा सम्मान करता रहेगा।

द्वितीय अध्याय

काव्य स्वरूप

आचार्यों ने काव्य लक्षण को अपने - अपने दृष्टि से भिन्न-भिन्न स्वरूपों में स्थापित किया है। इन आचार्यों में भामह, दण्डी, वामन, रूद्रट, आनन्दवर्धनाचार्य, अभिनवगुप्त, राजशेखर, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, मम्मट, हेमचन्द्र, वाग्भट्ट, विद्याधर, विद्यानाथ, आचार्य विश्वनाथ, पं0 जगन्नाथ आदि आचार्य प्रमुख है। जिनके काव्य लक्षणों का क्रमशः विवेचन इस प्रकार है -

भामह द्वारा रचित काव्यालंकार ग्रन्थ विद्वानों के द्वारा सर्वथा आदरणीय रहा है। इन्होंने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्, गद्यं पद्यं च तत् द्विधा"[1] यह लक्षण काव्य का किया है जो प्राचीन एवं संक्षिप्त है और शब्द तथा अर्थ दोनों के सहभाव को लिये हुए है। अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों एक साथ हो करके ही काव्य कहे जाते हैं। इस प्रकार भामह के मत में शब्द अर्थ दोनों साथ ही काव्य कहे गये हैं।

दण्डी के अनुसार ' शरीरं तावदिष्टार्थः यावत्छिन्नः पदावली."[2] अथार्त् इष्ट मनोरम हृदयाह्लादक अर्थ से सुशोभित पदावली ही काव्य का शरीर है। दण्डी के लक्षण को देखकर यह कहा जा सकता है कि भामह के काव्य के लक्षण को किंचित् परिष्कृत करके दण्डी ने अपने काव्य लक्षण को प्रस्तुत किया है।

आचार्य वामन रीति के संस्थापक विद्वान् माने जाते हैं। इन्होंने 'रीतिरात्मा काव्यस्य'[3] इस कथन के द्वारा काव्य के आत्मा के रूप में सर्वप्रथम रीति की स्थापना की है। ' काव्य शब्दोयम् गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोः वर्तते'[4] अर्थात् यह काव्य

---

1. काव्यालंकार 1, 16.
2. काव्यादर्श 1,10.
3. काव्यालंकार सूत्र 1,2,6
4. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति 1,1 .

आचार्य 'क्षेमेन्द्र' औचित्य सिद्धांत के प्रतिष्ठापक माने जाते हैं, जो औचित्य को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हैं - 'औचित्यं रससिठस्य स्थिरंकाव्यस्य जीवितम्'।[1]

क्षेमेन्द्र औचित्य को ही यद्यपि काव्य की आत्मा स्वीकार करते हैं तथापि काव्य के स्वरूप की जो अवस्थिति प्रस्तुत है वह शब्दार्थ उभय रूप ही होती है क्योंकि औचित्य का विचार शब्द और अर्थ दोनों को लेकर के बनेगा। अतः इनके अनुसार भी काव्य लक्षण शब्दार्थ उभय रूप ही होगा।

'मम्मट' ने अपने काव्य लक्षण में सभी वांछित विशेषणों को समाहित करकेएक परिष्कृत स्वरूप प्रदान किया है जो पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धांतों का परिष्कार रूप होता है हुआ भी अपने सुव्यवस्थित स्वरूप में आज भी निष्पक्ष आचार्यों के द्वारा समादृत है जो इस प्रकार है -

" तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृतीपुनःक्वापि"।[2]

अर्थात् दोषों से रहित गुणों से युक्त सामान्यतया अलंकारों से युक्त कहीं-कहीं अलंकार रहित शब्द और अर्थ दोनों सम्मिलित रूप में काव्य कहे जाते हैं। यह काव्य लक्षण एक समग्र काव्य स्वरूप बोधक लक्षण है।

आचार्य 'हेमचन्द्र ' ने आचार्य 'मम्मट' के अनुसार ही काव्य का लक्षण किया है जो इस प्रकार है - 'अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यं"।[3]

---

1. औचित्यविचारचर्चा 4,5
2. काव्य प्रकाश प्रथम उल्लास श्लोक नं0 4 .
3. काव्यानुशासन पृष्ठ 16.

आचार्य 'वाग्भट्ट' ने वाग्भटालंकार में " शब्दार्थौ निर्दोषों सगुणौ प्राय: सालंकारौ च काव्यं"।[1] यह काव्य का लक्षण किया है जो आचार्य 'मम्मट' के काव्य लक्षण का लगभग शब्दान्तर ही कहा जा सकता है।

आचार्य ' विद्याधर' का साहित्य शास्त्र का 'एकावली' नामक ग्रन्थ है। आचार्य विद्याधर ने अपने इस ग्रन्थ में काव्य का लक्षण इस प्रकार किया है। "शब्दार्थौ वपुरस्य तत्र विबुधैरात्माभ्यधायि ध्वनि:[2]

अर्थात् विद्वानों के द्वारा आत्मा रूप में ध्वनि जहां विवक्षित है ऐसे काव्य का शरीर शब्दार्थ दोनों हैं। इस प्रकार विद्याधर के मतानुसार शब्द और अर्थ दोनो काव्य के रूप में विवक्षित होते हैं।

आचार्य ' विद्याधर ' अलंकारशास्त्र पर 'प्रतापरुद्र - यशोभूषण ' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इनका काव्य लक्षण मम्मट आदि के काव्य लक्षण का अनुवाद रूप है जो इस प्रकार है -

" गुणालंकारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ"[3]

अर्थात् गुण एवं अलंकार के सहित दोष वर्जित शब्द एवं अर्थ दोनो काव्य हैं। इस प्रकार यह लक्षण पूर्वाचार्यों के मतों का पोषक एवं अनुरूप ही है।

आचार्य भामह से लेकर विश्वनाथ तक लगभग सभी ने शब्दार्थ उभय को ही काव्य माना है जिसमें सर्वप्रथम परिष्कृत रूप में जहां आचार्य कुन्तक ने शब्दार्थ को विशेषण विशिष्ट किया वही आचार्य 'मम्मट' ने उसका सर्वमान्य परिष्कृत स्वरूप स्थापित किया और उनके परवर्ती आचार्यों ने भी शब्दार्थ को ही काव्य माना।

---

1. वाग्भटालंकार पृष्ठ 14
2. एकावली पृष्ठ 1, 13.
3. प्रतापरूद्रयशोभूषण पृष्ठ 42.

आचार्य 'विश्वनाथ' ने आचार्य 'मम्मट' के काव्य लक्षण का जोरदार खण्डन करते हुए ' वाक्यं रसात्मकं काव्यं'।[1] इस काव्य लक्षण की स्थापना की है।

आचार्य ' पण्डितराज जगन्नाथ ' शब्द को ही काव्य मानकर ' रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यं[2] इस प्रकार काव्य का लक्षण किया है। इन्होंने लोकोत्तर अह्लाद उत्पादक ज्ञानगोचरता को रमणीयता के रूप में प्रतिपादित किया है और लोकोत्तर शब्द का अर्थ हृदयगत अनुभवसाक्षिता को जो चमत्कारता का दूसरा पर्याय है, स्वीकार किया है। इस प्रकार चमत्कार जनक भावनाविषयार्थप्रतिपादक शब्द काव्य के रूप में पण्डितराज को अभिमत है।

काव्य का महत्व -

विश्व में प्रत्येक कार्य किसी न किसी लक्ष्य को रखकर किये जाते हैं अर्थात् कुछ उद्देश्य बिना बनाये किसी भी कार्य में मानव की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसीलिए यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि 'प्रयोजनम् अनुदिश्य मंदोऽपि न प्रवर्तते" इस लोकोत्तर वर्णना निपुण कवि कर्म रूप काव्य का भी कोई न कोई एक ऐसा उददेश्य है जिसकी पूर्ति हेतु विचारक कवियों की प्रवृत्ति काव्य रचना में होती है। ' भरत मुनि ' से लेकर बहुत से आचार्यों ने काव्य के प्रयोजनों का समुल्लेख अनेक प्रकार से किया है। आचार्य भरत वस्तुत: नाट्य शास्त्र के रचयिता है। अत: उन्होंने दृश्य काव्यो के उद्देश्य के रूप में जहां नाटकों को उत्तम, मध्यम, अधम मनुष्यों के कर्म संश्रय ' हितोपदेश ' के जनक धृति क्रीड़ा सुखादि के करने वाले दुखार्त, श्रमार्त, शोकार्त, तपस्वियों के विश्राम के जनक नाटकों को माना है और धर्म, यश, आयुश ,हित, बुद्धिवर्धक, लोकोपदेश जनक भी स्वीकार किया है। ' उत्तमाधममध्यानां नराणं कर्मसंश्रयम्।

हितोपदेशजननं धृति-क्रीड़ा-सुखादिकृत ।।
दुखार्ताजां श्रमार्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रान्ति जननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति।।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम् ।
लोकोपदेशजननं नाटयमतद् भविष्यति"।[3]

---

1. साहित्य दपर्ण प्रथम: परिच्छेद: पृष्ठ 23.

आचार्य भामह काव्य के प्रयोजनों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि उत्तम काव्य की रचना धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा कलाओं में निपुणता यश और आनन्द की अभिवृद्धि करती है।[1] आचार्य भामह ने जिन काव्य के प्रयोजनों का उल्लेख किया है उनका अनुकरण परवर्ती आचार्यों ने भी कही पर अंशतः तो कहीं पर पूर्णरूप में किया है।

आचार्य, वामन, काव्य के मुख्य रूप से दो ही प्रयोजन मानते हैं। वे कहते हैं कि काव्य के दृष्ट एवं अदृष्ट रूप में दो ही प्रयोजन होते हैं जिसमें आनंदानुभूति दृष्ट प्रयोजन है और यश की अभिवृद्धि अदृष्ट प्रयोजन है।[2] आचार्य वामन ने काव्य बन्ध को जहां यश शरणी बताई वहीं कुकाव्य को अकीर्तिवर्धनी बताया ये कीर्ति को स्वर्ग का फल मानते हैं और अकीर्ति को नरक का घर इसीलिये सुकाव्य निबन्ध ही कीर्ति एवं प्रीति का प्रयोजन होता है।

आचार्य कुन्तक काव्य के प्रयोजनों का निरूपण करते हुए कहते हैं- " जहां अभिजात कुलोत्पन्न जनों के लिये उत्तम काव्य की रचना सुन्दर एवं सरस क्रम से प्रतिपादित धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि का सरल मार्ग है। सत्काव्य स्वकीय अध्येयताओं को पूर्ण ज्ञान कराता है और सहृदय सुखी जनों के हृदय में आनन्दानुभूति रूप चमत्कार उत्पन्न करता है।[3] आचार्य कुन्तक ने वस्तुतः भामह के द्वारा प्रतिपादित काव्य प्रयोजनों का ही उल्लेख किंचिद् विशद् रूप में प्रस्तुत किया है।

---

1. धर्मार्थ काममोक्षेषु वयि चक्षण्यम् कलाशु च करोति कीर्तिं प्रीर्तिं चं साधु काव्य निबन्धनम्। (काव्यालंकार 1, 2)
2. काव्यंसद् दृष्टा दृष्टार्थं प्रीति कीर्ति हेतु इत्यादि। (काव्यालंकार सूत्र।/1)
3. क. धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः
   काव्यबन्धोऽभिजातानां हृदयह्लादकारकः (3)
   ख. व्यवहारपरिस्पन्दसौन्दर्य व्यवहारिभिः। सत्काव्याधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते (4)
   ग. चतुवर्गफलास्वादमप्यतिक्रम तद्विदाम्। काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते (5)
   (वक्रोति जीवितम् प्रथम उन्मेश 3 से 5 कारिका)

आचार्य ' मम्मट ' ने काव्य के प्रयोजनों का उल्लेख लगभग सभी आचार्यों की अपेक्षा सुस्पष्ट एवं विशद् रूप में प्रस्तुत किया है। आचार्य ' मम्मट ' कहते हैं कि यश की प्राप्ति के लिए अर्थ की प्राप्ति के लिए, समाज में उत्तम व्यवहार को जानने के लिए, यथा कथंचित प्राप्त अशुभों एवं अकल्याणों के निवृत्ति के लिये शीघ्र ही ब्रह्मानन्द सहोदर रसानुभूति रूप परमानन्दानुभूति प्राप्ति के लिये माधुर्य युक्त वर्णनाओं से कान्ता के द्वारा उद्बोधन के समान सरस उपदेशों के द्वारा शुभ कार्यों में प्रवृत्ति के लिए काव्यों का अध्ययन परम आवश्यक है। यह प्रतिपादित किया है।[1] आचार्य ' मम्मट ' यह स्वीकार करते हैं कि वास्तव में काव्य एक ऐसा कल्पवृक्ष है कि जो सभी कामनाओं की पूर्ति यथासम्भव करता है। ' कीर्तिर्यश्य सजीवति' इस कथन की सत्यता त्रिकालाबाध्य है। आज भी कालिदास प्रभृति महाकवियों का कीर्ति-प्रकाश-पुंज पूर्ववदेव सर्वत्र दिग्दिगान्तर में फैला हुआ है। कवि अपने काव्य के माध्यम से न केवल अपने यश का विस्तार करते हैं। अपितु प्रबन्ध में वर्णित व्यक्ति का भी यशः पताका सर्वत्र फैलाते हैं।[2] रामादि महापुरूषों के यश का विस्तार करने का श्रेय सामान्य सामाजिक जनों की अपेक्षा वाल्मीकि प्रभृति महाकवियों को देना ही अधिक उपयुक्त होगा। काव्य वर्णित में महापुरूषों के आचार - विचार से जहां सामान्य जन भी अपने आचार - व्यवहार को उदात्त बनाता है वही महापुरूषों के चरित्र का गान करने से प्राप्त पुण्य के द्वारा अशुभों एवं अकल्याणों को दूर भी करता है। काव्य के अध्ययन से सहृदय जनों को रसानुभूति के द्वारा परमानन्द की उपलब्धि वस्तुतः श्रेष्ठतर प्रयोजन है।

---

1. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
   सद्यः परनिवृतये कान्तासम्मित तयोपदेशयुजे ॥2॥
   काव्य प्रकाश प्रथम उल्लास श्लोक नं0 2

2. लंकापतेः संकुचितं यथो यगत कीर्तिपात्रं रघुराज पुत्रः
   स सर्व एवादिकवेः प्रभावों न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः

उपदेशों के कथन में लगभग तीन प्रकार देखे जाते हैं। अपने श्रेष्ठ गुरू जनों के द्वारा अथवा वेद शास्त्र के द्वारा प्रतिपादित उपदेश प्रभुसम्मित उपदेश कहा जाता है। वही पुराणों इतिहासों में विभिन्न आख्यानकों के माध्यम से तथा अपने अभिन्न हृदय मित्रों के द्वारा प्राप्त उद्बोधन सुहृद सम्मित उपदेश माना जाता है। किन्तु सरस काव्यों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत सुमुखि कामनी के द्वारा कथित उपदेश कान्ता सम्मित उपदेश माना जाता है यद्यपि अपने-अपने स्थल में तीनों उपदेश उपयुक्त हैं तथापि प्रवृत्ति- प्रयोजकता उत्तरोत्तर अधिक होती है। गुरू जनों के और वेदादि के द्वारा प्राप्त उपदेशों से जहां श्रद्धातिरेक होने पर ही प्रवृत्ति होती है। वही पुराणेतिहास एवं मित्रों के उपदेश से प्रवृत्ति प्रयोजकता स्नेहातिरेक से सम्भव है। किन्तु स्नेही मधुर भाषिनी कान्ता के उपदेश इतने सरस होते हैं कि इच्छा न रहने पर भी व्यक्ति की कार्य विशेष में प्रवृत्ति बनती है। यही स्थिति काव्यों से भी होती है। इसलिए समाज को एक समुचित मार्ग में लगाने के लिये कान्तासम्मित उपदेश के समान काव्यों की भूमिका सर्वदैव श्लाघनीय रहेगी।

आचार्य ' विश्वनाथ ' अन्य पूर्वाचार्यों के द्वारा प्रतिपादित काव्य प्रयोजनों का संक्षेप में कथन करते हुए एक अतिरिक्त प्रयोजन की भी परिकल्पना करते हैं। काव्य से जहां धर्म, अर्थ , काम, मोक्ष रूप फल की प्राप्ति होती है वही सुकुमार बुद्धिजनों को भी शीघ्र ही वेदादि में प्रतिपादित सिद्धांतों का अनायास सुखपूर्वक ज्ञान हो जाता है।[1]

आचार्य ' विश्वनाथ ' अपने इस काव्य प्रयोजन का उल्लेख करके आचार्य ' भामह ' के काव्य प्रयोजन का उल्लेख एवं व्याख्यान करते हैं। जिससे यह सिद्ध होता है कि आचार्य ' विश्वनाथ ' को आचार्य भामह का सिद्धांत इस स्थल में पूर्णतया अभिमत है।

---

1. चतुर्वर्ग फलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि ।
काव्यादेव यतस्तेन तत् स्वरूपं निरूप्यते।।
(साहित्य दर्पण प्रथम परिच्छेद - 2)

उपर्युक्त सभी काव्य प्रयोजनों का उल्लेख करने के बाद यह ज्ञात होता है कि आचार्य 'भामह' के द्वारा परिपादित काव्य प्रयोजन ही यथा कथाचित अंश रूप में समग्र रूप में या परिष्कृत रूप में स्वीकृत हुए है जिनमें 'मम्मट' का काव्य - प्रयोजन सर्वथा परिष्कृत है।

काव्य के भेद - संस्कृत काव्य - साहित्य के वस्तुतः आभ्यंतर एवं वाह्य दो स्वरूप होते हैं। काव्यों में व्यंगार्थ की प्रधानता है। व्यग्यार्थोपस्थिति अलौकिक रसानुभूति में परमोपकारिणी होती है। उसी के आधार पर सहृदय काव्यशास्त्रीय विद्वान् जन व्यंग्यार्थ को ध्यान में रखकर काव्य के तीन भेद मानते हैं। उत्तम काव्य वह है जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारी हो तथैव मध्यम काव्य वह है जिसमें वाच्यार्थ अधिक चमत्कारी हो तथा व्यंग्यार्थ अप्रधान हो अधम काव्य उसे कहते हैं जिसमें व्यंग्यार्थ का पूर्णतया अभाव हो साथ ही शब्दचित्र एव अर्थचित्र की प्रधानता हो। वाह्य दृष्टि से भी काव्य के अनेक भेद होते हैं। जिसमें सर्वप्रथम इसके दो भेद माने जाते हैं। दृश्य तथा श्रृव्य। दृश्य काव्यों से वस्तुतः रूपकों का ही ग्रहण होता और रूपक दस माने जाते हैं। नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईतामृग, अंक, वीथी तथा प्रहसन इसी प्रकार उपरूपकों के अठारह भेद माने गये हैं। श्रव्य काव्यों के भी तीन भेद आचार्यों ने स्वीकार किये हैं पद्यमय, गद्यमय तथा गद्यपद्ययोभयमय। पद्य काव्य के प्रथमतः पांच भेद माने गये हैं। स्वतंत्र पद्य मुक्तक, परस्पर सापेक्ष दो पद्य युग्मक, परस्पर सापेक्ष तीन पद्य सन्दानितक, परस्पर सापेक्ष चार पद्य कलापक्ष तथा पांच एवं उससे अधिक पद्यों की परस्पर अपेक्षा रहे तो उन्हें कुलक कहते हैं। इसके अनन्तर महाकाव्य खण्डकाव्य के रूप में भी दो भेद पद्य काव्यों के होते हैं।

गद्य काव्य में भी चार भेद माने जाते हैं मुक्तक वृत्तगन्धि उत्कलिकाप्राय एवं चूर्णक। इसमें ये भेद स्वरूप की दृष्टि से किये गये हैं वस्तुतः काव्य की दृष्टि

---

1. सा.द. 6/3-6 पृ0 388 (2) 6/313- 315.

से गद्य काव्य में आख्यायिका तथा कथा नामक दो ही भेद होते हैं। चम्पू काव्य श्रव्य काव्यों के भेदों में तृतीय स्थानक है। इसका लक्षण साहित्य दर्पणकार ने 'गद्य पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते"[1] इस प्रकार किया है। जिस काव्य में गद्य तथा पद्य का दोनों का समान रूप से पूर्ण प्रयोग किया गया हो ऐसे काव्य को चम्पू काव्य कहते हैं। गद्यपद्यमय काव्य के भी अनेक भेद माने गये हैं। जिनमें विरुद्ध एवं करम्भक अधिक प्रसिद्ध है। विरुद में गद्यपद्य रूप से राजाओं के स्तुति का कथन होता है[2] जैसे - ' विरुदमणिमाला ' करम्भक की रचना अनेक भाषाओं के द्वारा गद्यपद्यमय शैली में होती है जैसे - सोलह भाषा वाली ' प्रशस्ति रत्नावली' है।

चम्पू काव्य- जहां श्रव्य काव्यों में अनेक मुक्तक तथा प्रबन्ध काव्यों में महाकाव्य खण्डकाव्यादि की रचनाएँ हुई वही गद्य काव्यों में सुबन्धु बाणभट्ट, दण्डी जैसे गद्य रचनाकार सहृदयों के परमोपकारक हुए। इसी परम्परा में गद्यपद्य उभय् मिश्र काव्यों का रूपकों से अतिरिक्त जो संरचना हुई उसे विद्वानों ने चम्पू इस संज्ञा से विभूषित किया। चम्पू की व्युत्पत्ति के विषय में कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता ' हरिदास भट्टाचार्य ' ने इसकी एक अर्थ प्रधान व्युत्पत्ति की जिसे व्युत्पत्ति कम निर्वचन ज्यादा कहा जा सकता है - ' चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मयीकृत्य प्रसादयति इति चम्पू:[3]। वस्तुतः ' चुरादि गणपठित गत्यर्थक चपि धातु से कृषिचमितनिधनि सर्जखर्जिभ्यः ऊः'।[4] सूत्र में ऊ का योग विभाग करने पर अन्य इष्ट धातुओं से भी ऊ प्रत्यय का कर्ता अर्थ में विधान होता है। फलतः चम्पयति गद्यपद्यमय सरस पदावली समुदभूत रसचर्वणाम् प्राप्यति सहृदयान् असौ चम्पूः। चम्पू काव्य के लक्षणों के विषय

---

1. साहित्य दर्पण 6, 336
2. साहित्य दर्पण गद्यपद्यमयी राजस्तत्वतिरविरुदः मुच्यते , 6, 337
   { का पूर्वार्द्ध }
3. चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 26 से उद्धृत।

में बड़ी ही दयनीय स्थिति है। जो लक्षण यथा कथंचित साहित्यशास्त्रियों के द्वारा दिये गये हैं वे सम्प्राप्त चम्पू साहित्य में पूर्णतया सटीक नहीं बैठते। सर्वप्रथम चम्पू काव्य का लक्षण आचार्य दण्डी ने किया। वे कहते हैं - ' मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तरः। गद्यपद्यमयी काचित्चम्पूरित्यपि विद्यते।[1] इनके कथन से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य दण्डी के समय चम्पू काव्य का अस्तित्व हो गया था। आचार्य हेमचन्द्र एवं वाग्भट्ट ने ' गद्यपद्यमयी सांका सोच्छ्वासा चम्पूः[2] कहकर चम्पू का लक्षण किया। इनके अनुसार गद्य एवं पद्य से युक्त प्रबन्ध रचना को, जिनका वर्गीकरण अंकों एवं उच्छवासों में हुआ है चम्पू कहेंगे। साहित्यदर्पणकार भी इसी प्रकार ' गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते[3] इस प्रकार चम्पू का लक्षण किया है। एक अज्ञातनामा व्यक्ति ने चम्पू काव्य का लक्षण किंचित परिष्कृत रूप में इस प्रकार किया है - ' गद्यपद्यमयी सांका सोच्छवासा कविगुम्फिता। उक्तिप्रत्युक्तिविष्कम्भशून्या चम्पूरुदाहृता।[4] अर्थात् जिसमें गद्यपद्यमय रचना हो अंको उच्छवासों से वर्गीकृत उक्ति प्रत्युक्तिविष्कम्भशून्या कवि के द्वारा निरचित सरस काव्य रचना चम्पू कही जाती है।

---

1. काव्यादर्श 1, 31
2. (क) काव्यानुशासन, हेमचन्द्र 8, 9

   (ख) काव्यानुशासन वाग्भट्ट प्रथम अध्याय ।
3. साहित्यदपर्ण 6, 336
4. डॉ सूर्यकान्त द्वारा संपादित नृसिंह चम्पू की भूमिका से उद्धृत

ये सभी लक्षण लक्ष्यों में यथावत् खरे नही उतरते। कई ऐसे चम्पू हैं जिनमें उच्छ्वासों से विभाग किया गया है। यथा नलचम्पू पारिजातहरण चम्पू। कुछ है जिन्हें आस्वासों में विभाजित किया गया है यथा - यशस्तिलकचम्पू। कुछ काण्डों में विभाजित है जैसे - रामायणचम्पू। तदैव कुछ उक्तिप्रत्युक्ति पर भी निर्मित है। जैसे - विश्वगुणादर्श श्रव्य काव्य होने से विष्कम्भक की शून्यता स्वतः सिद्ध हो जाती है। अंक में विभाजन गंगावतरणचम्पू शंकरचेतोविलास का स्तवकों से, यतिराजविजय, काकुस्तविजय आदि चम्पू काव्यों को तरंगों से, भरतेश्वराभ्युदय आदि चम्पू काव्यों का सर्गो से वरदाभ्युदय आदि का विलासो से, सतगुणादि तत्वागुणादर्श आदि चम्पुओं का वर्ण्य विषय से, जीवन्धर चम्पू का लम्भक से, आचार्य दिग्विजयचम्पू का कल्लोल से, भगीरथीचम्पू का मनोरथ से, मन्दारमरन्दचम्पू का बिन्दु से, रामचन्द्रिका चम्पू का परिच्छेद से, विभाजन हुआ है। इस प्रकार चम्पू काव्यों के विभाजन में कवियों की अपनी रूचि ही प्रधान रही है। अतः पूर्वोक्त लक्षणों का संघटन इन परिगणित चम्पुओं में सम्यक् नहीं होता। फलतः यह लक्षण अव्याप्ति दोषो से युक्त है। सर्वमान्य लक्षण के विषय में यदि विचार किया जाये तो चम्पू काव्य के लक्षण को दूसरे ही ढंग से लक्षित करना पड़ेगा जो लगभग इस प्रकार का माना जा सकता

है। " जिसमें वर्ण्य व्यक्ति के दीर्घ जीवन की अनेक घटनाओं का चमत्कार युक्त सरस माधुर्य आदि गुण गुम्फित सुमनोहर अलंकारों से युक्त सरस गद्यपद्योभयमय कवि हृदयोद्भावित पद विशेष से वर्णन हुआ है वह कविकर्म चम्पू है।

चम्पू काव्यकारों ने चम्पू काव्य की अनेक विशेषताओं एवं महत्व का सुन्दर उल्लेख किया है। जहां जीवन्धर[1] चम्पूकार ने चम्पू काव्य को बाल्य तथा तारूण्य से सम्पन्न किशोरी कन्या के समान अधिक रसोत्पादक अंगीकार किया है वही ' रामायण ' चम्पूकार[2] ने गद्यसमन्वित पद्य सूक्ति को वाद्य से युक्त गायन के समान अधिक हृदयावर्जक स्वीकार किया है। ' विश्वगुणादर्श चम्पूकार[3] ने मधुद्राक्षा के संयोग के समान माधुर्य युक्त स्वीकार किया है। 'तत्वगुणादर्श चम्पूकार '[4] ने तो मुक्तमाला के सदृश आकर्षक माना है वही 'कुमारसम्भवचम्पूकार[4] ने अमृत और सुरा के संयोग के समान हृदयाह्लादक माना है।

---

1. गद्यावली पद्यपरम्परा च प्रत्येकमप्यावहति प्रमोदम।
   हर्ष-प्रकर्ष तनुते मिलित्वा द्राकवाल्यतारूण्यवतीव कन्या।
   जीवन्धर चम्पू 1,9

2. गद्यानुबन्धरसमिश्रित पद्य- सूक्तिर्हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः
   तस्माद्दधातु कविमार्गजुषां सुखाय चम्पूप्रबन्ध रचना रसना मदीया।।
   (चम्पूरामायण -बालकाण्ड श्लोक 3)

3. पद्यं यद्यपि विद्यते बहुसतां हृद्यं विगद्यं न तत्,
   गद्यं च प्रतिपद्यते न विजहत्पद्यं बुधास्वाद्यताम्।
   आदत्ते हि तयोः प्रयोग उभयोरामोदभूमोदयं,
   संगः कस्य हि न स्वदेत मनसे माध्वीकमृद्वीकयोः ।।
   विश्वगुणादर्श चम्पू (1, 4)

4. लोके श्लोकाननेकान् विदधति कृतिनः श्रीकरास्तोकपाकानेके गद्यानि
   हृद्यान्यतिमधुरपदास्वाद्यानि चान्ये ।
   पार्श्वाभिव्यक्तमुक्ताफलकलनकनत्पद्मरागोज्ज्वलोस्त्रम्
   बन्धच्छायानुबद्धं रचयति कविराडेष चम्पूप्रबन्धम्।।

5. पद्यं हृद्यमपीह गद्यरहितं धत्ते न हृद्यास्पदं गद्यं पद्यविवर्जितं च भजनेनास्वाद्यतां मनसे।साहित्यं हि तयोर्द्वयोरपि सुधामाध्वीकयोर्योगवत् सन्तोषं हृदयाम्बुजे

यद्यपि गद्य एवं पद्य के द्वारा वर्ण्य विषयों का सामान्यतया विभाजन नही किया जा सकता तथापि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर दोनों के वर्ण्य विषयों का विभाजन अवश्य किया जा सकता है। सहृदय मानवों के रागात्मिका प्रवृत्ति के अवबोधक भाव छन्दों के माध्यम से अतीव सुन्दरतया प्रस्तुत किये जाते हैं, तो वाह्य वस्तुओं के चित्रण में गद्य संरचना से अपने विशिष्ट सामर्थ्य को दिखलाते हैं। फलतः गद्य पद्य का मिश्रित रूप विन्यास अवश्य ही अनुपम सुधीजन हृदयाह्लादक होता है। इसीलिए चम्पू काव्यों का एक अपना विशिष्ट स्थान है। चम्पू काव्यों में गद्य एवं पद्यों का विन्यास वर्ण्य विषय के अनुसार स्वतः स्फूर्ति नियमों पर ही होता है। किस स्थल विशेष पर पद्यों का विन्यास हो और कहां पर गद्य की सरस पदावली प्रयुक्त हो, इसमें रचयिता की अपनी स्वेच्छा ही रहती है तभी चम्पू काव्य का नैसर्गिक चमत्कार चमत्कृत हुआ है। और उस ओर जहाँ अनेक रचनाकार अभिमुख हुए, वहीं सहृदय रसिक समाज में भी चम्पू काव्यों का पर्याप्त सम्मान हुआ है।

चम्पू काव्य की उत्पत्ति एवं विकास -

चम्पू काव्यों का मूल स्वरूप जिसे गद्य पद्यमिश्रित रचना प्रकार इस एक सामान्य नाम से व्यवहार कर सकते हैं उसका एक आदि स्वरूप हमें वेदों से प्राप्त होता है। कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध तैत्तिरीय मैत्रायणी तथा काठक संहिताओं में गद्य पद्यात्मक मिश्रित शैली का प्रथम साक्षात्कार होता है। अर्थवर्वेद संहिता में भी इस शैली के उदाहरण तथा कथचिंत प्राप्त होते है। ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐतरेय ब्राह्मण का ' हरिश्चन्द्रोपाख्यान" नामक तैतीसवां अध्याय एतदर्थ दर्शनीय है। वेद के आरण्यक साहित्य में ऐतरेय आरण्यक में तथा कठ, प्रश्न, मुण्डक आदि उपनिषदों में गद्य पद्यमय शैली का स्वरूप उपलब्ध होता है। पुराण ग्रन्थों में श्रीमद्‌भागवत् का पंचम स्कन्द एवं विष्णुपुराण का चतुर्थ अंश अवलोकनीय है। बौद्धों एवं जैनों के साहित्य में भी गद्य पद्यमयी शैली का प्रयोग जातक एवं औदान साहित्य में तथा 'समराइच्छ कहा' आदि ग्रन्थों में गद्य पद्य मिश्रित रचनाओं का दर्शन होता है किन्तु

वेदादि एवं जातक आदि कथाओं में चम्पू काव्य सदृश्य आलंकारिक सुन्दर शैली का साक्षात्कार नहीं होता। साहित्य जगत का सर्वप्रथम अतीव उत्कृष्ट चम्पू काव्य दशवीं शताब्दी में (915 ई0) त्रिविक्रम भट्ट के द्वारा विचरित नल चम्पू प्राप्त होता है।

इन्हीं के द्वारा विचरित दूसरा चम्पू काव्य ' मदालसा चम्पू ' माना जाता है। त्रिविक्रमभट्ट शांडिल्य गोत्री श्रीधर के पौत्र तथा नेमादित्य के पुत्र थे। सरस्वती की कृपा से चमत्कारी चम्पू काव्य की रचना में समर्थ हुए। राष्ट्रकूट वंशीय राजा कृष्ण तृतीय के पौत्र राजा जगततुग और लक्ष्मी के पुत्र राजा इन्द्रराज तृतीय के ये आश्रित कवि रहे। जिनका काल 915 ई0 है फलत: त्रिविक्रमभट्ट का समय दशम शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। यह प्रख्यात नाटककर्ता राजशेखर के समकालीन माने जाते हैं। नलचम्पूकाव्य में महाभारत के नलोपाख्यान से ग्रहीत नल एवं दमयन्ती की कथा का आलंकारिक प्रस्तुति हुई है। मदालसा चम्पू मार्कण्डेय पुराण के अध्याय अठ्ठारह से बाईस अध्याय तक वर्णित राजा कुवलयस्व और रानी मदालसा की प्रणय कथा थी। प्रस्तुतीकरण बड़े ही रमणीय रीति से हुआ है।

जैन कवियों ने चम्पू साहित्य का विस्तार बड़े ही मनोयोग से किया दसवीं शताब्दी में ही विश्रुत जैनचम्पू काव्य के प्रणेता सोमदेवसूरि 10वीं शताब्दी के राष्ट्रकूट राजा कृष्णदेव के समकालीन थे। उन्होंने यशस्तिलक चम्पू की रचना 959 ई0 में की थी।[1] सोमदेवसूरि प्रसिद्ध जैन कवि थे। यशस्तिलक चम्पू जैन पुराण में विश्रुत यशोधर के चरित्र का वर्णन अतीव माधुर्य पूर्ण आलंकारिक शैली में करता है। सोमदेव अपनी काव्य रचना के विषय में बाणभट्ट की कादम्बरी को आदर्श मानकर चलते हैं। यह चम्पू काव्य भाषा एवं शैली की दृष्टि से प्रौढ़ एवं आकर्षक रचना कही जा सकती है।

जैन कवियों में भी आचार्य हरिश्चन्द्र द्वारा रचित जीवन्धर चम्पू उत्कृष्ट साहित्यिक रचना है।[2] जीवन्धर चम्पू का कथानक गुणभद्र के ' उत्तर पुराण '

---

1. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृ0 105

पर आश्रित है। साहित्य में सर्वविदित जीवन्धर की कथा का साहित्यिक स्वरूप वादीभ सिंह के गद्य चिन्तामणि एवं क्षत्रचूडामणि में प्राप्त होता है। उन्ही से प्रभावित होकर हरिश्चन्द्र ने इस काव्य की रचना की। इनके भी आदर्श आचार्य बाणभट्ट माने जाते हैं। इनका कार्यकाल 900 से लेकर 1100 ई0 तक के मध्य का माना जाता है। उदयसुन्दरीकथा सोड्ढल कवि की एक सुन्दर प्राचीन रचना है। कवि सोड्ढल गुजराती कायस्थ थे। उनके आश्रयदाता कोकड़ के राजा मुम्मुणिराज जिनका कार्यकाल 1060 ई. के लगभग है।[1] इन्होंने उदयसुंदरी कथा का प्रणयन गुजरात के चालुक्य नरेश वत्सराज की प्रेरणा से की थी जिनका कार्यकाल 1026 से 1060 ई0 तक रहा। इस चम्पू काव्य में प्रतिष्ठान नगर के राजा मलयवाहन का नागराज शिखण्ड तिलक की कन्या उदयसुन्दरी के साथ विवाह के प्रसंग को लेकर सुन्दर वर्णन हुआ है।

अभिनव कालिदास ने भागवत् चम्पू की रचना की थी। इसमें श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्द की कथा का आधार लेकर कृष्ण चरित्र का सुन्दर अलंकारिक श्रृंगार रसपूर्ण वर्णन हुआ है। अभिनव कालिदास उत्तरी पेन्नार के किनारे स्थित विद्या नगर के राजा राजशेखर के राजकवि तथा कवि कुंजर के गुरू थे। अभिनव कालिदास यह इनकी उपाधि है। इनका समय 11वीं शताब्दी का मध्य माना जाता है।[2]

रामायणचम्पू काव्य चम्पू काव्यों में एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसके रचनाकार परमार-वंशीय धारानरेश राजा भोज हैं। राजा भोज का कार्यकाल ई0 सन् 1018 से 1063 के मध्य का रहा है।[3] जहां इनकी लोकप्रियता, दानी, न्यायप्रिय, कुशल प्रशासक की रही है वहीं उत्कृष्ट वैदुष्य एवं कवित्व इनका प्रमुख अलंकार रहा है। चम्पूरामायण इनकी उत्कृष्ट एवं सर्वाधिक सर्वजनग्राही लोकप्रिय रचना है

---

1. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 111.
2. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 113
3. चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 108.

जिसकी रचना वाल्मीकि रामायण से प्रेरणा प्राप्त करके लगभग उसी आधार पर काण्डों में ही विभक्त होते हुए हुई है। इसमें भगवान् श्रीराम के समग्र रूप का अनुपम चित्रण हुआ है।

अनन्त भट्ट द्वारा रचित ' भारत चम्पू ' चम्पू काव्यों में प्रमुख स्थान रखता है। अनन्त भट्ट अभिनव कालिदास के प्रतिस्पर्धी कवि के रूप में चर्चित रहे हैं। इनका भी कार्यकाल ।।वीं शताब्दी का माना जाता है।[1] इसका उपजीव्य ग्रन्थ महाभारत रहा है। इसका मुख्य रस वीर है। यह चम्पू काव्य विद्वानों के द्वारा सर्वदा आदरणीय रहा है। भागवत् को आधार बनाकर भरतेश्वरभ्युदय चम्पू की दिगम्बर जैनी गृहस्थ विद्वान् आशाधर ने किया इसमें ऋषभदेव के पुत्र भरत का चरित्र बड़े ही सुन्दर भाषा में आलंकारिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है - ये जैनों के तीर्थंकर माने जाते हैं। इन्हीं की कथा का वर्णन आचार्य आशाधर ने इस चम्पू काव्य में किया है। इनका कार्यकाल ।243 ई0 है।[2]

पं0 आशाधर के शिष्य अर्हदास ने जैन संत पुरुदेव के जीवन चरित्र का आश्रयण कर पुरुदेवचम्पू काव्य की रचना की। जैन साहित्य के पुराणों में पुरुदेव का चरित्र आदिपुराण, उत्तर पुराण मुनि सुव्रतपुराण में आया है। आशाधर का कार्यकाल ही इनका कार्यकाल माना जा सकता है।

कवि प्रवर दिवाकर ने वाल्मीकि रामायण को आधार मानकर अमोघराघवचम्पू नामक चम्पूकाव्य कीरचना की जो उनकी यह रचना ।299 ई0 में हुई थी।[2] इस चम्पू काव्य का आधार ग्रन्थ रामाण माना जाता है।

वर्ण्य विषयों के आधार पर चम्पू काव्यों का विवरण इस प्रकार है। कृष्ण कथा परक चम्पुओं में जैसे भागवतचम्पू प्रसिद्ध है उसी प्रकार कवि कर्णपूर

---

1. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ ।17
2. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ ।22

का ' आनन्दवृन्दावन ' चम्पू[1] अतीव हृदया वर्जक रसमय अलौकिक चमत्कार से युक्त है। यह चम्पू काव्य चम्पू काव्यों का शिरोमणि कहा जाता है। इसी संदर्भ में कृष्ण की बाल लीलाओं का आश्रयण कर जीवगोस्वामी का ' गोपालचम्पू ' तथा मित्रमिश्र द्वारा विरचित ' आनन्दकन्दचम्पू ' (17वी शताब्दी) उत्कृष्ट चम्पू काव्य रचनाएं हैं।[2] तथैव ' मुक्ताचरितत्र ' चम्पू जो ' रघुनाथ दास ' द्वारा विरचित है, कृष्णचरित्र का अद्‌भुत वर्णन करता है। प्रसिद्ध वैयाकरण शेष श्रीकृष्ण का ' पारिजातहरण चम्पू[3] (16वी शताब्दी) श्रीकृष्ण चरित्र के अद्‌भुत प्रसंग का अनुपम प्रस्तीकरण है। इसमें सत्यभामा का मनोरम चित्रण है।

पौराणिक चम्पुओं के संदर्भ में ' दैवज्ञ सूर्य ' का ' नृसिंहचम्पू '[4] (16वी शताब्दी) ' नारायण भट्ट ' का ' मत्स्यावतारप्रबन्धचम्पू ' (16वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध) इसके अलावा ' नारायण भट्ट ' ने महाभारत से सम्बन्धित विषयों को लेकर ' राजसूयप्रबन्धचम्पू ', पांचाली स्वयंवर चम्पू, स्वाहा सुधारक चम्पू ' 'कोटि विरह चम्पू ', नृगमोक्ष चम्पू', एवं अष्टमीमहोत्सवचम्पू की रचना की थी।[5]

नारायण दीक्षित के पुत्र ' नीलकण्ठ दीक्षित ' द्वारा विरचित ' नीलकण्ठविजय चम्पू '[6] (17वीं शताब्दी) समुद्र मन्थन की कथा का मनोरम चित्रण करने वाले कवि की प्रौढतम रचना मानी जाती है।

---

1. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 130
2. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 181
3. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 151
4. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 160
5. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 173 से 180
6. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 192

ऐतिहासिक चम्पुओं में ' तिरूमलाम्बा ' लिखित ' वरदाम्बिकापरिणयचम्पू'[1] वर्णन कला की अनूठी कृति है। तिरूमलाम्बा विजय नगर के सम्राट अच्युतराय की पट्टमहिषी थी इसमें आपने पति अच्युतराय एवं वरदाम्बिका नामक सुन्दरी के परिणय का सुन्दर चित्रण है।

'आनन्दरंगविजयचम्पू' ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रचना है। इसमें आनन्दरंग पिल्लय (18वीं शताब्दी)[2] के ही असाधारण व्यक्तित्व का वर्णन हुआ है। कवि श्रीनाथ इन्हीं के आश्रित थे जिन्होंने इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की।

कई ऐसे चम्पुओं का निर्माण हुआ जो महापुरूषों के जीवन चरित्र पर आधारित रहे। जिनमें शंकरदिग्विजय को उद्देश्य में रखकर बल्लिसहाय विरचित ' आचार्य दिग्विजयचम्पू ' ,' श्रीकण्ठ शास्त्री ' विरचित ' जगतगुरूविजय चम्पू ' ' लक्ष्मीपति ' द्वारा विरचित ' शंकरचम्पू ' नीलकण्ठ द्वारा रचित ' शंकरमन्दारसौरभ चम्पू ' बाल गोदावरी रचित ' शंकराचार्यचम्पू ' प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

वैष्णव मतानुयायियों ने मैत्रीय गोत्री कृष्णमाचार्य के पुत्र रामानुजदास विरचित ' नाथमुनिविजय चम्पू ', 'रामानुजाचार्य द्वारा विरचित ' श्री रामानुज चम्पू ' जीवन चरित्र पर लिखी गयी सुन्दर रचनाएं हैं। अहोबल सूरि विरचित ' यतिराजविजय चम्पू ' तथा ' विरूपाक्षमहोत्सव चम्पू ' ऐतिहासिक वर्णन में विशेष महत्त्व रखते हैं। वेदान्त देशिक की जीवनी पर आधारित वेदान्ताचार्य की ' आचार्यविजय चम्पू ' प्रौढ़ रचना है।

पद्नाभ विरचित रींवा नरेश 'वीरभद्रदेव' के वर्णन का आश्रयण करके ' वीरभद्रदेव चम्पू '[3] काव्य एवं भाषा की दृष्टि से ऐतिहासिक तत्वों से समन्वित प्रशंसनीय रचना है। (1633 ई0) इसी प्रकार ' विश्वगुणादर्श चम्पू[4] वेंकटाचार्य

---

1. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 136
2. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 236
3. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 170
4. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 185

द्वारा उचित वेंकटाध्वरि के जीवन वृत्ति का प्रमाणिक परिचय देता है। (17वी शताब्दी) इनके अन्य चम्पू काव्यों में लक्ष्मी सहस्त्रचम्पू, वरदाभ्युदय अथवा हस्तगिरि चम्पू, उत्तररामचरित्रचम्पू, यादवाराघवीर चम्पू, सुन्दर रचनाएं हैं।

अन्य चम्पू ग्रन्थों ' समरपुंगव दीक्षित ' का ' तीर्थयात्रा ' वर्णन पर ' यात्रा प्रबन्ध चम्पू ' (17वीं शताब्दी) प्रसिद्ध काव्य रचना है। कृष्ण कवि द्वारा (16वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) विरचित ' मन्दारमरन्द चम्पू'[1] सभी चम्पुओं से भिन्न है जिसमें दो सौ दो छन्दों के लक्षण तथा उदाहरण एवं अलंकार दोष गुण आदि काव्य तत्वों का विवेचन हुआ है। इसी परम्परा में भारत के दार्शनिक एवं धार्मिक मतों की नाटक शैली पर आलोचना करने वाला चिरंजीव भट्टाचार्य का विद्वन्मोदतरंगिणी चम्पू उल्लेखनीय है। इसका समय (16वीं शताब्दी) का प्रारम्भ का है। इनकी दूसरी रचना माधव चम्पू अलंकारिक एवं मनोरंजक रचना है।

इस प्रकार नलचम्पू से लेकर अद्यतन लगभग 245 चम्पुओं का उल्लेख मिलता है। जिनमें कई प्रकाशित एवं कई अप्रकाशित हैं।

चम्पू काव्य अपने वर्ण्य विषय के संप्रेषण में अन्य काव्यों की अपेक्षा अधिक खरे प्रतीत होते हैं। इसीलिए न केवल महाकवियों ने अपने वर्ण्य विषयों को रसपरिपूर्ण चमत्कृति रचनाओं से सहृदयों को अह्लादित किया, अपितु भक्त कवियों ने अपने भावों का उद्गार भी इन्ही के माध्यम से किया। धार्मिक कवियों ने भी जो विशेषत: जैन एवं बौद्ध मतानुयायी रहे, धार्मिक भावनाओं का जनसाधारण में प्रचार हेतु चम्पू काव्यों को ही माध्यम बनाया।

इसी तरह कई इतिहास से सम्बन्धित तथ्यों को समाज में स्थापित करने के लिए चम्पू काव्यों का आश्रयण हुआ। दार्शनिक आचार्यों ने भी अपने सिद्धांत को जनसाधारण में पहुंचाने के लिये चम्पू काव्यों को आधार बनाया। जिसमें आचार्य शंकर

---

1. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृष्ठ 163

पर तथा वैष्णव सम्प्रदाय में नाथमुनि रामानुज वेदान्ताचार्य आदि पर अनेक चम्पू काव्य लिखे गये। शैव संतों में आनन्दकन्द चम्पू उल्लेखनीय है।

इस तरह इन चम्पू काव्यों के विषयों को एक समग्र दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता है कि चम्पू काव्य की गद्य पद्यमयी सरस आलंकारिक प्रस्तुति जन सामान्य एवं सहृदय समाज में अत्यधिक आदरणीय रही। इसीलिए इन चम्पू काव्यों के रचयिता विद्वान् कवियों ने संप्रेषण का माध्यम चम्पू काव्यों को बनाया।

चम्पू-रामायण -

संस्कृत साहित्य में दृश्य एवं श्रव्य काव्यो की परम्परा में ऐसी कोई विद्या अछूती नही रही जिसमें श्रीराम के चरित्र का चित्रण कवियों ने अपनी प्रतिभा एवं लेखनी से न की हो। यहाँ तक कि लौकिक काव्य का प्रथम प्रणयन राम के चरित्र गुणगान से हुआ जिसे वाल्मीकि ऋषि ने आदि काव्य के रूप में संस्कृत जगत को प्रदान किया। इसी प्रकार अन्य कवि भी किसी न किसी रूप में भगवान् राम चन्द्र जी के चरित्र का काव्यमय वर्णन करके अपने लेखनी को पवित्र करते रहे।

दसवी शताब्दी जब आचार्य त्रिविक्रम भट्ट के प्रथम चम्पू काव्य नलचम्पू का प्रणयन हुआ तो सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य जगत उस काव्य विद्या से इतना चमत्कृत हुआ कि अनेक कवियों की चम्पू लेखन में स्वतः प्रवृत्ति हुई। अनेक शास्त्रविद् कवियों के द्वारा सम्मानित संस्कृत जगत के परमोन्नायक राजाभोज ने भी संस्कृत साहित्य के संवर्धनाथ शब्द अर्थ एवं अलंकारों के माध्यम से चमत्कृत करने वाली गद्य पद्योभयमय काव्यविधा का आश्रयण करके भगवान् श्रीराम-चन्द्र जी के उदात्त चरित्रों के सुमधुर वर्णन के लिये चम्पूरामायण की रचना की। यद्यपि चम्पू काव्यों में निःश्वास, आस्वास, उच्छवास आदि के द्वारा प्रकरण विभाजन की पारम्परिक विधा रही है तथापि वाल्मीकि ऋषि को आदर्श कवि मानने वाले राजा भोज ने रामायण के समान ही काण्डो के माध्यम से प्रकरणों का विभाजन किया जिसके अनुसार चम्पू-रामायण में बालकाण्ड,

अयोध्याकाण्ड, आरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड एवं युद्धकाण्ड के रूप में छः विभागों में समस्त राम कथा का गुम्फन भोज ने गद्यपद्यमयी शैली में प्रस्तुत किया। अकाल में ही भोजराज के कालग्रस्त हो जाने के कारण इस ग्रन्थ के पाँच ही काण्ड (सुन्दरकाण्ड) तक राजा भोज के द्वारा विरचित हुए। छठवाँ काण्ड अलिखित ही रहा, किन्तु आचार्य 'लक्ष्मण सूरि' ने राजा भोज के पूर्व शैली का अक्षरशः अनुकरण करते हुए उसी स्वरूप में अन्तिम युद्धकाण्ड की भी परिणति प्रदान की। उनका प्रतिज्ञा वाक्य पूर्णतया श्लाघ्नीय है -

' साहित्यादिकलावता सनगरग्रामावतसापित[1]
श्रीगंगाधरधीर सिन्धुविधुना गंगाम्बिकासुनुनाः ।
प्राग्भोजोदितपंचकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः -
काण्डो लक्ष्मणसूरिणा विरचितः पष्ठोऽपिजीयाच्चिरम् ।।।

इस प्रकार इस चम्पू-रामायण महाकाव्य के छहो काण्ड पूरे होते हैं। किसी वेंकट पण्डित ने सातवें उत्तरकाण्ड का भी प्रणयन किया है। किन्तु वह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। प्रश्न यह उठता है कि आचार्य लक्ष्मण सूरि ने जब युद्ध काण्ड की रचना की तो उन्होंने उत्तरकाण्ड की रचना क्यों नहीं किया। इसके विषय में दो कारण समझ में आते हैं पहला तो यह है कि चम्पूरामायण लगभग वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। कुछ आचार्यों के मान्यता के अनुसार वाल्मीकि द्वारा प्रणीत छः काण्ड ही माने जाते हैं। उसी आधार को अपनाकर आचार्य लक्ष्मणसूरि ने युद्ध काण्ड की रचना की किन्तु उत्तर काण्ड के विषय में अपनी धारणा नहीं बनाई।

दूसरा कारण यह हो सकता है भारतीय महाकाव्य परमानन्दानुभूति के साथ-साथ सुखान्त काव्यों के प्रणयन में अधिक भाव रखते हैं। उत्तर काण्ड में चरित्र नायक भगवान् श्रीराम का परमधाम गमन की भी कथा विश्व विश्रुत है। उसको स्थान

---

1. चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक ।।0

देने पर काव्यावसान में चरित्र नायक का महाप्रयाण काव्य की सुखान्तता का बाधक हो सकता था। यही दो कारण लक्ष्मणसूरि को उत्तरकाण्ड प्रणयन के प्रेरक नही बने। पं0 वेंकट उस सिद्धांत के अनुयायी प्रतीत होते हैं जो उत्तरकाण्ड को भी बाल्मीकिकृत ही मानते हैं। उस दृष्टि से चम्पूरामायण काव्य भी उन्हें अधूरा लगा। एतदर्थ उन्होंने उत्तरकाण्ड की रचना की जो प्रकाशित न होने से सर्वजन ग्राही नही बन पाया।

चम्पू - रामायण की चारुता ऐसी है कि रामकथा का रसास्वादन बार - बार आदि काव्य एवं अनेक काव्यों के द्वारा होने पर भी नित नूतन ही दिखाई पड़ती है। राजा भोज ने भी उस कथा को अपनाकर न केवल अपनी वाणी पवित्र की अपितु रसिक सहृदय जनों को भी आनन्दानुभूति कराने का सफल प्रयास किया। कृतज्ञभाव से उनकी वाणी अपने आप इस आशय को प्रकट करने लगती है। -

' बाल्मीकिगीत रघुपुंगवकीर्ति लेशैस्तृप्तिं करोमि[1]
कथमप्यधुना बुधानाम्
गंगाजलैर्भुवि भगीरथयन्तलब्धैः किं तपर्णं न
विदधाति नरः पितृणाम्'।।

वस्तुतः विज्ञ सहृदय रसिक जनों के हृदयाह्लादकन के लिए ही चम्पू रामायण की रचना राजा भोज ने किया है। इसके लिये उन्होंने ऐसे विचारों को भी अपने काव्य में स्थापित किया है जिससे सामान्य अधम अशास्त्रज्ञ व्यक्ति आनन्द नही उठा सकते। यथा कवि ने जिस प्रकार उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि बने विश्वामित्र के सम्पर्क जन्य पूण्य से पलाश दण्ड हाथ में लिए रामचन्द्र को भी ब्राह्मण के रूप में चित्रित करते हुए जिस प्रसंग का वर्णन किया है, उसको सामान्यजन हृदयंगम नही कर सकते -

' संड्.क्रान्तवर्णान्तरगाधिसूनोः सम्पर्कपुण्यादिव रामभद्रः[2]
क्षात्रक्रमात् - पिप्पलदण्डयोग्यः पलाशदण्डाहृतपाणिरासीत् ।।

---

1. चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख 4 .

वाल्मीकि रामायण की आधारता चम्पू-रामायण में प्रतिपद स्पष्ट होती है। प्रत्येक काण्ड का प्रारम्भ उसी शब्द से किया है जिस शब्द से वाल्मीकि रामायण का वह काण्ड प्रारम्भ हुआ है। इससे उनमें वाल्मीकि रामायण की समादरता एवं तदनुकूलता स्पष्ट परिलक्षित होती है। बालकाण्ड में जहां इन्होंने आदि श्लोक शोक से श्लोक रूप में परिणत

' मानिषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शास्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

इसका अक्षरशः उल्लेख करते हैं वही अयोध्या काण्ड से लेकर सुन्दर काण्ड तक के आदि श्लोकों के प्रथम पद का ग्रहण उसी रूप में अपने चम्पू-रामायण के उन्हीं काण्डों में सर्वप्रथम करते हैं। जो इस प्रकार है -

(वाल्मीकि रामायण)

' गच्छता मातुकुलं भरतेन तदानघः ।
शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो नीतः प्रीतिपुरस्कृतः।।'

(अयोध्या काण्ड)

' प्रविश्य तु महारण्य दण्डकारण्यमाप्तवान् ।
रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ।।'

(अरण्यकाण्ड)

' सतां पुष्करिणी गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलम् ।
रामाः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः ।।'

(किष्किन्धा काण्ड)

' ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षनः ।
इयेषु पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ।।'

(चम्पू-रामायण)

(चम्पू रामायण)

' गच्छता दशरथेन निर्वृतिम इत्यादि

(अयोध्या काण्ड)

' प्रविश्य विपिनं महत्तदनुमैथिलीवल्लभो ' इत्यादि।

(अरण्य काण्ड)

सतां सतां बुद्धिमिव प्रसन्नां

पम्पां वियोगज्वरजातकम्पः ।'

(किष्किन्धा काण्ड)

' ततो हनूमान् दशकण्ठनीतां सीतां विचेतुं पथि चारणानाम् '

(सुन्दर काण्ड)

आचार्य लक्ष्मणसूरि भोजराज के इस परम्परा का निर्वाह युद्धकाण्ड की सरचना में नही कर पाये सम्भवतः इस ओर उनका ध्यान ही न गया हो।

राजा भोज का समय 1018 से 1063 के मध्य का समय माना जाता है। चम्पू-रामायण रचना इनके अन्तिम समय की रचना कही जा सकती है। उसका मुख्य कारण यह है कि इनकी यही रचना इनके द्वारा पूरी नही हुई।

इस चम्पू काव्य का कथानक वही है जो वाल्मीकि रामायण का है यद्यपि वाल्मीकि रामायण में अनेक अवान्तर कथाओं का भी लगभग पूर्ण विवेचन है। तथापि यथा सम्भव सूक्ष्म रीत्या सभी का विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास चम्पू-रामायण में किया गया है।

पात्रों का संयोजन वाल्मीकि रामायण के समान ही हुआ है। जिन-जिन पात्रों की उदात्तता समान्यता एवं अवरता महर्षि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य में चित्रित किया है। उसी प्रकार चम्पू-रामायण में भी वे सभी पात्र चित्रित है।

चम्पू-रामायण की शैली बड़ी ही सहृदय-ग्राही है। प्रसाद गुण का लगभग पूरे ग्रन्थ में दर्शन होता है। प्रसंगानुसार माधुर्य एवं ओज गुण भी कवि के द्वारा गुम्फित

हुए हैं। पद्यों में जहां वैदर्भी का दिग्दर्शन होता है वही गद्यों के विषय में पंचाली की छटा अवलोकनीय है शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का यथा स्थान प्रयोग कवि की कल्प का उत्कृष्ट उदाहरण है। रसों का पारिपाक प्रसंगानुसार अध्येयताओं को रस चर्वणा में सर्वदैव सहायक सिद्ध हुई है।

तृतीय अध्याय

चम्पूरामायण का कथानक (बालकाण्ड)

महर्षि वाल्मीकि जी नारद की बातें सुनकर अपने शिष्यों के साथ दोपहर को क्रिया स्नान, सन्ध्या आदि क्रिया से निवृत्त होने के लिए तमसा नदी के तट पर जाते हैं।

तमसा नदी के तट पर क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक को व्याध मार देता है, अपने पति की हत्या को देखकर क्रौंची अत्यधिक दुखी होकर रोने लगती है। उसे रोते हुए देखकर ऋशि वाल्मीकि को उस पर बड़ी दया आती है। दया से द्रवीभूत होकर उस व्याध को शाप देते हैं कि हे निषाद। तुझे कभी भी शान्ति न मिले। इसके बाद मध्य काल का कार्य समाप्त करके ऋषि वाल्मीकि अपने शिष्यों के साथ अपने आश्रम लौट आते हैं।

उसी समय ब्रह्मा प्रकट होते हैं। ब्रह्मा जी महर्षि वाल्मीकि से कहते हैं कि यह छन्दोबद्ध वाणी हमने आपको इसीलिए दिया है कि इसके द्वारा आप मुनि नारद से सुनी हुई रामचरित को इस मृत्युलोक में यथावत् चित्रण करें। इस प्रकार वाल्मीकि से कहकर ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो जाते हैं।

ब्रह्मा के चले जाने के पश्चात् उनकी आज्ञानुसार महर्षि वाल्मीकि अपनी योग दृष्टि से देखकर तथा विचार करके संसार के हित के लिए राम चरित्र के वृत्तान्त अर्थात् रामायण की रचना करते हैं।

ब्रह्मा के आदेशानुसार उन्हें रामचरित्र का ज्ञान स्वयं होने लगता है और अपनी सरल एवं सरस भाषा में रामायण काव्य की रचना करते हैं।

तत्पश्चात् महर्षि बाल्मीकि को यह चिन्ता होने लगती है कि इस काव्य रचना को लोगों तक कौन प्रचारित करेगा।

उसी समय अनेक शास्त्रों के ज्ञाता सीता के पुत्र लव और कुश वहाँ उपस्थित होते हैं। सीता पुत्र लव और कुश को अपना शिष्य मानकर मुनि वाल्मीकि अपने द्वारा रचित रामायण काव्य का अध्ययन कराते हैं। लव और कुश रामायण गाते हुए सभी ओर उसका गुण गान करते लगते हैं। उन दोनों को रामायण गाते हुए

देखकर रामचन्द्र जी अपने महल में बुलाते हैं और अपने भाइयों के साथ उनसे कहते हैं कि आप लोग हमारा चरित्र गावें।

इस प्रकार रामचन्द्र जी के आग्रह पर मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि के शिष्य कुश और लव क्रमबद्ध आरम्भ से राम वृत्तान्त को गाना शुरू करते हैं।

अयोध्या नगरी में दशरथ नाम के राजा राज्य करते थे। वे सब प्रकार से प्रभावशाली थे। किन्तु उनके कोई पुत्र नहीं था। सुमन्त्र की सहमति से वे पुत्रेष्टि यज्ञ करते हैं।

जब राजा दशरथ पुत्र-यज्ञ का अनुष्ठान सरयूतट पर करते हैं, तभी यज्ञ में आये हुए समस्त देवगण ब्रह्मा से रावण के उपद्रव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस विपत्ति से हमारी रक्षा भगवान विष्णु ही कर सकते हैं। वे सभी देवगण क्षीरसागर में अनेक प्रकार से स्तुति करते हुए पहुँचते हैं। वहाँ सोते हुए भगवान् विष्णु को प्रणाम करते हैं। उनकी स्तुति से भगवान् विष्णु जगकर समस्त देवों से उनका कुशल पूछते हैं। इस पर देवगण कहते हैं, लंका नामक नगरी में रावण नाम का एक राक्षस रहता है जिसने अनेक प्रकार की तपस्या करके ब्रह्मा जी से नर एवं मनुष्य को छोड़कर समस्त प्राणिमात्र से अपने अबध्य होने का वर प्राप्त कर लिया है जिसके द्वारा समस्त ऋषि-मुनि देवताओं को अपने वश में करके वह अजेय हो गया है। भगवान् विष्णु रावण का वध करने के लिए मृत्युलोक में जन्म लेने का आश्वासन देते हैं। ब्रह्मा जी समस्त देवताओं को भविष्य में भगवान् विष्णु की सहायता के लिए अप्सरा आदि युवतियों के माध्यम से भालू, बन्दर वेष धारण करने वाली प्रभावयुक्त सन्ततियों को पैदा करने का आदेश देकर कहते हैं कि मेरे जम्हाई लेते समय जाम्बवान् पैदा हो चुके हैं। इस प्रकार ब्रह्मा की आज्ञा पाकर देवता लोग बन्दर भालुओं की उत्पत्ति करते हैं।

उस यज्ञ के फलस्वरूप अग्निकुण्ड से एक विशालकाय प्राजापत्य पुरुष प्रकट होता है। उसके हाथ में एक सोने के पात्र में दिव्य खीर होती है। वह उस पात्र को बड़े आदर के साथ राजा को देते हुए कहते हैं कि यह खीर अपनी

पत्नियों को दे दो, इससे तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी। राजा उस पात्र को अपने मस्तक पर धारण करते हैं। उस महान् पुरुष को प्रणाम कर उसकी प्रदक्षिणा करके खीर का आधा भाग कौसल्या को देते हैं और खीर का आधा भाग कैकेयी को देते हैं सुमित्रा को खीर न मिलने के कारण दशरथ का अभिप्राय समझकर कौसल्या तथा कैकेयी अपने-अपने हिस्से से आधा-आधा भाग सुमित्रा को देती है। उस खीर के प्रभाव से कौसल्या के गर्भ से विष्णु स्वरूप राम पैदा होते हैं, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न प्रकट होते हैं।

एक बार राजा दशरथ पुत्रों के विषय में विचार करते हैं। उसी समय वहाँ महर्षि विश्वामित्र आते हैं। राजा विश्वामित्र की विधिवत् पूजा करते हैं और उनका मनोरथ पूरा करने का वचन देते हैं जिससे विश्वामित्र पुलकित हो (जाते हैं)। वह अपनी यज्ञ-रक्षा के लिए लक्ष्मण के सहित राम को माँगते हैं। विश्वामित्र के वचन से राजा मर्माहत हो जाते हैं और मूर्च्छित हो जाते हैं। मूर्च्छा दूर होने पर वह स्वयं चलने का प्रस्ताव करते हैं।

यह सुनकर महर्षि विश्वामित्र अप्रसन्न हो पूर्वकृत प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाते हैं। महर्षि वसिष्ठ राजा दशरथ को समझाते हुए कहते हैं कि राक्षसों का संहार करने के लिए ही विश्वामित्र राम को ले जाना चाहते हैं इसलिए आप उनको जाने की आज्ञा प्रदान करें।

दशरथ महर्षि विश्वामित्र को राम और लक्ष्मण दोनों को सौंप देते हैं। विश्वामित्र दोनों कुमारों के साथ अयोध्या से जब डेढ़-योजन दूर पहुँचते हैं तब वह सरयू-जल से आचमन कराकर राम को बला और अतिबला नाम की दो विद्यायें देते हैं। उस दिन सरयू के तट पर ही रात बिताते हैं।

विश्वामित्र श्रीराम को एक विशेष प्रदेश दिखाते हुए कहते हैं कि प्राचीन काल में भगवान् शंकर ने कामदेव को अपनी तीसरी आँख खोलकर जला डाला था इसलिए इस स्थान का नाम अंगदेश हो गया।

तीसरे दिन मलद और करुष जनपद में पहुँचते हैं और बताते हैं कि पूर्वकाल में ये दोनों देश बिल्कुल हरे-भरे थे, परन्तु सुकेतु पुत्री, सुन्दपत्नी एवं मारीच की माता ताटका नाम की यक्षिणी उसे उजाड़ दिया है। विश्वामित्र राम को आदेश देते हैं कि इस दुराचारिणी को मार गिराओ। यह इतनी बलवान् है कि तुम्हारे सिवा इसे कोई नहीं मार सकता है।

विश्वामित्र के द्वारा ताटका वध का आदेश पाकर राम के मन में स्त्री वध की द्विविधा उत्पन्न होती है। विश्वामित्र इन्द्र और परशुराम का उदाहरण देकर उनकी इस द्विविधा का निवारण कर देते हैं। उनकी आज्ञा का पालन करते हुए राम ताटका का वध करने का निश्चय करते हैं। राम धनुष की टंकार करते हैं जिसे सुनकर ताटका क्रोध से आग-बबूला हो जाती है और एक बाहु ऊपर उठाकर राम पर झपटती है। माया से पत्थरों की झड़ी लगा देती है। राम अपने बाणों से उसकी शिलावृष्टि को व्यर्थ कर देते हैं और एक बाण मारकर ताटका को मार गिराते हैं। इससे देवता बहुत प्रसन्न होते हैं। इन्द्र विश्वामित्र से अपना आभार प्रकट करते हुए कहते हैं कि आप अपने अस्त्र-शस्त्र राम को प्रदान करें। तीसरी रात ताटका वन में बिताकर विश्वामित्र राम को अस्त्र-शस्त्र प्रदान करते हैं।

विश्वामित्र सिद्धाश्रम पहुँचकर उसकी विशेषता बताते हुए राम से कहते हैं यहाँ मेरे यज्ञ में बहुत से राक्षस विघ्न डालते रहते हैं। अतः उनसे यज्ञ की रक्षा करना है। श्रीराम के कहने पर विश्वामित्र वहाँ यज्ञ की दीक्षा ले लेते हैं दोनों भाई छः दिन तक बिना सोये यज्ञ की रक्षा करते हैं। छठे दिन राम देखते हैं कि मारीच और सुबाहु अपनी सेना के साथ आ जाते हैं क्षणभर में ही वे रक्त की वृष्टि करने लगते हैं।

श्रीराम शीतेषु नामक मानवास्त्र का मारीच पर प्रयोग करते हैं उससे मारीच चक्कर काटता हुआ सौ योजन की दूरी पर जा गिरता है। इसके पश्चात् श्रीराम आग्नेयास्त्र से सुबाहु का और वायव्यास्त्र से समस्त सेना का संहार कर डालते हैं।

यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जाता है। ऋषि लोग राम को बहुत सम्मान देते हैं। श्रीराम आदि वह रात यज्ञशाला में ही बिताते हैं। प्रातःकाल विश्वामित्र राम-लक्ष्मण के साथ मिथिला नगरी को प्रस्थान करते हैं।

रास्ते में राजर्षि विश्वामित्र अपनी वंश परम्परा के बारे में बताते हुए कहते हैं कि राजर्षि कुशनाभ के सौ पुत्रियाँ थीं वायु उनको प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त करते हैं, किन्तु पुत्रियों के इन्कार करने पर वायु उनको शाप देकर कुटिल बना देते हैं। राजा अपनी कन्याओं का विवाह राजा ब्रह्मदत्त के साथ कर देते हैं, फलस्वरूप कन्यायें शाप मुक्त हो जाती हैं।

कुशनाभ अपने पिता के आर्शीवाद से अमितवीर्य और गाधि नाम के हमारे पिता को जन्म देते हैं। इस प्रकार श्रीराम ने कौशिक की उत्पत्ति सुनी।

विश्वामित्र जी भागीरथी के जन्म की कहानी राम को बताते हैं कि अयोध्या में सगर नाम के एक राजा होते हैं। उनके दो पत्नियाँ होती हैं केशिनी और सुमति। राजा सगर अपनी पत्नियों के साथ सौ वर्षों तक पुत्र प्राप्ति के लिए तपस्या करते हैं, फलस्वरूप भृगु के आशीर्वाद से उनकी बड़ी रानी केशिनी एक पुत्र असमञ्ज तथा सुमति साठ हजार पुत्रों की माता बनती है। असमञ्ज के दुष्टस्वभाव होने के कारण सगर त्याग देते हैं और अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ करके अश्वमेधीय घोड़ा छोड़ते हैं, उस अश्व को इन्द्र चुराकर पाताल में कपिल मुनि के आश्रम में बाँध देते हैं। सगर पुत्र ढूँढते-ढूँढते पाताल लोक में पहुँच जाते हैं और कपिल मुनि के शाप से जलकर राख हो जाते हैं।

असमञ्ज पुत्र अंशुमान पाताल लोक में पहुँचकर अपने पितामहों को दग्ध अवस्था में देखकर जलाञ्जलि देकर अश्व को लेकर वापस जाने लगते हैं तभी उनके मामा वरूण बताते हैं कि तुम गंगा जल से अपने पितरों को पवित्र कर सकते हो। अंशुमान द्वारा सगर अपने अश्व को प्राप्त करते हैं और पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर यज्ञ समाप्त करके अपना शरीर त्याग देते हैं।

तदनन्तर राम के पूछने पर महर्षि विश्वामित्र गंगा नदी के वृत्तान्त के साथ-साथ कार्तिकेय जन्म वृतान्त को भी बतलाते हैं।

इसके बाद राम के पूछने पर विश्वामित्र विशाला नगरी के बारे में बताते हैं।

विश्वमित्र राम-लक्ष्मण को महातपस्वी गौतम का आश्रम दिखाते हुए कहते हैं कि इसी आश्रम में गौतम अपनी पत्नी अहिल्या को शिला बन जाने का शाप देकर तपस्या के लिए हिमालय चले गये थे और कहा था कि जब राम इस वन में आयेंगे तब उनके चरण के स्पर्श से शाप मुक्त हो जाओगी।

विश्वामित्र की आज्ञा से राम के पदरज से अहिल्या इन्द्र सम्पर्क संभव पाप से मुक्त हो जाती है। अहल्या का हृदय हर्ष से भर जाता है वह राम का हार्दिक आतिथ्य करती है। गौतम ऋषि अपनी पत्नी को पाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं।

गौतम और अहिल्या का आतिथ्य स्वीकार करके वह राजा जनक के यज्ञशाला में जाते हैं। विश्वामित्र के आने का समाचार पाकर राजा जनक अपने पुरोहित शतानन्द जी को आगे करके विश्वामित्र की सेवा में उपस्थित होते हैं। राम-लक्ष्मण को देखकर वे बहुत खुश होते हैं। विश्वामित्र उनका परिचय देते हुए समस्त घटनाओं के बारे में बताते हैं - जिसे सुनकर शतानन्द जी बहुत प्रसन्न होते हैं। वह राम का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

शतानन्द जी रामचन्द्र जी से विश्वामित्र जी के बारे में ब्रह्मर्षिपदप्राप्ति पर्यन्त उनके जीवन की सम्पूर्ण घटनाओं को बताते हैं।

शतानन्द जी द्वारा विश्वामित्र की प्रशंसा के बाद राजा जनक विश्वामित्र से विदा लेकर चले जाते हैं और राम-लक्ष्मण सहित विश्वामित्र उसी यज्ञशाला में रात बिताकर प्रातःकाल सूर्य की पूजा करके मिथिला नगरी में प्रवेश करके राम और लक्ष्मण से बताते हैं कि यज्ञ करते हुए राजा जनक पृथ्वी से सीता नामक एक कन्या को प्राप्त

करते हैं। उस मिथिलापुरी में जनक प्रण करते हैं कि जो शिव के धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा उसी से सीता का विवाह करूँगा किन्तु उनकी प्रतिज्ञा कोई भी वीर पूरी नहीं कर सका है। इतना बताने के बाद विश्वामित्र महाराज जनक की सभा में पहुँचते हैं उनके साथ राम और लक्ष्मण भी धनुष देखने की इच्छा से आते हैं।

राजा जनक विश्वामित्र आदि का यथोचित सत्कार करके राम और लक्ष्मण के बारे में बताते हैं। इसके बाद राजा जनक विश्वामित्र से कहते हैं कि आप जो यह धनुष देख रहे हैं, वह इन्द्र ने हमारे पूर्वज देवरात को दिया था जिसे हमने सीता विवाह में प्रण बनाने के लिए रख छोड़ा है। राजा जनक के ऐसा कहने पर विश्वामित्र राम को धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने का आदेश देते हैं। विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राम शिव धनुष को खींचते हैं। धनुष बीच से टूट जाता है। धनुष टूटने की आवाज से वहाँ उपस्थित समस्त लोक मूर्च्छित हो जाते हैं। होश आने पर जनक विश्वामित्र से सीता का विवाह राम के साथ करने की आज्ञा माँगते हैं और दूत को भेजकर राजा दशरथ को मिथिलापुर बुलवाते हैं। अयोध्या में पहुँचकर दूत राम और सीता के विवाह का समाचार सुनाकर राजा दशरथ को राजा जनक का सन्देश सुनाते हैं संदेश सुनकर राजा दशरथ अपने कुलपुरोहित की सलाह से मिथिलापुर को प्रस्थान करते हैं। राजा दशरथ के आगमन का समाचार सुनकर जनक उनका बहुत आदर-सत्कार करते हैं। राजा जनक अपने छोटे भाई कुशध्वज को साकांश्यपुरी से बुला लेते हैं। इसके बाद राजा दशरथ अपने पुत्रों का गोदानविधि सम्पन्न करवाते हैं और राम का सीता के साथ तथा लक्ष्मण का उर्मिला के साथ विवाह होता है। इसके बाद कुशध्वज के कहने पर उनकी दोनों कन्याओं माण्डवी का भरत से और श्रुतिकीर्ति का शत्रुघ्न से विवाह सम्पन्न होता है। जब राजा दशरथ मिथिलापुर से लौटते हैं तो रास्ते में उनको परशुराम जी मिलते हैं जिनको देखकर दशरथ डर जाते हैं फिर भी महर्षियों को आगे करके उनका समयोचित पूजन करते हैं और कुशल प्रश्न करते हैं जिसे अनसुनी करके वे राम से कहते हैं कि तुमने शैव धनुष को तोड़कर जो यश प्राप्त किया है और हमारे परशु को नहीं जानते हो। इसलिए मैं तुम्हारी परीक्षा इस धनुष से लेना चाहता हूँ।

चढ़ा देते हैं और परशुराम को ब्राह्मण समझकर (राम) वे उनके प्राण नहीं लेते है और दया करके उपस्थित युद्ध से विरत हो जाते हैं।

उस धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाते ही परशुराम की सारी शक्ति क्षीण हो जाती है और वह जड़वत् होकर उनसे (राम) विनीत भाव से कहते हैं कि आप हमारी शक्तियों को नष्ट कर दीजिए किन्तु मेरी इस गमनशक्ति को नष्ट न करें। श्रीराम, परशुराम को क्षमा करके महेन्द्र पर्वत भेज देते हैं।

परशुराम को परास्त करने से उनकी भी शक्ति राम में व्याप्त हो जाती है। इससे प्रसन्न होकर राजा दशरथ राम को गले से लगाते हैं और अयोध्यापुरी में प्रवेश करते हैं। वहाँ पर अपने-अपने महल में जाकर चारों भाई अपनी-अपनी पत्नियों के साथ सुख पूर्वक रहकर दिन व्यतीत करने लगते हैं।

अयोध्याकाण्ड -

राजा दशरथ शान्तिपूर्वक अपने महल में सुख से रहने लगते हैं तथा भरत और शत्रुघ्न को उनके मामा युधाजित के साथ ननिहाल भेज देते हैं।

राजा दशरथ राम को युवराज बनाने की इच्छा से समस्त मंत्रियों एवं वयोवृद्ध नागरिकों को आमन्त्रित करके कहते हैं कि अब मैं वृद्ध होने के कारण राज्य भार राम को सौंपकर विश्राम करना चाहता हूँ। यह सुनकर समस्त मन्त्री एवं नागरिक खुश होकर सहमति दे देते हैं।

तदनन्तर राजा दशरथ मन्त्रियों से भी सलाह लेते हैं और वे भी सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हैं।

इसके बाद तत्वज्ञानियों में अग्रगण्य वसिष्ठ की आज्ञा से मन्त्रिगण समेत नगरवासीजन राम के अभिषेक की सामग्री जुटाने में तत्परता से जुट जाते हैं।

राजा दशरथ राम को अपने पास बुलाकर कहते हैं कि शीघ्र ही मैं पुण्यनक्षत्र युक्त शुभ दिन में तुम्हारे सिर पर राजमुकुट रखना चाहता हूँ। इसके बाद राजा दशरथ इस बात को कौसल्या से निवेदित करके अपने घर आते हैं। मुनि वसिष्ठ राम के हाथ में रक्षासूत्र बाँधते हैं।

राम के राज्याभिषेक की बात से सभी नगरवासी बहुत खुश होते हैं जिसे सुनकर मन्थरा कैकेयी को भड़काती है। वह कहती है कि राम का राज्याभिषेक भरत के लिए अनिष्टकारी है और कैकेयी को भड़काकर राजा दशरथ द्वारा कैकेयी को दिये गये वरदान की याद दिलाती है।

मन्थरा के इस प्रकार भड़काने पर कैकेयी राजा दशरथ से वर माँगती है। पहला राम को चौदह वर्ष का मुनिवेश में वनवास और दूसरा भरत का राज्याभिषेक। यह सुनकर राजा दशरथ का हृदय अतिसन्तप्त हो जाता है और वे मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। जब उनको होश आता है तब वह कैकेयी से कहते हैं कि राम तो हाथ में पहनाये गये अभिषेकांगभूत मंगलसूत्र कौतुक को सहर्ष त्याग करके वन चले जायेंगे। किन्तु प्रजा जो राम के राज्याभिषेक से अतिप्रसन्न है वह किस प्रकार अपनी उत्कण्ठा को त्याग सकेगी। धर्म का पालन करने के कारण मैं तो रामवियोग का कष्ट सह लूँगा किन्तु प्रजा को क्या उत्तर दूँगा। कैकेयी यदि तुम अपनी जिद नहीं छोड़ोगी तो संसार में तुम कलंकित हो जाओगी।

कैकेयी अनेक कठोर वाणी कहकर राम को शिवि की कथा बताकर सत्य-पालन का आग्रह करती है। कैकेयी के इस प्रकार कहने पर राजा फिर उसे समझाते हैं परन्तु वह नहीं मानती, राजा दशरथ के द्वारा भर्त्सना करने पर भी रानी कैकेयी का हृदय नहीं पिघलता। इसके बाद राम को देखकर कुछ देर सुख पाने की इच्छा से राजा दशरथ सुमन्त्र से कहते हैं कि राम को मेरे पास भेज दो।

सुमन्त्र राजा दशरथ की आज्ञा पाकर राम के भवन में जाकर उनको राजा का सन्देश सुनाकर शीघ्र ही राजा के पास लाते हैं। राम पिता के पास पहुँचकर प्रणाम

की इच्छा से वह कैकेयी से पूछते हैं। कैकेयी उनको बताती है कि तुम्हारे पिताजी उन दोनों वरदानों को पूरा करने में असमर्थ हो रहे हैं क्योंकि एक ओर उनको पुत्र वियोग का दुःख है और दूसरी तरफ सत्यभंग होने का भय है इसी दुःख के कारण उदास हैं।

वह दोनों वरों को राम को बताते हुए कहती हैं कि पहले वर के द्वारा तुम मुनिवृत्ति से वन में वास करो और दूसरा वर भरत को राजा बनाया जाये।

यह सुनकर राम प्रसन्नता से हाथ जोड़कर कैकेयी से कहते हैं कि माँ क्या मैं वन में रहने से घबराता हूँ या भरत पृथ्वी का भार धारण करने में घबराता है जिससे हमारे पिताजी वरों को पूर्ण नहीं कर पा रहे हैं। यदि हमारे और भरत के रहते हुए भी वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में असमर्थ है तो हमारे और भरत के होने न होने से क्या लाभ वह हम दोनों से पुत्रवान् नहीं कहे जा सकते हैं।

राम की इस बात को सुनकर राजा दशरथ अत्यन्त दुःखी होते हैं और पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर जाते हैं। दशरथ के मूर्च्छित होते ही कैकेयी राम को तुरन्त वन जाने की आज्ञा देकर पिता की आज्ञा का पालन करने को कहती हैं। राम माता की आज्ञा को शिरोधार्य करके वन जाने को तैयार हो जाते हैं और अपनी माता कौसल्या के महल में प्रवेश कर उनको प्रणाम करके उन्हें सारी बात बताते हैं।

कौसल्या इस सूचना को सुनते ही अत्यधिक दुःखी होती हैं और पृथ्वी पर गिर कर विलाप करने लगती हैं।

राम को वनवास के बारे में सुनकर लक्ष्मण बहुत क्रोधित होते हैं और अनेक दुर्वचन कैकेयी तथा पिता दशरथ को कहते हैं। लक्ष्मण के इस प्रकार कहने पर राम उनको समझाते हुए कहते हैं कि हे भाई लक्ष्मण सूर्यवंशियों में पिता की आज्ञा को ही देशिक-आचार्य और उपदेष्टा मानते आये हैं उनका अनुसरण करना ही हमारा कर्तव्य है उनका उल्लंघन करना नहीं।

राम के निश्चय को सुनकर कौसल्या दुःख से व्याकुल होकर राम के साथ वन जाने को तैयार हो जाती हैं किन्तु राम उनको बहुत प्रकार से समझाकर विनयपूर्वक उनसे कहते हैं कि माँ आपको हमारे साथ वन जाने का विचार छोड़कर यहीं पर रहकर कैकेयी के कठोर वाक्यों से पीड़ित शोकसंतप्त शरीर वाले पिता की देखभाल करने के लिए अयोध्या में ही रहना चाहिए।

राम के इस प्रकार समझाने पर कौसल्या राम के मंगल के लिए समस्त देवताओं से स्तुति करके आशीर्वाद देती हैं। माता का आशीर्वाद लेने के बाद राम कौसल्या को प्रणाम करके उनके भवन से निकलकर जिस समय सीता के महल में प्रवेश करते हैं उस समय सीताजी राज्याभिषेक की तैयारी के लिए वेष धारण कर रही होती हैं। अभिषेक की तैयारी में लगी हुई आनन्दित सीता से राम वन जाने की बात बताते हैं। सीता इससे अत्यन्त दुःखी हो जाती हैं और कहती हैं कि मैं भी आपके साथ वन चलूँगी। सीता राम की बात को नहीं मानती हैं और वन के सभी कष्टों को सहन करने को तैयार हो जाती हैं। उनके हठ को देखकर राम-सीता को वन जाने की आज्ञा दे देते हैं। आज्ञा पाकर सीता अत्यन्त खुशी का अनुभव करती हैं।

उसी समय लक्ष्मण, राम और सीता को वन के लिए उद्यत देखकर स्वयं वन जाने की इच्छा व्यक्त करते हैं। राम के मना करने पर भी लक्ष्मण का दृढ़ निश्चय देखकर उनको साथ चलने की अनुमति दे दते हैं।

दान आदि देने के पश्चात् श्रीराम, लक्ष्मण और सीता, राजा दशरथ से वन जाने की आज्ञा लेने के लिए अन्तःपुर से निकलते हैं।

श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के साथ जाने की सूचना देने के लिए राजा दशरथ के महल में जाते हैं। सुमन्त्र को देखकर श्रीराम उनसे कहते हैं कि आप महाराज दशरथ को हमारे आगमन की सूचना दे दें। सुमन्त्र श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के आने की सूचना राजा दशरथ को देकर राम को उनके सामने करते हैं। तब राजा अत्यधिक दुःखी होकर कौसल्या के साथ विलाप करते हैं और राम के साथ वन जाने के लिए

स्वयं भी तैयार हो जाते हैं। तब सुमन्त्र कैकेयी को बहुत समझाते हैं, किन्तु उसका कैकेयी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

राजा अपने सेवकों से राम के साथ जाने और आवश्यकता की वस्तुएं साथ ले जाने के लिए कहते हैं तो कैकेयी इस पर आपत्ति करती है और राम को तुरन्त वन जाने का आग्रह करती है।

राम के वल्कल आदि की याचना पर कैकेयी सुख से पले हुए राम, लक्ष्मण और सीता को वल्कल आदि मुनिवस्त्र लाकर दे देती हैं।

कैकेयी द्वारा प्रदत्त वल्कल को निर्विकार होकर धारण कर लेते हैं। उनके मुख पर किसी प्रकार का शोक या मलिनता नहीं होती है। उनके इस मुखशोभा को देखकर सभी दर्शक शोक सन्तप्त होकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

श्रीराम के वल्कल धारण करने पर विषाद से मुनि वसिष्ठ आँखे बन्द कर लेते हैं और ब्रह्मा का ध्यान करते हैं। उसी समय उनको राम के यथार्थ रूप का ज्ञान हो जाता है। वह यह समझ जाते हैं कि श्रीराम को पीताम्बर छोड़कर वकल धारण करने से कोई दुःख या मुखमालिन्यादि विकार उत्पन्न क्यों नहीं हुआ। ऐसा विचार करके वह अधिक व्यथित नहीं होते हैं।

जब सीता वल्कल वस्त्र धारण करने लगती हैं तब मुनि वसिष्ठ उनको वल्कल धारण करना अनुचित बताकर मना करते हैं। किन्तु सीता अपने पति के समान ही वल्कल धारण करने से विरत नहीं होती हैं।

सीता वन जाने के लिए तैयार होकर जिस समय प्रणाम करने लगती हैं उस समय कौसल्या पुत्र प्रेम से विह्वल होकर सीता को गले से लगाकर शोकाकुल हो जाती हैं।

इसके बाद राम, लक्ष्मण के साथ राजा तथा माताओं की प्रदक्षिणा करके

हैं। राजा दशरथ सुमन्त्र को आज्ञा देते हैं कि राम को रथ पर वन तक छोड़ आओ उनकी आज्ञा से सुमन्त्र रथ दरवाजे पर लाकर खड़ा कर देते हैं।

सीता प्रसन्नचित से रथ पर आरूढ़ हो जाती हैं। सीता के रथ पर बैठ जाने पर राम और लक्ष्मण भी रथ पर बैठ जाते हैं।

राम के साथ समस्त नगर वासियों के चले जाने पर अयोध्या नगरी सूनी हो जाती है। सभी नगर वासियों के चले जाने पर राजा दशरथ भी अपनी पत्नियों के साथ राम के पीछे-पीछे जाते हैं सुमन्त्र रथ धीरे-धीरे चलाते हैं। जब तक राम दिखाई देते हैं तब तक वह एकटक उनको देखते रहते हैं, जब वह आँखो से ओझल हो जाते हैं, तो वह मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ते हैं।

नौकर उन्हें सहारा देकर मूर्छा से दूर करते हैं और होश में आने पर राजा उनसे कहते हैं कि मुझे श्रीराम की माँ कौसल्या के भवन में ले चलो मुझे वहीं शान्ति मिलेगी और कहीं नहीं। उन्हें कौसल्या के भवन में पहुँचा दिया जाता है।

श्रीराम के साथ गये हुए समस्त प्राणी उनसे अयोध्या लौट चलने को कहते हैं किन्तु श्रीराम अस्वीकार कर देते हैं तभी शाम हो जाती है और तमसा नदी दिखाई पड़ती है। तमसा नदी के तट पर ही सब लोग विश्राम करने का निश्चय करते हैं।

जब आधी रात हो जाती है उस समय राम, सुमन्त्र से सलाह करके सभी नगर वासियों को सोता छोड़कर सुमन्त्र के साथ तपोवन की ओर चल पड़ते हैं।

श्रीराम आदि गंगानदी के पास श्रृंगवेरपुर में प्रवेश करके सुमन्त्र से कहते हैं कि आज हम लोग यहीं इंगुदी वृक्ष के नीचे विश्राम करेंगे।

उसी श्रृंगवेरपुर में गुह नाम का निषाद राजा रहता था जो राम का पुराना मित्र था। जब उसे राम के आने की सूचना मिलती है वह तत्काल उनसे मिलने के

लिए अपने भाई-बन्धुओं के साथ चल पड़ता है। श्रीराम निषादराज को देखकर लक्ष्मण के साथ उसकी ओर बढ़ते हैं और गुह को अपने हृदय से लगाते हैं। निषादराज गुह राम को वल्कल वस्त्र धारण किये हुए देखकर अत्यन्त दुःखी होते हैं कहते हैं कि ये राज्य भी आपका ही है और उनकी सेवा में अनेक प्रकार की भोज्यादि सामग्री प्रस्तुत करते हैं। उसे प्रेमपूर्वक श्रीराम ग्रहण करके गुह को लौटा देते हैं और कहते हैं कि इस समय मैं किसी के द्वारा दी हुई वस्तु ग्रहण नहीं करता हूँ। तुम मेरे घोड़ों के खाने-पीने का उचित प्रबन्ध करने मात्र से ही हमारा भलीभाँति सत्कार हो जायेगा। राजा गुह उनके घोड़ों के खाने-पीने का प्रबन्घ करवाकर लक्ष्मण के साथ वृक्ष के नीचे बैठकर बातचीत करते हुए रात भर जागकर राम की रक्षा में व्यतीत कर देते हैं। राम की मुनिवृत्ति सुनकर शोक से व्याकुल होकर उनके आँखों से आँसू बहने लगते हैं और दुःखी होकर वह श्रीराम के पास आकर हाथ जोड़कर कहते हैं कि आप अयोध्या के समान ही इस राज्य को समझिये।

प्रातःकाल उठकर श्रीराम लक्ष्मण और सीता गंगा के तट पर पहुँचते हैं। श्रीराम, सुमन्त से गंगाजी के पार उतरने की व्यवस्था करने को कहते हैं। श्रीराम का अभिप्राय समझकर गुह अपने सचिवों से नाव लाने का आदेश देते हैं। नाव पर सामान रखकर श्रीराम, लक्ष्मण और सीता मंगल की प्रार्थना करते हुए उस पर बैठ जाते हैं और सुमन्त्र को प्रेम से समझा-बुझाकर राजा दशरथ की सेवा में लौट जाने का आदेश देते हैं।

सुमन्त्र के लौटाने के बाद वह गुह द्वारा मँगवाई हुई नाव पर आरूढ़ हुए और सीता जी गंगा नदी से श्रीराम और लक्ष्मण की मंगल की प्रार्थना करती हैं। श्रीराम गुह को वापस लौट जाने की आज्ञा देकर चल पड़ते हैं, नाव के गंगानदी के पार पहुँचने पर वह लक्ष्मण को अपनी तथा सीता की सुरक्षा के लिए सचेत होने का आदेश देकर वन में प्रवेश करते हैं। गंगा को पार करके दक्षिण दिशा में वत्स नामक देश में प्रवेश करते हैं। वहाँ वह शिकार में चार मृगों को मारकर सायंकाल कन्दमूल आदि फल को ग्रहण करके एक वृक्ष के नीचे निवास कर रात्रि व्यतीत करके प्रातःकाल वह वन

देता है जिसे देखकर श्रीराम, लक्ष्मण से कहते हैं कि हे लक्ष्मण वह देखो मुनि भरद्वाज जी का आश्रम मालुम होता है। श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के साथ मुनि भरद्वाज जी के आश्रम पहुँचते हैं। मुनि भरद्वाज के दर्शन की इच्छा रखने वाले श्रीराम ने उनके शिष्यों से अपने आने की सूचना भिजवाकर महर्षि भरद्वाज जी के समक्ष पहुँचकर वे उनके (भरद्वाज) चरणों में प्रणाम करते हैं और वहाँ रात्रि बिताकर प्रातः उठकर अपने रहने का उचित स्थान पूँछते हैं। भरद्वाज मुनि उनको चित्रकूट में अपना आश्रम बनाने की आज्ञा देते हैं। इसके बाद वे मुनि भरद्वाज को प्रणाम करके चित्रकूट पर्वत पर जाने के लिए उद्यत होत हैं। उनके बताये गये मार्ग का अनुसरण करके यमुना नदी को पार करके घूमते-फिरते चित्रकूट पर्वत पर पहुँचते हैं। उस पर्वत पर पहुँचकर उस रमणीक स्थान को प्राप्तकर अत्यन्त आनन्दित होते हैं और वहीं पर अपना आश्रम तैयार करके बहुत दिनों तक रहकर सुखपूर्वक समय व्यतीत करते हैं।

सुमन्त्र ने लौटने की आज्ञा पाकर गुह के साथ कुछ दिनों तक श्रृंगवेरपुर में इस आशा से निवास किया कि शायद श्रीराम को वन में अच्छा न लगे और उन्हें मेरी आवश्यकता पड़े। किन्तु उनकी यह आशा विफल हो गयी और दुःखी होकर वह अयोध्या लौट आते हैं। सुमन्त को बिना राम, लक्ष्मणादि को लौटा हुआ देखकर समस्त अयोध्यावासी दुःख से व्याकुल होकर विलाप करने लगते हैं। सुमन्त्र दशरथ के पास पहुँचने पर उनको आदरपूर्वक प्रणाम करते हैं। राम लक्ष्मणरहित सुमन्त्र को देखकर राजा दशरथ शोकाकुल होकर मूर्च्छित हो जाते हैं। कौसल्या और रानी सुमित्रा उनको होश में लाती हैं। होश में आने पर राजा बार-बार सुमन्त्र से राम लक्ष्मण और सीता के बारे में पूँछते हैं। राजा दशरथ के इस प्रकार बार-बार पूँछने पर बताते हैं कि महाराज श्रीराम आदि समस्त पुरवासियों और हमारे रथ को कुछ दूर के बाद छोड़कर वन की ओर पैदल ही प्रस्थान कर वन चले गये हैं।

सुमन्त्र द्वारा राम का समाचार सुनकर दुःखी होकर कौसल्या को सान्त्वना देते हुए उनको थोड़ी देर के लिए नींद आ जाती है और वह सो जाते हैं। थोड़ी देर के बाद राजा दशरथ की नींद खुली तो वह कौसल्या से पूर्व समय अपने द्वारा श्रवण कुमार

इस प्रकार कथा कहते हुए राजा अपने प्राणों को त्याग करके स्वर्ग चले जाते हैं।

प्रातःकाल उठकर जब उनकी रानियों ने उनके शरीर का स्पर्श किया तो उनमें जीवन की कोई भी क्रिया नहीं प्राप्त हुई। राजा को दिवंगत हुआ जान उनकी सारी रानियाँ उन्हें चारों ओर से घेरकर विलाप करने लगती हैं। राजा दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर समस्त अयोध्यापुरी उदास हो जाती हैं।

प्रातःकाल मुनि वसिष्ठ को जब राजा दशरथ के दिवंगत होने का समाचार मिलता है तब वह राजा के शव को तेलपूर्ण कड़ाहे में रखवाकर, दूतों को बुलाकर आज्ञा देते हैं कि केकयराज जाकर भरत को बिना राजा की मृत्यु का समाचार बताये ही अयोध्या ले आओ दूत वसिष्ठ मुनि की आज्ञा से भरत की लेने केकयराज को रवाना हो जाते हैं। भरत अपने मामा के यहाँ कुछ दिनों से बुरे स्वप्न देखने के कारण बहुत चिन्तित थे। दूतों ने भरत के पास पहुँचकर मुनि वसिष्ठ का आदेश सुनाते हैं। मुनि वसिष्ठ का आदेश सुनते ही व्यथित हृदय भरत तुरन्त अपेन नाना और मामा से अयोध्या जाने की आज्ञा लेकर शीघ्र ही अपनी नगरी को प्रस्थान कर देते हैं। कुछ दिनों से अपशकुन होने के कारण उनका हृदय आशंका से भयभीत था, तभी वह अपनी पुरी में प्रवेश करते हैं। नगरवासियों को बदला हुआ व्यवहार देखकर उनका मन अति भयभीत हो उठता है। उनके साथ जो दूत गये थे वह भी शान्त भाव से उनके पास ही खड़े थे कोई भी कुछ बोल नहीं रहा था, पूरा महल श्मशान के समान शान्त था। भरत राजा दशरथ के भवन में प्रवेश करके जब वह दशरथ को वहाँ नहीं देखते हैं तब अपनी माता कैकेयी के भवन में जाते हैं और अपने पिता के बारे में पूछते हैं। तभी कैकेयी भरत से अतिकठोर वचन कहती है कि राम-लक्ष्मण और सीता मुनिवेश धारण करके अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए वन गये हुए हैं। उनके जाने के बाद तुम्हारे पिता राजा दशरथ की मृत्यु हो गयी है। अब तुम निर्भय होकर इस पृथ्वी का अकण्टक राज्य करो। अपनी माता की कठोर बातों को सुनकर भरत का हृदय दुःख एवं भय से काँप उठता है और वह बहुत देर तक विलाप करते हैं। दुःख के कारण वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं और अपनी माता कैकेयी से कहते हैं

कि तुम जैसी पापी और दुराचारिणी माता हम चारों भाइयों की माता नहीं होनी चाहिए और इस संसार की समस्त पुत्रवती स्त्रियाँ तुमको दुष्कीर्ति जननी कहेंगी।

इस प्रकार कहने के बाद भरत अपनी माता कैकेयी की ओर से मुख फेरकर शत्रुघ्न से कैकेयी की भर्त्सना करते हैं। किन्तु जब वह यह देखते हैं कि कैकेयी लोक लज्जा रहित है। इसके ऊपर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ने वाला तो वह अपनी माता कैकेयी का घर छोड़कर बाहर निकल जाते हैं।

भरत मन्त्रियों को साथ लेकर कौसल्या के पास जाते हैं और दशरथ के शरीर के साथ चिता में जलकर मर जाने की इच्छा रखने वाली कौसल्या को भरत अनेक शपथ दिलाकर चिता में प्रवेश करने से रोकते हैं।

इसके बाद वह मुनि वसिष्ठ के द्वारा बताये गये प्रकार से सतत् यज्ञपरायण दशरथ का याज्ञिकोपयुक्त प्रेतकार्य सम्पादित करते हैं। राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् भरत उनका अन्तिम संस्कार करके अपनी प्रजा से हाथ जोड़कर राम के पास वन जाने की प्रार्थना करते हैं।

मुनि वसिष्ठ के समझाने पर वह कौसल्या सुमित्रा एवं अन्य अन्तःपुर में रहने वाले परिवार के साथ राज भवन में जाते हैं।

जब भरत के अपने पिता की श्राद्धक्रिया यथाविधि करके चौदह दिन बिताने के बाद उनके कुल पुरोहित मुनि वसिष्ठ और गाँव के बूढ़ों के साथ जाकर मन्त्रिगण उनसे राज्यभार ग्रहण करने की प्रार्थना करते हैं। मंत्रिगण उनसे राजमुकुट धारण करने के लिए बहुत आग्रह करते हैं। किन्तु भरत उनसे कहते हैं कि एक बार मुझे राम के पास दण्डकारण्य में जाकर यह देख लेने दीजिए कि लक्ष्मण के समान मुझे भी पर्णशाला में राम की सेवा में स्थान मिल सकता है कि नहीं यदि मुझे वहाँ पर कोई स्थान नहीं मिलेगा तब तो मुझे मुकुट धारण करना ही पड़ेगा। इस प्रकार कहकर भरत राम की सेवा के लिए व्याकुल हृदय से घर से निकलकर वन को प्रस्थान करते हैं।

उसी समय राम का राज्याभिषेक में विघ्न डालने वाली मन्थरा राजमहल से बाहर आती हुई दिखाई देती है। उसे देखकर शत्रुघ्न उसके केश पकड़कर क्रोध में भरकर मारने के लिए घसीटते हैं किन्तु कौसल्या शत्रुघ्न को ऐसा करने से रोकती है।

भरत समस्त नगरवासियों एवं अन्त:पुर की स्त्रियों के साथ अपने नगर से निकल पड़ते हैं। भरत जब गंगा जी के किनारे पहुँचते हैं तो वहाँ पर उनकी भेंट निषाद राज गुह से होती है। गुह के गुणों के बारे में उनको पहले से ही सुमन्त्र ने सब कुछ बता दिया था। भरत गुह से मिलकर राम के निवास का पता पूछते हैं। गुह उनको राम के बारे में सब कुछ बताकर नाव के द्वारा गंगा पार करवाते हैं। गंगा के उस पार जाकर भरत को मुनि भरद्वाज जी का आश्रम मिलता है। भरद्वाज जी के आश्रम के पास ही भरत अपनी सेना को रोककर स्वयं उनके पास जाकर उनकी वन्दना करते हैं।

भरत को देखकर मुनि भरद्वाज प्रसन्न होकर उनको तथा उनकी माताओं को एक-एक करके देखते हैं और सेना को आश्रम के बाहर खड़ा देखकर उनको आश्रम के अन्दर बुलाते हैं तथा उन सभी लोगों का यथोचित सत्कार करते हैं।

भरद्वाज मुनि के द्वारा अत्यधिक सत्कार प्राप्त करके उस दिन को वहाँ बिताकर उन्हीं के आदेशानुसार सब लोग चित्रकूट वन के लिए चलते हैं। चित्रकूट वन पहुँचकर भरत अपनी सेना को एक स्थान पर अवस्थित करके निषादराज गुह के साथ राम के आश्रम को इधर-उधर ढूँढते हुए दूर से ही उस पर्णशाला का अवलोकन करते हैं जहाँ पर तलवार धनुष, बाण, तरकस आदि शस्त्र लटक रहे थे, जहाँ लक्ष्मण द्वारा लाये हुए कन्दमूल आदि फल रखे हुए थे, जहाँ सीता के पैरों के पदचिह्न दिखाई दे रहे थे, उस राम के आश्रम को प्राप्त करते हैं।

भरत सीता के साथ वन में निवास करने वाले राम को मुनि वेश में देखते हैं। भरत राम के समीप पहुँचकर उनके तथा सीता के पवित्र चरण कमलों में प्रणाम करते हैं। भरत राम के समीप लक्ष्मण को देखते हैं। इसके बाद प्यासे हिरण जो जलाशय को देखकर तीव्रता से प्राप्त करता है। उसी प्रकार शोक से सन्तप्त भरत भी राम को देखते ही दौड़कर उनके चरणों में गिरकर बहुत देर तक रोते रहे फिर राजा दशरथ की परलोक यात्रा की कथा बताते हैं जिसे सुनकर राम, लक्ष्मण और सीता दुःख से व्याकुल होकर मूर्च्छित हो जाते हैं।

राम, लक्ष्मण और सीता के बहुत देर तक विलाप करते रहने पर मुनि वसिष्ठ उनको आत्मोपदेश देकर शान्त करते हैं। मुनि वसिष्ठ के ज्ञानोपदेश से चैतन्य अवस्था को प्राप्त करके राम गंगा के तट पर जाकर पिता को यथोचित श्रद्धाँजलि देते हैं।

भरत राम के चरणों में अपना मस्तक रखकर बहुत देर तक उनसे अयोध्या वापस चलने के लिए प्रार्थना करते हैं। भरत ने बहुत प्रकार से उनसे अनुनय-विनय किया। किन्तु राम अयोध्या वापस जाने से अस्वीकार कर देते हैं।

राम, भरत को राज्यभार संभालने के लिए समझाते हैं तब भरत, राम के चरणों में अपना मस्तक रखकर प्रार्थना करते हैं कि आप हमें अपनी पादुकायें ही दे दीजिए। ऐसी प्रार्थना करके वह अपना सिर उनके पैरों में तब तक रखे रहे जब तक राम ने अपनी चरण पादुकाओं को देने के लिए स्वीकार नहीं कर लिया।

राम उनको समझाते हैं कि अपने पिता के वचनों का आदर करते हुए उनकी आज्ञा का पालन हमको और तुमको दोनों को करना चाहिए। इस प्रकार कहकर उन्होंने अयोध्या वापस जाने से इन्कार कर दिया।

किन्तु भरत की प्रार्थना पर वह अपनी चरण पादुकायें उन्हें दे देते हैं जिन्हें भरत अपना मुकुट समझ कर स्वीकार करते हैं। भरत शत्रुघ्न के साथ अयोध्या लौट आते हैं। लक्ष्मण, राम के साथ वन चले जाते हैं।

राम के वनवासी रूप के समान ही भरत भी वलक्ल धारण करके एवं समस्त भोग-विलास की वस्तुओं से वंचित रहकर अपने देश अवधपुरी लौट आते हैं और संकल्प करते हैं कि जब तक राम अयोध्या वापस नहीं आते तब तक मैं भी अयोध्या में नहीं रहूँगा और अपने देश से अलग नन्दिगाँव में निवास करूँगा, यदि राम वनवास की अवधि समाप्त होने पर भी लौटने में विलम्ब करेंगे तो मैं अग्नि में जलकर अपने प्राणों को त्याग दूँगा। ऐसा संकल्प करके भरत नन्दिग्राम में ही रहने लगते हैं।

राम जी मुनियों के द्वारा निवेदित राक्षसों के उपद्रवों को दूर करने के लिए वन के भीतरी भाग में घुसते हैं, जहाँ पर मृग स्वच्छन्द निर्भय होकर विचरण करते हैं। जहाँ पर लेशमात्र भी क्लेश नहीं है। ऐसे शान्तिपूर्ण महर्षि अत्रि के आश्रम में पहुँचते हैं। प्रसन्नचित्त महर्षि अत्रि राम का यथोचित अतिथि सत्कार करते हैं। महर्षि अत्रि की पत्नी माता अनुसुइया सीता को आभूषण रहित देखकर अपने आभूषणों को सीता को देकर सन्तोषित करती हैं। इसके बाद राम राक्षसों का नाश करने के लिए जो बहुत समय मुनि, ऋषियों की तपस्या में विघ्न डालते थे, उन राक्षसों का अन्त करने के लिए दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं।

अरण्य काण्ड -

इसके बाद दण्डकारण्य में प्रवेश करके श्रीराम राक्षसों का दमन करने के लिए वन में चारों ओर भ्रमण करते हैं।

राम, लक्ष्मण वन में भ्रमण करते समय मुनियों के आश्रम मिल जाने के कारण अतिथि सत्कार को प्राप्त करते हुए वन मार्ग के कष्टों का अनुभव भूलकर विचरण कर रहे थे, तभी राम और लक्ष्मण का रास्ता रोककर विराध नामक राक्षस आगे खड़ा हो जाता है। वह सीता को पकड़ लेता है और राम, लक्ष्मण से पूछता है कि तुम दोनों अभी जवान हो और वन में इस सुन्दर स्त्री को लेकर घूम रहे हो तुम लोग कौन हो ? तुम लोग कहाँ से आये हो? सिर पर जटा, देह पर वल्कल, शरीर सुकोमल और आचरण भी बड़े बेढब हैं। साथ ही साथ धनुष और स्त्री लेकर घूम रहे हो।

राम अपना परिचय देते हैं और विराध की गोद में भय से कांपती हुई सीता को देखकर क्रोध पूर्वक लक्ष्मण के साथ विराध की छाती पर बाणों का प्रहार करने लगते हैं। तपस्या के बल पर ब्रह्मा से प्राप्त कवच के कारण विराध के शरीर पर राम के बाणों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ रहा था। राम के समस्त बाण निष्फल हो गये, तभी विराध सीता को छोड़कर राम और लक्ष्मण को मारने के लिए (विराध) शूल का प्रयोग करता है। किन्तु राम उस शूल को अपने बाणों से खण्डित कर देते हैं। समस्त अस्त्र-शस्त्रों के निष्फल हो जाने के कारण विराध क्रोधित होकर दौड़कर राम और लक्ष्मण को अपने कन्धे पर बैठाकर चलने लगता है। राम, लक्ष्मण से कहते हैं कि लक्ष्मण जिस मार्ग से होकर हम लोगों को जाना है उसी मार्ग से यह राक्षस भी जा रहा है, इसलिए कुछ दूर तक इसके कन्धे पर ही बैठकर चलते हैं। इससे हम थकेंगे भी नहीं किन्तु सीता उस राक्षस से रोकर कहती हैं कि तुम मुझे खा जाओ और इन दोनों को छोड़ दो। इस प्रकार राम और लक्ष्मण, सीता का सुनकर क्रोध के कारण उस विराध के अपनी-अपनी तरफ के हाथ को काट देते हैं और उसे लात-मुक्कों और बाण बलवार क्षत-विक्षत कर उसके शरीर को पृथ्वी पर पटकने और रगड़ने लगते हैं। किन्तु उस पर कोई प्रभाव न पड़ते देखकर श्रीराम, लक्ष्मण से कहते हैं कि लक्ष्मण इसको इसी वन में गड्ढा खोदकर गाड़ दो। लक्ष्मण गड्ढा खोदने लगते हैं और श्रीराम अपने एक पैर को विराध के गले में रखकर खड़े हो जाते हैं। उसी समय विराध को पुरानी बात स्मरण हो जाती है और वह श्रीराम को बताता है कि मैंने पूर्व जन्म गन्धर्व वंश में जन्म लिया था। रम्भा नामक अप्सरा में आसक्त होने के कारण कुबेर ने मुझे शाप दे दिया कि तुम राक्षस हो जाओ। बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने मुझे शाप से मुक्त होने का उपाय बताया कि जब श्रीराम इस वन से गुजरेंगे और तुम्हारा वध करेंगे तब तुम राक्षस प्रवृत्ति से मुक्त हो स्वर्ग को प्राप्त करोगे। तब से मैं इस मार्ग से होकर जाने वाले सभी पथिकों को रोकता हूँ। आज आप निश्चय ही श्रीराम हैं। जब मैं गन्धर्व रूप धारण करके स्वर्ग जाऊँगा तब स्वर्गवासियों को यह ज्ञात हो जायेगा कि राक्षसवध का आरम्भ हो गया है। अतः आज मैं आपके द्वारा मृत्यु प्राप्त करके शाप मुक्त होकर स्वर्गगामी हो जाऊँगा। उसके बाण से बिधे शरीर को उस गड्ढे में डाल देते हैं जिससे पाताल वालों को मालुम हो जाता है कि राक्षसों का अन्त आ गया है।

विराध द्वारा बताये हुए मार्ग से शरभंड् मुनि के आश्रम में श्रीरामचन्द्र पहुँचते हैं। वहाँ पहुँचकर वह एक अद्भुत दृश्य देखकर मुनि शरभंग के पास जाकर आकाशगामी इन्द्र के रथ और देवेन्द्र के बारे में पूछते हैं। मुनि शरभंग श्रीराम से बताते हैं कि यह देवराज इन्द्र हैं। यह मुझे अपने लोक में ले जाने के लिए आये थे। किन्तु जब मुझे आपके आने के विषय में मालुम हुआ तो मैंने बिना आपका आतिथ्य सत्कार किये जाने से मना कर दिया है मैने अपने तपस्या के बल से स्वर्ग लोक से भी ऊपर के लोक ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लिया है। स्वर्ग लोक जाने से ज्यादा मैने आपके साथ कुछ दिन बिताना उचित समझा इस प्रकार कहकर शरभंग मुनि श्रीराम का यथोचित अतिथि सत्कार करके अपने शरीर को पवित्र अग्नि में अर्पित करके परमपद् ब्रह्म लोक को प्राप्त करते हैं।

तीव्र तपस्वी मुनि सुतीक्ष्ण के आश्रम पहुँचकर उनके निर्देशानुसार मुनि अगस्त्त के आश्रम के समीप पहुँचते हैं। सीता को श्रीराम महामुनि अगस्त्त के विषय में बताते हुए वन को देखते हुए आश्चर्यमग्न भगवान राम को अगस्त्त के शिष्य उनको मुनि अगस्त्त के पास पहुँचा देते हैं। महामुनि अगस्त्त श्रीराम की प्रतीक्षा बड़ी आतुरता के साथ कर रहे थे। उन्होंने श्रीराम को आया देखकर उन्हें हृदय से लगा लेते हैं और पाद्य अर्घ्य से उनका आतिथ्य करते हैं। इसके बाद श्रीराम को ब्रह्मा आदि के द्वारा दिये गये अस्त्र-शस्त्रों को प्रदान करते हैं। जैसे- भगवान् विष्णु का दिया हुआ धनुष, ब्रह्मा का दिया हुआ बाण, इन्द्र के दिये सदा भरे रहने वाले दो तरकश आदि इसके बाद महामुनि उन्हें पंचवटी में रहने की आज्ञा देते हैं। श्रीराम मुनि अगस्त्त के आश्रम से निकल कर आगे चल पड़ते हैं।

रास्ते में श्रीराम की भेंट गृध्रराज जटायु से होती है। जटायु बड़े वात्सल्य के साथ तीनों को अपनाते हैं। जटायु, श्रीराम-लक्ष्मण की शंका का निदान करते हुए बताते हैं कि मैं दशरथ जी का मित्र हूँ। यह सुनकर श्रीराम पिता के समान जटायु का सम्मान करते हैं। वे लक्ष्मण द्वारा बनाई पर्णशाला बनाकर पंचवटी में ही रहने लगते हैं और वहीं पर सीता और लक्ष्मण के साथ गोदावरी गंगा में स्नान करके पवित्र जल से देवताओं और पितरों का तर्पण करते थे।

एक दिन रावण की बहन शूर्पणखा वहाँ आती है। श्रीराम का सौन्दर्य देखकर वह भार्या रूप में अपने को ग्रहण करने के लिए श्रीराम से अनुरोध करती है। श्रीराम कहते हैं मेरे साथ तो मेरी पत्नी हैं। लक्ष्मण स्त्री रहित हैं। तुम उनके पास जाओ। इस प्रकार कहकर उसे टाल देते हैं। किन्तु लक्ष्मण कहते हैं मैं तो श्रीराम का दास हूँ उच्चकुल में तुम्हारा जन्म हुआ है। इसीलिए दासी बनना तुम्हे शोभा नहीं देगा। लक्ष्मण के द्वारा तिरस्कृत होकर शूर्पणखा क्रोधित होकर अपनी असली रूप में आ जाती है और सीता की ओर झपटती है, तो श्रीराम हुँकार से उसे रोक देते हैं और उनके इशारे पर लक्ष्मण आगे बढ़कर शूर्पणखा के कान-नाक का छेदन कर देते हैं। शूर्पणखा लज्जित होकर उसी वन के पास ही रहने वाले अपने भाई खर के पास जाती है और रोती हुई लक्ष्मण द्वारा की गई अपनी दुर्दशा के बारे में बताती है। बहन की दुर्दशा देखकर खर क्रोध से बावला हो जाता है और चौदह हजार सेना लेकर श्रीराम पर चढ़ाई कर देता है। श्रीराम, लक्ष्मण से कहते हैं कि सुरक्षा के लिए तुम सीता को लेकर गुफा में चले जाओ लक्ष्मण राम की आज्ञा का तुरन्त पालन करते हैं। श्रीराम कवच पहनकर धनुष-बाण लेकर युद्ध के लिए खड़े हो जाते हैं। श्रीराम और खर का युद्ध देखने के लिए गन्धर्व, चारण, सिद्ध आदि आकाश में एकत्र हो जाते हैं। श्रीराम क्षणभर में खर-दूषण, त्रिशिरा एवं उनकी विशाल सेनाओं का संहार कर डालते हैं। राक्षसों का वध हो जाने से समस्त देवतागण श्रीराम पर पुष्पवृष्टि करते हैं।

तत्पश्चात् रावण की बहन राक्षसी शूर्पणखा अपने भाई रावण के पास पहुँचती है। खर-दूषण और त्रिशिरा का वध तथा जनस्थान की दुर्दशा बताकर अपने नासाकर्ण छेदन के बारे में तथा श्रीराम, लक्ष्मण और अत्यन्त सुन्दरी सीता के विषय में बताती है।

शूर्पणखा के द्वारा इस वृत्तान्त को सुनकर रावण अत्यधिक क्रोधित होकर दण्डकारण्य में आठ राक्षसों को भेजकर शूर्पणखा द्वारा बतायी दुर्नीति के बारे में विचार करके सीता का हरण करने के विचार से राक्षस मारीच के पास जाता है।

मारीच रावण को अचानक अपने आश्रम में आया देखकर उससे आने का कारण पूछता है और उसके अभिप्राय को जानकर यद्यपि उसे समझता है पर न मानने पर स्वर्ण मृग का वेश बनाकर पंचवटी में रावण के कथनानुसार सीता को छलने के लिए प्रस्तुत होता है और सीता (पंचवटी) के आस-पास विचरण करने लगता है और रावण आकाश में अपना रथ रोककर सीता के अकेले होने का इन्तजार करने लगता है। जब स्वर्ण मृग रूपी मारीच सीता के आस-पास ही चरने लगता है, जिसे देखकर सीता मोहित हो जाती हैं और राम से कहती हैं कि आप किसी भी तरह से इस मृग को मेरे लिए ला दें। सीता को लक्ष्मण के संरक्षण में छोड़कर राम धनुष लेकर वन में प्रवेश करते हैं। मृग का पीछा करते हुए वह काफी दूर निकल जाते हैं। मायारूपी मृग जो स्वयं ही राम के हाथों मरना चाहता था। उसे राम अपने बाण से मार डालते हैं जिससे वह आहत होकर पृथ्वी पर गिरकर दीन-स्वर से हा सीते! हा लक्ष्मण! की आवाज करता हुआ स्वर्ग को चला गया। सीता मारीच की माया रूपी राम की आवाज को सुनकर अत्यन्त चिन्तित हो जाती हैं और उनका मन आशंकाओं से भर जाता है। वह लक्ष्मण से कहती हैं कि लगता है मेरे स्वामी श्रीराम कोई बड़ी मुसीबत में पड़ गये हैं। इसलिए तुम शीघ्र ही अपने भाई की सहायता के लिए जाओ, किन्तु लक्ष्मण, श्रीराम के आदेश का पालन करने के विचार से जाने के लिए तैयार नहीं होते हैं। वह राम की आज्ञा का उल्लंघन करना नहीं चाहते थे। वह सीता को समझाते हुए कहते हैं कि श्रीराम को कोई नहीं जीत सकता है। यह आर्तनाद श्रीराम का नहीं है। फिर यदि मैं जाता भी हूँ तो आपकी रक्षा कौन करेगा ? किन्तु सीता उनकी बात नहीं मानती है और उन्हें दिल में चुभ जाने वाली कठोर बातें कहती हैं। उन बातों को सुनकर लक्ष्मण बहुत दुःखी हो जाते हैं और विवश होकर लक्ष्मण, देवता आपकी रक्षा करें, इतना कहकर श्रीराम जी के पास चल पड़े। रावण इसी परिस्थिति की प्रतिक्षा कर रहा था। तुरन्त साधु वेष में सीता के आश्रम में आता है। सीता उसे सन्यासी जानकर अतिथि सत्कार करती हैं और अवसर पाकर रावण अपने स्वरूप में आ जाता है। सीता को उठाकर अपने विमान में बैठाकर आकाश मार्ग से ले जाता है। सीता विलाप करती हैं। हा नाथ! आप इतनी देर तक कहाँ रहे ? रोती हुई सीता चारों ओर दिशाओं को देखती हुई रावण की गोद में छटपटाती हुई विलाप करती हैं। सीता के विलाप को

सुनकर गृध्रराज जटायु की दृष्टि उन पर पड़ती है, रोती हुई सीता को रावण की गोद में देखकर कहते हैं अरे मूर्ख! राक्षस तू मेरी पुत्रवधू को कहाँ ले जा रहा है ? जटायु रावण के इस कुकृत्य से बचने के लिए कहता है। जटायु की बात रावण को जहर की तरह पीड़ा पहुँचाती है। जटायु अपने पंजे से उसके शरीर में बहुत से घाव कर देता है और चोच से रावण के सारे शस्त्रों और रथ छत्र आदि को अपने पंखों, चोंच और पंजो से छत्-विछत कर देते हैं। रावण, सीता को लेकर पृथ्वी पर आ गिरता है। इससे रावण अत्यधिक क्रोधित हो संभलकर जटायु से युद्ध करने लगता है। रावण और जटायु में घोर युद्ध होने लगता है। अन्त में रावण शीघ्रता से तलवार के द्वारा जटायु के दोनों पंख काट डालता है। बूढ़े जटायु पृथ्वी पर आकर गिर पड़ते हैं। अब रावण, सीता को लेकर तेजी से उड़ने लगता है।

सीता की दृष्टि पर्वत के शिखर पर बैठे पाँच श्रेष्ठ वानरों पर पड़ती है। वह अपने गहनों को अपने वस्त्र में लपेटकर उनके बीच में गिरा देती हैं। रावण इतनी घबराहट में रहता है कि उसे कुछ पता नहीं चलता है। वह तीव्र गति से उड़कर शीघ्र ही लंका में प्रवेश करता है। लंका में पहुँचकर रावण सीताजी को अशोक वाटिका में पहुँचा देता है और राक्षसियों का पहरा लगा देता है।

तत्पश्चात् राम, रावण के द्वारा भेजा हुआ माया रूपी स्वर्ण मृग को मारकर लक्ष्मण के साथ आश्रम की ओर लौटते हैं। लक्ष्मण उनको सीता के द्वारा कहीं हुई बातों को बताते हैं जिसे सुनकर राम उनसे कहते हैं कि तुम्हें सीता को अकेला छोड़कर नहीं आना चाहिए। दोनों शीघ्र ही (उनकी) पर्णशाला की ओर आते हैं। सीता को वहाँ न पाकर राम और लक्ष्मण दोनों घबरा जाते हैं। वह इधर-उधर देखते हैं किन्तु सीता का कहीं पता नहीं लगता है। श्रीराम विरह से व्यथित होकर विलाप करने लगते हैं। सीता जी को खोजते हुए वह गोदावरी के समीप इधर-उधर भागती हुई उनके पद चिह्न भी दिखाई देते हैं। उन पद चिह्नों का पीछा करते हुए किसी-किसी के बड़े-बड़े पद चिह्न भी दिखाई पड़ते हैं। आगे बढ़ने पर खून से लथपथ गृध्रराज जटायु मिलते हैं। वह जटायु सारी घटना श्रीराम और लक्ष्मण को बताते है कि आयुष्मन्

रावण, सीता को हर ले गया है। मेरे विरोध करने पर उसने अपनी तलवार से मेरे पंख काट डाले हैं। वे राम और लक्ष्मण को ढांढस देते हैं कि सीता आपको शीघ्र ही मिल जायेंगी। ऐसा कहकर गृधराज जटायु अपने प्राणों को त्यागकर स्वर्ग चले जाते हैं। गृधराज जटायु की बात सुनकर श्रीराम अत्यधिक शोकाकुल हो जाते हैं और लक्ष्मण से कहते हैं कि मुझे सीता के हरने का इतना दुःख नहीं है जितना जटायु की मृत्यु का दुःख है। इसके बाद श्रीराम पिता की तरह ससम्मान जटायु का और्ध्वदैहिक कर्म सम्पन्न करते हैं, फिर गोदावरी नदी में जलाञ्जलि देकर आगे बढ़ते हैं जब वह दक्षिण की ओर बढ़ते हैं तो वहाँ अयोमुखी नामक राक्षसी को देखते हैं जो बहुत भयानक आकृति वाली थी। अयोमुखी राक्षसी राम और लक्ष्मण के समीप आकर लक्ष्मण को पकड़कर कहती है आओ हम दोनों रमण करें। यह कहकर वह लक्ष्मण को पकड़ लेती है। लक्ष्मण जी क्रोध से लाल हो जाते हैं और शूर्पणखा की तरह उसके भी नाक, कान आदि तलवार से काट डालते हैं।

इसके बाद क्रौञ्चारण्य के मार्ग से जाते हुए सीता की खोज करते हुए राम और लक्ष्मण जब आगे बढ़े तो मार्ग में उनको स्थूलशिरा नामक महर्षि के शापग्रस्त भयंकर विशालकाय शरीर वाला राक्षस कबन्ध राम और लक्ष्मण को अपने बाहुओं से पकड़ लेता है। राम दाहिनी और लक्ष्मण उसकी बाँई भुजा को काट डालते हैं। इससे वह पृथ्वी पर गिर पड़ता है। लक्ष्मण ने उसकी चिता बनाकर उसके शरीर को पर्वत के गड्ढे में डालकर उस पर आग लगा दी। इस अग्नि से अपने दानवयोनि जन्म प्रयोजक ऋषि शाप से मुक्त होकर सन्तुष्ट कबन्ध श्रीराम को सूर्य पुत्र सुग्रीव के बारे में बताकर उनसे मित्रता करने की सलाह देकर और ऋष्यमूक पर्वत का मार्ग बताकर स्वर्ग को चला जाता है। सुग्रीव ही सीता की खोज करने में सहायता कर सकते हैं। इस बात को सुनकर राम और लक्ष्मण पम्पा सरोवर की ओर बढ़ने लगते हैं। रास्ते में मतंगमुनि के आश्रम में सिद्ध तपस्विनी शबरी से मिलते हैं। शबरी भाव-विभोर होकर उनका आतिथ्य करती हैं। शबरी पर श्रीराम का अनुग्रह हो गया था, इसलिए शबरी, श्रीराम से आज्ञा लेकर दिव्यधाम को चली गयी। इसके बाद वह पम्पा सरोवर की ओर प्रस्थान करते हैं।

किष्किन्धा काण्ड -

श्रीराम के हृदय में सीता का अभाव निरन्तर व्याकुल करता रहता है। पम्पा सरोवर का मनोरम दृश्य देखकर उनका शोक और उदीप्त हो उठता है। विकलता बढ़ते-बढ़ते व्याकुलता में परिणत हो जाती है। लक्ष्मण के समझाने पर शोक से सन्तप्त चित्त हुए श्रीराम ने शोक और मोह का परित्याग करके धैर्य धारण करते हैं।

राम और लक्ष्मण पम्पा सरोवर के आगे बढ़ते हैं। ऋष्यमूक पर्वत के समीप वानरराज सुग्रीव पम्पा के निकट घूम रहे थे। उसी समय वानरराज सुग्रीव की दृष्टि श्रीराम और लक्ष्मण पर पड़ती है। दोनों के शरीर से अद्‌भुत वीरता दिखाई देती है। उन्हें देखकर सुग्रीव डर जाते हैं। सुग्रीव को सन्देह होता है कि कहीं मेरे भाई बालि ने मुझे मारने के लिए तो इन्हें नहीं भेजा है। इसके बाद सुग्रीव के कहने पर हनूमान् सामान्य तपस्वी का वेष बनाकर श्रीराम के पास जाते हैं। उनके समीप पहुँचकर वह राम और लक्ष्मण को बड़े ही आदर के साथ प्रणाम करते हैं और मधुर वाणी में पूछते हैं कि आप दोनों कौन हैं, किस कारण इस वन में आये हैं। श्रीराम और लक्ष्मण से अपनी वाक्पटुता में दक्षता होने के कारण सारी जानकारी कर लेते हैं। वह श्रीराम और लक्ष्मण से कहते हैं कि यहाँ पर सुग्रीव नाम के एक वानरराज रहते हैं। वे अपने भाई बालि के भय के कारण इस पर्वत पर रहते हैं। उन्होंने ही मुझे यहाँ आपके पास भेजा है। मैं भी वानर जाति का हूँ। मैं आपने को सन्यासी वेष में बनाकर आया हूँ। मेरा नाम हनूमान् है। वानरराज सुग्रीव आपसे मित्रता करना चाहते हैं। ऐसा कहकर हनूमान् चुप हो जाते हैं। उनकी विनम्रतापूर्ण बात सुनकर श्रीराम बहुत प्रसन्न होते हैं और हनूमान् से कहते हैं कि कपिवर हम वानरराज सुग्रीव की खोज में यहाँ आये हैं। श्रीराम हनुमान् को प्रसन्नता पूर्वक गले से लगा लेते हैं और उनके द्वारा बताये गये रीति से अग्नि साक्षी करके मित्रता स्थापित कर लेते हैं। सुग्रीव और राम मित्रता करके जब एक दूसरे से पूर्णतः आश्वस्त हो जाते हैं, तब सुग्रीव श्रीराम से कहते हैं, मेरे बड़े भाई ने मेरी पत्नी छीन ली है और मुझे घर से निकाल दिया है। मेरे वध के लिए वह

निरन्तर प्रयास किया करता है। यह सुनकर श्रीराम धर्मद्रोही बालि के वध की प्रतिज्ञा करते हैं और सुग्रीव से सीता के बिना अपने दुःख को प्रकट करते हैं। सुग्रीव सीता की खोज की प्रतिज्ञा करते हैं।

सुग्रीव, श्रीराम से बताते हैं कि रावण ने सीता का अपहरण किया है। जब उन्हें वह चुराकर लिए जा रहा था, तो सीता को 'हा राम' 'हा लक्ष्मण' कहकर छटपटाती हुई मैने सुना था। उन्होंने अपने आभूषण अपने चादर में बाँधकर गिरा दिये थे। आप उन्हें पहचान लें। इस प्रकार कहकर सुग्रीव आभूषण लाकर श्रीराम को देते हैं। उन आभूषणों को देखकर श्रीराम विह्वल हो जाते हैं। लक्ष्मण के समझाने पर वह शान्त होते हैं और सुग्रीव से बालि से वैर का कारण पूँछते हैं। सुग्रीव श्रीराम से कहते हैं पूर्वकाल में मयदानव का पुत्र तथा दुन्दुभि का बड़ा भाई मायावी ने एक बार बालि को युद्ध के लिए ललकारा उसकी ललकार को सुनकर बालि जब उसके सामने आये तो उनका पराक्रम देखकर वह भाग गया। उसका पीछा करते हुए मैं और मेरा बड़ा भाई बालि बहुत दूर निकल गये किन्तु वह राक्षस एक गुफा में घुस गया उसके पीछे बालि भी घुस गये। मैने भी उनका अनुसरण किया किन्तु उन्होंने मुझे गुफा के द्वार पर ही रोककर स्वयं गुफा के अन्दर चले गये। बहुत समय बीत जाने पर भी वह गुफा के बाहर नहीं निकले अचानक एक दिन उस गुफा से फेन सहित खून की धारा निकली उसे देख शोकाकुल होकर मुझे भाई के मारे जाने की शंका हुई ऐसा विचार करके मैंने उस गुफा को बन्द करके भाई को जलाञ्जलि देकर घर वापस आ गया। किष्किन्धा-वासी यह अशुभ समाचार सुनकर बहुत दुःखी हुए और मुझे राजसिंहासन पर बैठा दिया। कुछ समय के बाद जब उस राक्षस को मारकर मेरे भाई आये तो मुझे सिंहासन पर बैठा देख कर बहुत क्रोधित हुए। मेरे बहुत प्रकार से वास्तविकता बताने पर भी वह आश्वस्त नहीं हुए और मेरी पत्नी छीनकर राज्य से निकाल दिया तब से मैं इसी ऋष्यमूक पर्वत में रह रहा हूँ। इस पर्वत में मैं निर्भय होकर भ्रमण करता हूँ। बालि मतंगमुनि के शाप से भयभीत होकर इस वन में प्रवेश नहीं करता है। इसलिए मैं इस वन में निर्भय होकर निवास करता हूँ। इस प्रकार सुग्रीव ने ऋष्यमूक पर्वत पर अपने निवास का कारण बताकर

बालि के पराक्रम को बताया। श्रीराम तब से इस ओर आने वाले समस्त जन को मैं बालि द्वारा भेजा हुआ मेरा कोई शत्रु ही आ रहा है। ऐसा सोंचकर आप लोगों को देखकर मैं डर गया था। किन्तु हनुमान् के द्वारा आपके बारे में सुनकर अतिप्रसन्नता हुई।

इस प्रकार सुग्रीव की शोकपूर्ण बातें सुनकर राम सुग्रीव को विश्वास दिलाने के लिए अपने पैर के अँगूठे से उस दुन्दुभि के अस्थि समूह को उठाकर दस योजन दूर फेंक देते हैं। राम के इस कार्य से भी जब सुग्रीव को उनके पराक्रम पर विश्वास नही होता है तो श्रीराम शाल के सातों वृक्षों को एक ही बाण से विदीर्ण कर देते हैं। श्रीराम के इस चमत्कार और अद्‌भुत पराक्रम देखकर सुग्रीव को बहुत प्रसन्नता होती है। श्रीराम पर विश्वास हो जाता है। श्रीराम की आज्ञा पाकर सुग्रीव किष्किन्धा जाकर बालि को युद्ध के लिए ललकारते हैं। बालि उसकी ललकार को सह नहीं पाता और सुग्रीव से भिड़ जाता है। कुछ देर में उसे मार-पीटकर परास्त कर देता है। सुग्रीव राम के बाण की प्रतीक्षा करते हैं किन्तु जब श्रीराम सुग्रीव की कोई सहायता नहीं कर पाते हैं तो सुग्रीव अपनी जान बचाकर मतंग मुनि के वन में वापस आ जाते हैं। सुग्रीव श्रीराम से कहते हैं कि आपने मेरी सहायता नहीं किया तब श्रीराम कहते हैं कि तुम दोनों भाइयों का स्वरूप एक होने के कारण मैं तुम्हारे भाई को पहचान न सका इसलिए मैंने बाण नहीं चलाया श्रीराम उनसे कहते हैं कि इस बार तुम फिर उसे युद्ध के लिए ललकारो इस बार मैं पहचान के लिए तुम्हारे गले में माला डाल देता हूँ जिससे तुम्हें तथा बालि को पहचानने में कठिनाई न हो इस बार बालि का वध अवश्य हो जायेगा। ऐसा कहकर श्रीराम सुग्रीव को बालि के पास भेजते हैं और सुग्रीव बालि के समक्ष जाकर उसे फिर ललकारता है। दोनो में मल्लयुद्ध होने लगता है। तारा, बालि को बहुत समझाती है किन्तु बालि नहीं मानता और युद्ध करने लगता है। दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। उसी समय श्रीराम सुग्रीव को हताश हुआ इधर-उधर दृष्टि घुमाते हुए देखते हैं तो वह क्रोधित हो धनुष पर बाण चढ़ाकर चला देते हैं। जो बालि की छाती को बेधता हुआ बाण उसको चोट पहुँचाता है। बाण से आहत होकर बालि पृथ्वी पर गिर जाता है। उसके वध की सूचना पाकर बालि

की पत्नी तारा आदि अन्त:पुर से निकल कर विलाप करती हुई, बालि के समीप पहुँचकर जोर-जोर से विलाप करने लगती हैं और तारा निस्तेज शरीर वाले बालि के सिर को अपनी गोद में रखकर श्रीराम से कहती हैं - हे रघुनाथ जिस तरह से आपने मेरे पति वानरराज बालि को मारा है उसी प्रकार मुझे भी अपने बाणों से बेध दीजिए क्योंकि मैं अपने पति के बिना कैसे जी सकती हूँ। तारा के इस प्रकार विलाप को सुनकर बालि चेतना को प्राप्त कर सुग्रीव को इन्द्र द्वारा प्रदत्त हेममाला को सौंपते हुए कहते हैं कि अब तारा और अंगद की देखभाल तुम्हारे हाथ में है। अंगद को श्रीराम के हाथों में सौंपते हैं। बालि की मृत्यु के पश्चात् समस्त वानर शोक संतप्त होकर विलाप करने लगते हैं। तारा तथा अन्य बालि की स्त्रियाँ व्याकुल होकर विलाप करने लगती हैं। रामचन्द्र जी उन समस्त वानरों आदि को सांत्वना देते हैं। श्रीराम की आज्ञानुसार बालि की प्रेतक्रिया सुग्रीव के द्वारा की जाती है। बालि का अन्तिम संस्कार हो जाने पर श्रीराम के आदेश से जाम्बवान् और वानर सोने के घड़ों में जल लाकर सुग्रीव का राज्याभिषेक करते हैं। राज्याभिषेक होने के पश्चात् सुग्रीव अपनी प्रजा के साथ अपनी पत्नी रुमा को पाकर सुखपूर्वक किष्किन्धापुरी में जाकर निवास करने लगते हैं।

वानरराज सुग्रीव, श्रीराम से कहते हैं कि मैं शरद् ऋतु में सीता का अन्वेषण करूँगा तब तक आप मेरे राज्य किष्किन्धापुरी में निवास करिये। श्रीराम, सुग्रीव की प्रार्थना अस्वीकार कर देते हैं। वह प्रस्त्रवण पर्वत पर अपना आश्रम बनाकर लक्ष्मण के साथ रहने लगे।

श्रीराम का आश्रम हर प्रकार से सुख सम्पन्न था। किन्तु सीता जी के वियोग में श्रीराम शोक से संतप्त रहते थे। धीरे-धीरे वर्षा बीत जाने पर भी सुग्रीव सीता की खोज करने की प्रतिज्ञा को भूल जाते हैं। इससे लक्ष्मण जी सुग्रीव के ऊपर क्रोधित होते हैं। श्रीराम की आज्ञा पाकर वह सुग्रीव को याद दिलाने के लिए किष्किन्धापुरी जाते हैं वहाँ पहुँचने पर अंगद सुग्रीव को सूचित करते हैं कि अत्यन्त कुपित लक्ष्मण जी पधारे हैं। किन्तु सुग्रीव ध्यान नहीं देते हैं। इसके बाद लक्ष्मण का क्रोध देखकर समस्त वानर भय से किलकिला शब्द करने लगते हैं।

हनुमान् जी सुग्रीव को याद दिलाते हैं कि आपने श्रीराम से सीतान्वेषण की जो प्रतिज्ञा की थी उसे भूल गये हैं। इसी विलम्ब के कारण श्रीराम ने लक्ष्मण को आपके पास प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए सूचना भेजी है। हनुमान् जी के द्वारा कही बात को सुनकर लक्ष्मण के क्रोध से भयभीत वानरराज सुग्रीव तारा को लक्ष्मण के पास भेजते हैं। तारा लक्ष्मण के पास पहुँचकर निवेदन करती हैं कि हे लक्ष्मण बहुत दिनों से राज्य वंचित वानरराज सुग्रीव कामासक्त होने के कारण सब कुछ भूल गये हैं क्योंकि कामासक्त व्यक्ति अपना सबकुछ भूल जाता है। उसे कुछ भी याद नहीं रहता। इसलिए आप सुग्रीव को अपना भाई समझकर क्षमा कर दीजिए। तारा की नीतिपूर्ण बातों को सुनकर लक्ष्मण का क्रोध शान्त हो जाता है। लक्ष्मण को शान्त हुआ देखकर सुग्रीव उनके पास आते हैं और क्षमा याचना करके लक्ष्मण के साथ ही श्रीराम के पास पहुँचकर उनसे निवेदन करते हैं कि महाराज पवनपुत्र हनूमान् जी ने समस्त पर्वतों पर निवास करने वाले वानर सेना को बुला भेजा है। अब आप शीघ्र ही सीता का हरण करने वाले अपने शत्रु रावण का वध करेंगे।

श्रीराम का आदेश पाकर सुग्रीव सीता की खोज के लिए चारों दिशाओं में वानरों को भेज दिया। सुग्रीव ने सीता को दक्षिण की ओर जाते देखा था। इसलिए दक्षिण दिशा में वानरों में प्रधान पवनपुत्र हनूमान्, ब्रह्मपुत्र जाम्बवान्, बालिपुत्र अंगद को वानर सेना लेकर भेजा और पूर्व दिशा में विनत को, पश्चिम दिशा में सुषेण को एवं उत्तर दिशा में शतबलि नामक वानर को भेजा।

एक मास बीतते-बीतते तीनो दिशाओं के वानर लौट आये। दक्षिण दिशा का अन्वेषण कठिन था, क्योंकि इधर का प्रदेश गुफाओं और घने जंगलों से भरा था।

हनुमान् जी, अंगद के साथ बड़ी सावधानी से सीता के अन्वेषण कार्य में लगे थे। उनके अनुयायी वानरगण भी सीता की खोज बड़ी लगन के साथ कर रहे थे, किन्तु सीता का कहीं पता नहीं लगा।

बालिपुत्र अंगद के आदेश से वे सभी वानर पुनः सीता की खोज में लग जाते हैं। थक जाने पर वे समस्त वानर एक पर्वत की चोटी पर लेट जाते हैं। भूख प्यास से व्याकुल वानर सुग्रीव द्वारा दी गई अवधि समाप्त होने के कारण बहुत चिन्तित

होते हैं तभी उन्हें एक गुफा दिखाई देती है जिससे भीगे हुए पक्षी बाहर निकल रहे थे। पक्षियों के आवागमन से वानर उस गुफा में जलाशय होने का अनुमान लगाते हैं और पानी पीने की इच्छा से वे वानर उस गुफा में घुस जाते हैं। कुछ दूर जाने पर उन्हें प्रकाश ही प्रकाश मिलता है। वहाँ के वृक्ष सुवर्णमय थे और स्वर्णिम फूलों और फलों से लदे थे। तभी उनको एक दिव्य स्त्री भी दिखाई देती है जो तप में लीन थी। उस तपस्विनी को देखकर हनूमान् जी पूछते हैं कि देवि आप कौन हैं और यह स्थान किसका है। हनूमान् जी के पूछने पर तपस्विनी बताती हैं कि मैं मेरुसावर्णि की कन्या हूँ मेरा नाम स्वयंप्रभा है। इसके बाद वह तपस्विनी उन सभी वानरों को भोजन आदि कराकर संतुष्ट करती है और उनसे गुफा के अन्दर आने का कारण पूछती है। वानरों के द्वारा सीता की खोज का वृत्तान्त सुनकर वानरों के द्वारा गुफा के बाहर जाने के आग्रह पर सुनकर वह उन सभी वानरों को अपने प्रभाव से गुफा के बाहर निकाल करके उसी में चली जाती है।

गुफा के बाहर आने पर अंगदादि बहुत चिन्तित थे। क्योंकि सीता की खोज की अवधि तो उसी गुफा में ही समाप्त हो गई थी। सुग्रीव के मृत्यु दण्ड के भय से वे सभी व्याकुल थे। जब कोई उपाय उन वानरों को नहीं समझ में आया तो अंगद चिन्ता से मनोव्यथायुक्त हनूमान् के वचन पर विश्वास होने के कारण अंगद आदि वानर मरने की इच्छा से वहीं पर अनशन करके बैठ जाते हैं। वानरों की रोने-चिल्लाने की आवाज को सुनकर जटायु के बड़े भाई सम्पाति कन्दरा से बाहर निकल आते हैं। वानरों के समूह को देखकर वह बड़े प्रसन्न होते हैं कि ईश्वर ने हमारे लिए बहुत अच्छा भोजन भेज दिया है। वानर सम्पाति को देखकर भय से आपस में बाते करने लगते हैं कि हम लोगों से अच्छे तो जटायु थे जिन्होंने राम कार्य में अपने को उत्सर्ग कर दिया। जब सम्पाति अपने प्रिय अनुज जटायु की मृत्यु की बात सुनते हैं तो वह रो पड़ते हैं और वानरों से जटायु के बारे में पूरा वृत्तान्त सुनकर कहते हैं कि मुझे समुद्र तट तक पहुँचा दो क्योंकि मेरे पंख जल गये हैं। मैं अपने छोटे भाई जटायु को जलाञ्जलि देना चाहता हूँ। जटायु को जलाञ्जलि देने के पश्चात् सम्पाति कहते हैं कि एक बार मैने पुत्र सुपार्श्व को भोजन के लिए भेजा था। उसने आकर बताया कि मैंने महेन्द्र पर्वत के छिद्र से निकलते हुए रावण को देखा है। वह जानकी को

लेकर दक्षिण दिशा की ओर लंका में ले गया है। अब आप लोग अनशन छोड़कर सीता की खोज में लग जाओ तुम लोग अवश्य अपने कार्य में सफल होंगे, क्योंकि जब सूर्य द्वारा हमारे पंख जल गये उस समय मैं इसी विन्ध्य पर्वत में गिर पड़ा किसी प्रकार कष्ट को सहन करता हुआ मैं पर्वत से उतरकर महर्षि निशाकर के आश्रम पहुँचा। आश्रम में पहुँचकर मुनि निशाकर से अपने पंख जल जाने का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया उसे सुनकर मुनि ने सान्त्वना देते हुए कहा कि रावण द्वारा सीता का हरण होगा और राम के द्वारा भेजे गये दूत वानर उनकी खोज करते हुए यहाँ आयेंगे और तुम उनको सीता का पता बताना, तब तक तुम यहीं रहो जब श्रीराम का कार्य पूर्ण हो जायेगा तब तुम्हारे नये पंख निकल आयेंगे। तभी से मैं यहाँ हूँ। सम्पाति के बताते ही बताते उनके दो नये पंख निकल आये और वह वानरों को सीता के दर्शन होने का आश्वासन देकर आकाश में उड़ गये।

सीता का पता पाकर हर्ष से वानरों का मन खिल उठता है और वह पुनः सीता की खोज के लिए उद्यत हो जाते हैं। समुद्र के समीप पहुँचकर युवराज अंगद के कहने पर समस्त वानर अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन करने लगे किन्तु सभी को समुद्र लाँघने में असमर्थ पाकर ऋक्षराज जाम्बवान्, हनूमान् जी से कहते हैं कि जो जन्म लेते ही सूर्य तक आकाश लाँघ सकता है वह क्या इस क्षुद्र समुद्र को नहीं लाँघ सकता है। वीरवर उठो और इस महासागर को लाँघ जाओ। राम का कार्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। इस प्रकार जाम्बवान् द्वारा हनूमान् जी को अपनी शक्ति का ज्ञान हो जाता है और वह अपना विराट रूप धारण करते हैं उनकी शक्ति अंग-प्रत्यंग से फूटने लगती है। वानरों का विषाद समाप्त हो जाता है। वह प्रसन्न होकर उछलने कूदने और गर्जना करने लगते हैं। सबको आश्वस्त कर एवं बूढ़े यूथपतियों को प्रणाम कर हनूमान् जी महेन्द्र पर्वत पर चढ़ गये और वे वहाँ पर अपने पिता वायु देवता को प्रणाम कर लम्बी छलाँग लगाते हैं।

सुन्दर काण्ड -

हनुमान् जी जाम्बवान् के वचनों का आदर करते हुए उनकी आज्ञा से सीता की खोज करने के लिए गरुड़ के समान वेग धारण करने वाले ये महेन्द्र पर्वत के शिखर से आकाश मार्ग से ऊपर की ओर उड़े। उनके उड़ने पर महेन्द्र पर्वत उनके चरणाघात से अतीव व्याकुल हो जाता है। हनूमान् का वेग इतना प्रबल था कि उस पर्वत के बहुत से पाषाण खण्ड कुछ दूर तक हनूमान् के साथ उड़ते देखे जाते हैं।

समुद्र के द्वारा प्रेरित करने पर मैनाक पर्वत हनूमान् को विश्राम प्रदान करने की इच्छा से सागर से ऊपर उठता है। हनूमान् पहले तो उसे विघ्न समझकर छाती के प्रहार से नीचे गिरा देते हैं। परन्तु उसके परिचय तथा विश्राम के लिए निवेदन को सुनकर अपनी परवशता बताकर उसे साधुवाद द्वारा सत्कृत करके आगे बढ़ जाते हैं। उसी समय सर्पों की माता सुरसा देवताओं से प्रेरित हो मुँह फैलाकर हनूमान् के सामने खड़ी हो जाती हैं। हनूमान् उसके बढ़े हुए मुख को देखकर अत्यन्त छोटा रूप बना उसके उदर में प्रवेश कर बाहर आ जाते हैं और उससे विदा लेकर आगे बढ़ते हैं।

छाया के माध्यम से आकाशचारी जीवों को पकड़ कर खाने वाली सिंहिका नामक राक्षसी हनूमान् जी को खाना चाहती है। हनूमान् नखों से उसे विदीर्ण कर समुद्र को पार कर लम्ब पर्वत पर उतरते हैं और छोटा रूप बनाकर लंका के उत्तरी द्वार पर आकर चिन्तायुक्त होते हैं कि कितने विघ्न बाधाओं से इस समुद्र को पार करके वानर सेना श्रीराम आदि के सहित इस लंका में केसे आयेगी और कैसे सीता का उद्धार होगा। इस प्रकार चिन्ता करते हुए सूर्यास्त के समय लंका में प्रवेश करते हैं। वहाँ द्वार पर ही लंका की अधिष्ठात्री देवी हनूमान् जी को रोकती है। वे उसे पराजित करते हैं तब वह कहती है कि उसे ब्रह्मा ने कहा था कि जब तुम्हें कोई वानर पराजित करे तो समझना कि लंकावासी राक्षसों का विनाश का समय आ गया है। ऐसा कहकर वह लंका में सीता के अन्वेषण के लिए हनूमान् को अनुमति देती है। हनूमान् सीता को खोजते हुए रावण के भवन में जाते हैं। वहाँ के अनुपम सौन्दर्य को देखकर आश्चर्य चकित होते हैं। किन्तु सीता वहाँ नहीं प्राप्त होती हैं। अन्त में सीता को ढूँढ़ते

हुए अशोक वाटिका में पहुँचते हैं और वहाँ एक शिंशपा के वृक्ष पर चढ़कर पत्तों से अपने को छिपाकर बैठ जाते हैं। वहीं सीता को भी देखते हैं। सीता के कष्ट को देखकर चिन्तित अवस्था में हनूमान् ने आधी रात बिता दी।

अर्ध रात्रि के समय काम वेदना से सन्तप्त रावण जानकी दर्शनेच्छा से ही अनेक वेश्याओं के साथ सीता के पास जाता है और प्रणय निवेदन करता है। सीता, राम का स्मरण करते हुए तृण का ओट करके रावण के उत्तम कुल का स्मरण दिलाकर पर स्त्री परवशता से रोकती है तथा श्रीराम का भय दिखाती हैं। सीताजी के हितकारक वाणी को सुनकर उससे तिरस्कृत हो क्रोधित रावण राक्षसियों को अपने वश में करने के लिए आज्ञा देकर अपने भवन चला जाता है। सीता शोक युक्त हो विलाप करने लगती हैं। राक्षसियाँ उन्हें डराती हैं जिन्हें त्रिजटा नामक राक्षसी अपने दु:स्वप्न के माध्यम से उनको समझाकर सीता को कष्ट न देने के लिए समझाती हैं। इधर सीता रावण के वचनों से आहत हो अत्यन्त व्याकुल हो जाती हैं। उनकी व्याकुलता से दुखी हनूमान् श्रीराम के वंश की प्रशंसा में मधुर वचन बोलते हैं जिसे सुनकर सीता शिंशपा की शाखा पर हनूमान् को देखकर आश्चर्य चकित होती हैं और उसे कपट वानर रूपधारी रावण मानकर डर जाती हैं।

हनूमान् वृक्ष से नीचे उतरकर अपना परिचय दे विश्वास दिलाते हैं और श्रीराम एवं लक्ष्मण की सुग्रीव से मित्रता आदि का वृत्तान्त कहते हैं तथा अपनी वार्ता की सत्यता के लिए प्रमाण स्वरूप राम नाम अंकित श्रीराम की अँगूठी को अभिज्ञान के रूप में सीता को प्रदान करते हैं जिससे सीता प्रसन्न हो हनूमान् से कहती हैं कि यदि एक मास के अन्दर श्रीराम आकर मुझे नहीं ले जाते तो मैं प्राण धारण नहीं कर सकूँगी। हनूमान् जी, जानकी जी को समझाते हुए अपने साथ ही ले जाने को कहते हैं जिसे सीता जी पतिव्रता धर्म में स्थिति होने से मनाा कर देती हैं तथा श्रीराम के पराक्रम से ही अपने को मुक्त कराना चाहती हैं। उनकी धर्म युक्तवाणी से प्रभावित हो हनूमान् राम के लिए सन्देश तथा अभिज्ञान के रूप में चूड़ामणि को प्राप्त करते हैं।

हनुमान् जी रावण को अपने आने की सूचना देने की इच्छा से अशोक वाटिका को उजाड़ डालते हैं और उसकी रक्षा के लिए नियुक्त अनेकों राक्षसों रावण पुत्र अक्षय कुमार तथा पाँच मन्त्रियों को मार डालते हैं। इन्द्रजीत ब्रह्मास्त्र के द्वारा छल से उन्हें बाँधकर रावण के समक्ष प्रस्तुत करता है। रावण हनुमान् के स्वरूप को देखकर आश्चर्य युक्त होता है। इसी प्रकार हनुमान् जी भी रावण के ऐश्वर्य से प्रभावित होते हैं।

हनुमान् जी अपने आने का कारण बताते हुए रावण से सीता को श्रीराम को सौंपने के लिए कहते हैं। रावण क्रोधित हो हनुमान् को मारने की आज्ञा देता है। किन्तु विभीषण दूत अबध्य होता है। मृत्यु दण्ड के अलावा अन्य दण्ड दें इस प्रकार समझाते हैं। रावण विभीषण की बात मानकर हनुमान् जी की पूँछ में कपड़ा बँधवाकर आग लगवा देता है हनुमान् अपनी पूँछ की आग से सम्पूर्ण लंका नगरी को जला डालते हैं जिससे सम्पूर्ण नगरवासी व्याकुल हो जाते हैं।

लंका का दहन करके हनुमान समुद्र में अपनी पूँछ बुझाकर साथ ही वानरों के समीप आते हैं और लंका का पूरा वृतान्त बताते हैं।

सभी वानरगण अंगद हनुमान् के साथ किष्किन्धा पहुँचकर मधुवन में जाकर मधुपान करते हैं। रखवारे दधिमुख आदि रोकना चाहते हैं। किन्तु युवराज के भय से उन्हें न रोककर विध्वंस का समाचार सुग्रीव को देते हैं। सुग्रीव इससे समझ लेते हैं कि अंगद हनुमान् आदि ने सीता का पता लगा लिया है।

हनुमान् अंगद तथा जाम्बवान् के साथ सभी वानर गण अत्यन्त प्रसन्न हो उछलते-कूदते लक्ष्मण एवं सुग्रीव से युक्त श्रीराम के पास जाते हैं। हनुमान् सीता द्वारा दिये गये चूड़ामणि को श्रीराम के हाथों में सौंपकर उनके चरणों में प्रणाम कर सीता का सम्पूर्ण समाचार देते हैं। उनके समाचार को बतलाते हुए कहते हैं कि हे स्वामी! सीता के प्राणों को जो जाने के लिए तैयार थे, वे आपके आगमन की प्रतीक्षा से रक्षित थे। मैं आपकी अँगूठी रूपी मोहर से सुरक्षित करके आपके पास आया हूँ।

युद्ध काण्ड -

हनूमान् जी के द्वारा अँगूठी रूप अभिज्ञान को प्राप्त करके स्थित जानकी को ध्यान करके सीता की चूड़ामणि को देखने से मोहाकुल श्रीराम को देखकर लक्ष्मण ने एक बाण से ही रावण को विध्वंस करने का मन में संकल्प किया। श्रीराम भी हनूमान् जी के द्वारा सीता के वृत्तान्त को सुनकर रावण के प्रति क्रोधित हो उग्र रूप धारण करते हैं। उन्हें क्रोधित देख वानरराज सुग्रीव समुद्र को एक साधारण कूप के समान पार करने योग्य मानकर, त्रिकूट पर बसी लंका को जाने के लिए अंगद, कुमुद आदि सहित सम्पूर्ण वानर सेना को आदेश देते हैं। इस प्रकार राम लक्ष्मण के सहित सम्पूर्ण सेना दक्षिण समुद्र की ओर प्रस्थान करती है। समुद्र के किनारे पहुँचकर उसके तट को घेरकर खड़े हुए महेन्द्राचल पर्वत प्रदेश को सभी प्राप्त करते हैं। राम की आज्ञा से महेन्द्राचल पर्वत पर ही सम्पूर्ण सेना पड़ाव डाल देती है।

गुप्तचरों के माध्यम से युद्ध के लिए सन्नद्ध समुद्र के समान राम की विशाल सेना के विषय में जानकर रावण आतंकित हो जाता है और अपने प्रहस्तादि मन्त्रिमण्डल को बुलाकर विचार-विमर्श करता है। रावण के मंत्रिगण उसे भयभीत न होने का परामर्श देकर उसका उत्साह वर्धन करते हैं। किन्तु रावण के छोटे भाई विभीषण जो परम नीतिज्ञ हैं, समय की गम्भीरता को देखते हुए, रावण को समझाते हैं कि परस्त्री के अनुराग से दूर हटकर सीता को श्रीराम को सौंपने की सलाह देते हैं। रावण विभीषण की वाणी को सुनकर उनका अपमान करता है। जिससे रुष्ट हो विभीषण अपने चार मन्त्रियों के सहित आकाश मार्ग में जाकर रावण का त्याक करके राम की शरण में जाते हैं। वायु पुत्र हनूमान्, रावण के अनुज विभीषण को पहचान जाते हैं। यद्यपि सुग्रीव विभीषण के आने के विषय में आशंका प्रकट करते हैं। किन्तु शरणागत वात्सल्य श्रीराम शरण में आये हुए व्यक्ति का तिरस्कार न करके अपने पास ले आने के लिए कहते हैं। हनूमान् जी विभीषण को श्रीराम के पास लाते हैं। विभीषण श्रीराम को प्रणाम करके अपना अभिप्राय प्रकट करते हैं।

श्रीराम विभीषण के निश्च्छल स्वरूप को देखकर उन्हें रावण का राज्य सौंपते हैं। इससे विभीषण अतीव कृतज्ञ हो जाते हैं।

विभीषण के परामर्शानुसार श्रीराम सेना को समुद्र पार करने के विषय में सहायता करने के लिए समुद्र की आराधना करते हैं। जब तीन दिन तक आराधना करने पर भी समुद्र की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं प्राप्त होती, तब क्रोधित श्रीराम समुद्र को सुखाने की इच्छा से अग्निबाण का संधान करते हैं जिससे डरकर समुद्र श्रीराम के सामने अनेक प्रकार के रत्नोपहार लेकर उपस्थित हो उनके चरणों में प्रणाम करता है और अमोघ ब्रह्मास्त्र को किसी वनचर वास भूमि मरु देश में छोड़ने की सलाह देकर अपने ऊपर सेतु निर्माण के लिए नल के विषय में बतलाकर अन्तर्हित हो जाता है।

राम के द्वारा आदेश प्राप्त कर वानरगण अनेकों पहाड़ों तथा बड़ी शिलाओं को लेकर समुद्र के पास लाते हैं, जिनसे नल उपयुक्त सेतु का निर्माण करते हैं, सेतु का निर्माण होने पर सभी सेना एवं सेनापतियों के साथ श्रीराम सेतु मार्ग से समुद्र को पार करके सुवेल नामक पर्वत पर अपना पड़ाव डालते हैं।

इधर रावण की आज्ञा से शुक एवं सारण नाम के दो गुप्तचर राम की सेना में आते हैं, जिन्हें विभीषण पहचान लेते हैं और उनके इशारे से वानरगण उनको बाँध लेते हैं। परन्तु श्रीराम दया करके दोनों को मुक्त करा देते हैं। ये दोनों गुप्तचर रावण के पास जाकर सम्पूर्ण समाचार बतलाते हैं और प्रासाद के ऊपर जाकर एक-एक करके सभी सेनापतियों का परिचय प्रदान करते हैं। शुक एवं सारण रावण को युद्ध न करने की सलाह देते हैं। किन्तु वह उनकी बात न मानकर शार्दूल आदि अन्य गुप्तचरों से यथास्थिति का पता लगाकर अति खिन्न हो जाता है।

रावण की आज्ञा से मायावी विद्युत्जिहवा माया द्वारा निर्मित राम का सि तथा .धनुष बाण सीता के सामने रखकर राम वध के विषय में बताता है, जिससे सीत विह्वल हो जाती हैं। किन्तु सरमा नामक राक्षसी के द्वारा वास्तविकता को जानक आश्वस्त होती हैं।

माल्यवान् नाम का मन्त्री भी रावण को सीता के सौंपने की सलाह देता है, जिसे रावण नहीं मानता।

युद्ध की स्थिति प्राप्त होने पर विभीषण के मंत्री अनल के द्वारा लंका के व्यूह रचना को जानकर उसी के अनुसार पूर्व द्वार में नील को, दक्षिण में अंगद को पश्चिम में हनूमान् को, मध्यदेश में विभीषण, सुग्रीव तथा जाम्बवान को प्रातियोद्धा के रूप में नियुक्त करके लक्ष्मण के साथ श्रीराम उत्तरी द्वार को जाते हैं।

इस प्रकार भयंकर युद्ध होता है और उस युद्ध में अंकदादि के द्वारा अनेक राक्षस मारे जाते हैं। यद्यपि राम पुनः रावण को समझाने के लिए अंगद को भेजते हैं फिर भी वह अंगद की बात को न मानकर युद्ध को ही अपनाता है। प्रातः काल से लेकर सूर्यास्त तक युद्ध होता था। रात्रि के समय युद्ध नियमों के अनुसार विश्राम होता था। इस युद्ध में अनेक राक्षसों का नाश होता था, फिर भी अपने पराक्रम को प्रदर्शित करते हुए मेघनाद, लक्ष्मण सहित राम को तथा सम्पूर्ण सेना को नागपाश से बाँध लेता है और पुष्पक विमान में सीता को चढ़ाकर राम को दिखलाता है जिससे सीता अत्यन्त दुखित होती हैं किन्तु उसी समय पक्षीराज गरुण आकर अपने प्रहार से सम्पूर्ण नागों को मार डालते हैं और राम, लक्ष्मण सहित सम्पूर्ण सेना को पाश मुक्त करते हैं।

प्रहस्त आदि अनेक बलशाली राक्षसों का वध हो जाता है। इधर अत्यन्त क्रोधित हो रावण, राम की सेना पर आक्रमण कर देता है। उस समय रावण से युद्ध करने लक्ष्मण आते हैं और रावण के शक्ति प्रहार से मूर्च्छित हो जाते हैं। श्रीराम, लक्ष्मण को देखकर रावण को अपने बाण प्रहारों से पराजित करके प्राण बचाकर भागने के लिए विवश कर देते हैं। रावण कुम्भकर्ण को जगाता है जो मतवाले दिग्गजों के समान पहाड़ सादृश्य शरीर को लिए हुए, प्रलय सादृश्य वेग से वानरों पर आक्रमण करता है। वानरगण अनेक प्रकार के शिलाखण्डों, वृक्षों तथा पहाड़ों से उस पर प्रहार करते हैं। किन्तु वे सब उसके शरीर से टकराकर चूर्ण-चूर्ण बन जाते हैं और कुछ तो उसके ार्थों से टकराकर प्रहार करने वाले के विनाश के कारण बनते हैं। उसके उस भयंकर

स्वरूप को देखकर सुग्रीव उसे मारकर आहतकर देते हैं। परन्तु कुम्भकर्ण सुग्रीव को अपने भुजाओं के बीच दबाकर लंका की ओर चल देता है। मूर्च्छित सुग्रीव चेतना प्राप्त करने पर हाथ के पकड़ से बाहर निकलकर उसके गर्दन में बैठकर उसके नाक एवं कान काट डालते हैं। कुम्भकर्ण अपने को कर्णनाशा विहीन समझकर अत्यन्त क्रोधित हो शत्रु सैन्य का संहार करता हुआ श्रीराम के समीप युद्ध के लिए आता है। श्रीराम अनेक अस्त्रों-शस्त्रों का प्रहार करते हैं। परन्तु वे सब व्यर्थ हो जाते हैं, तब ऐन्द्रास्त्र के द्वारा उसके दोनों हाथ एवं सिर काटकर उसका वध करते हैं।

इसके अनन्तर रावण सहोदर, महोदर, महापार्श्व, नरान्तक, देवान्तक, अतिकाय तथा त्रिशिरा को युद्ध करने के लिए भेजता है। उस भयंकर युद्ध में अंगद, हनुमान्, नल, नील तथा लक्ष्मण के साथ युद्ध करते हुए सभी वीर मारे जाते हैं।

श्रेष्ठ योद्धाओं के वध से दुखित रावण को आश्वस्त करते हुए मेघनाद भयंकर युद्ध की इच्छा से राम, लक्ष्मण की सेन की ओर प्रस्थान करता है और अपने मर्मभेदी बाणों के प्रहार से सभी वानर समूह को व्यथित कर देता है। राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, नल, नील, उत्पल आदि समस्त वानरों को अपने बाणों के प्रहार से घायल कर दिया।

तदनन्तर जाम्बवान् के आदेश से हनुमान जी ने संजीवनी आदि दवाओं से भरे पर्वत को लाकर सभी वानर सेना को घाव रहित कर दिया वे सभी पुनः स्वस्थ होकर युद्ध करने के लिए तैयार हो गये।

इधर रावण पराक्रमी वानर सेना का दमन करने के लिए अकम्पन, प्रजंघ, महारथी शोणिताक्ष, कुम्भ, निकुम्भ आदि को भेजता है जो क्रमशः अंगद, द्विविध, मयंद, सुग्रीव तथा हनुमान् के द्वारा युद्ध करते समय मारे जाते हैं। मकराक्ष नामक राक्षस का विनाश राम के द्वारा होता है। इधर मकराक्ष के मारे जाने पर मेघनाद पुनः वानर सेना पर आक्रमण करता है और अपने बाणों की वर्षा से वानर सेना को छिन्न-भिन्न कर देता है। किन्तु रामा को क्रोधित देखकर उनके बाण प्रहारों से भयभीत हो शीघ्र

लंकापुरी में प्रवेश करता है।

इधर इन्द्रजीत मायावी सीता का वधकर हनूमान् आदि को भ्रमित करना चाहता है जिससे वे सत्य समझकर निराश हो इन्द्रजीत से लड़ते हुए अपने पड़ाव में आ जाते हैं। उधर इन्द्रजीत शत्रुओं के वध करने की इच्छा से निकुम्भिला नामक देवी की आराधना में लग जाता है।

हनूमान् जी आकर सीता वध का समाचार श्रीराम को बतलाते हैं जिससे श्रीराम अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। उसी समय विभीषण आकर सीता वध को मायारूप बतलाकर इन्द्रजीत के यज्ञ के विषय में समझाते हैं कि इस आराधना से इन्द्रजीत अजेय हो जायेगा। श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण को आगे करके सम्पूर्ण सेना निकुम्भिला को घेर लेती है और यज्ञ विध्वंस करती है। इन्द्रजीत यज्ञकार्य को बीच में ही छोड़कर भयंकर युद्ध करता है तथा सम्पूर्ण वानरी सेना को अस्त-व्यस्त कर देता है। लक्ष्मण और इन्द्रजीत का भयंकर युद्ध होता है और यह युद्ध तीन दिन तक लगातार चलता है जिसमें ऐन्द्रास्त्र के प्रहार से मेघनाद का वध होता है।

इन्द्रजीत की मृत्यु से शोकाकुल एवं क्रोधित रावण, सीता को मारना चाहता है जिसे मन्त्री लोग रोक देते हैं। तदनन्तर वह सेना से युक्त हो शत्रु सेना पर आक्रमण करता है। रावण के साथ युद्ध करते हुए लक्ष्मण शक्ति के प्रहार से मूर्च्छित हो जाते हैं जो हनूमान् जी द्वारा लायी गयी संजीवनी औषधि से पुनः जीवन प्राप्त करते हैं। उसके अनन्तर राम एवं रावण का भयंकर युद्ध होता है जिस युद्ध में अनेक अस्त्रों का प्रहार होता है। श्रीराम बारम्बार रावण के अनेक बार भुजाओं एवं सिर का छेदन करते हैं किन्तु पुनः उसके नवीन भुजा एवं सिर हो जाते हैं। बहुत दिन इस प्रकार युद्ध करते हुए व्यतीत हो जाते हैं। अन्त में श्रीराम ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके रावण का वध कर दिया जिससे प्रसन्न हो देवों ने श्रीराम के ऊपर पुष्प वृष्टि की।

मृत रावण को बाण शय्या में लेटे हुए देखकर अपने तरकश को तकिया के रूप में देकर भ्रातृप्रेम में दुःखी विभीषण विलाप करता है। इधर मन्दोदरी आदि

रावण की स्त्रियाँ आकर अनेक प्रकार से विलाप करती है। राम को समझाने पर विभीषण अपने शोक को रोककर मन्दोदरी आदि अपनी भौजाइयों को समझाते हैं और रावण का और्ध्वदैहिक कृत्य सम्पादित करते हैं।

श्रीराम विशाद मग्न विभीषण को समझाकर सम्पूर्ण पुण्य तीर्थों के जल से अभिषेक करके लंका के राज सिंहासन में राजा के रूप में विर्भाषण को प्रतिष्ठित करते हैं।

विभीषण सती शिरोमणि सीता को अनेक प्रकार से अलंकृत कर श्रीराम के सामने लाते हैं। सीता यद्यपि पवित्र है तथापि श्रीराम की आज्ञा से अपनी पवित्रता को प्रमाणित करने के लिए अग्नि में प्रवेश करती है और अपने विशुद्धता का प्रमाण देकर श्रीराम की सेवा में उपस्थित होती है। उसी समय ब्रह्मा स्वर्ग लोकगामी महारथी दशरथ को दिखलाते हैं जिन्हें श्रीराम प्रणाम करते हैं।

श्रीराम की आज्ञा से मृत वानरगण इन्द्र के वरदान से पुनः जीवित होते हैं और श्रीराम, सीता, लक्ष्मण को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीराम की अयोध्या जाने की इच्छा को जानकर विभीषण पुष्पक विमान ले आते हैं जिसमें सुग्रीव अंगद आदि वानर श्रेष्ठों तथा विभीषण के साथ अयोध्या को प्रस्थान करते हैं।

पुष्पक विमान में आरूढ़ श्रीराम, सीता को युद्ध स्थान समुद्र तथा सेतुबन्ध को दिखलाते हैं। अत्यन्त वेगयुक्त विमान के होने से बहुत से स्थान श्रीराम नहीं दिखला पाते तथापि ऋष्यमूक पर्वत पम्पासर कबन्ध, खर, मारीच आदे के वध स्थान, अगस्त मुनि का आश्रम, विराध वध स्थान, अत्रि का आश्रम, चित्रकूट एवं भरद्वाज के आश्रम में जाकर आतिथ्य स्वीकार करते हैं और हनूमान् को अयोध्या जाकर सूचित करने के लिए कहते हैं।

इसके अनन्तर पुष्पक विमान अयोध्या पहुँचता है, जहाँ श्रीराम की पादुका लिए भरत उपस्थित होते हैं। भरत का श्रीराम आलिंगन करते हैं और अन्य श्रेष्ठजनों को प्रणाम करते हैं। लक्ष्मण भी भरत आदि को प्रणाम करके भरत श्रीराम को पहले नन्दिग्राम ले जाते हैं। वही पर वे सभी माताओं से मिलकर उन्हें प्रणाम करते हैं। श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी होती है। अनेक वानरगण अभिषेक के लिए समस्त पुण्य तीर्थों से जल ले आते हैं और उस जल से सीता सहित श्रीराम का अभिषेक होता है। श्रीराम राजसिंहासन में आरूढ़ हो और प्रिय भ्राता भरत की अभिलाषा को पूर्ण करते हैं। उस समय लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न चमर धारण किये हुए थे। भरत जी छत्र धारण किये हुए थे। अनेक बहुमूल्य रत्न एवं आभूषणों से सुसज्जित श्रीराम रथ में आरूढ़ हैं। तथा विभीषण सुग्रीव हाथी पर आरूढ़ हो उनके पीछे चल रहे हैं, सम्पूर्ण अयोध्यापुरी नर-नारी परमानन्द से युक्त हैं। इस प्रकार प्रिय बन्धुओं से सेवित श्रीराम अयोध्या का राज्य पद प्राप्त कर यथेष्ट भोग प्राप्त किया और दान तथा पराक्रम से उत्पन्न यश राशि से युवा हो पृथ्वी का अनेक वर्षों से पालन किया।

कथानक का मूल स्रोत-

चम्पू-रामायण को लिखते समय ऐसा प्रतीत होता है कि भोजराज ने बाल्मीकि रामायण को न केवल आत्मसात कर लिया था अपितु उसके एक संक्षेप स्वरूप की सृष्टि अपने मस्तिष्क में की थी।

वाल्मीकि ने राम से सम्बन्धित सम्पूर्ण कथानक का उस आवश्यक-आवश्यक अंश को इस तरह प्रकाशित किया कि उसके सम्पूर्ण पक्ष पाठक एवं श्रोता के समक्ष उपस्थित हो जायें किसी भी ऐसे पात्र की योजना नहीं की जो पूरे घटना क्रम में मूक ही रह जाता हो। इनके सभी पात्र किसी न किसी स्थल पर कथोपकथन से युक्त होते हैं। घटनाओं का विवरण भी न तो इतना विस्तृत है कि पाठक या श्रोता ऊब जाये अर्थात् उसको वह वर्णन नीरस प्रतीत होने लगे, न ही ऐसा संक्षिप्त है कि उसका स्पष्टीकरण ही न हो पाये।

बाल्मीकि रामायण न केवल श्रीराम के चरित्र का अपितु उनसे सम्बद्ध सभी पात्रों का ऐसा अनोखा दर्पण है जिसमें सभी के प्रतिबिम्ब पूर्णतया दृष्टिगोचर होते हैं।

भोज़राज ने अपनी रसाभिषिक्त अलंकार विभूषित ललित शब्द योजनाओं के द्वारा आवश्यक वर्ण्य विषय को प्रकाशित करते हुए केवल राम से अतिशय सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का भी यथासम्भव विशद् वर्णन किया। श्रीराम से अत्यधिक सम्बन्ध न रखने वाले घटनाक्रमों का वर्णन संक्षेप में किया।

वस्तुतः भोजराज का उद्देश्य संक्षेप में सरस एवं अलंकार विभूषित वाणी में राम कथा को प्रेषित करना था। जैसे उन्होंने न तो केवल कविता को अपनाया और न ही गद्यखण्ड को अपितु गद्य पद्योभय चम्पू विधा को अपना कर अपने काव्य कला का अनुपम उदाहरण चम्पू रामायण के रूप में प्रस्तुत किया और उन सभी घटनाओं की योजना अपने इस अनुपम ग्रन्थ में की जिनका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। इस दृष्टि से यह बात पूर्णतया स्वतः सिद्ध हो जाती है कि चम्पू-रामायण का मूल स्त्रोत वाल्मीकि रामायण ही है। इन्होंने न केवल घटनाओं को ही तथैव स्वीकार किया अपितु अन्य भी कई वस्तु विषय उसी रूप में ग्रहण करने का यथासम्भव प्रयत्न किया। बालकाण्ड में जहाँ कौञ्चबध की अवस्था में वाल्मीकि द्वारा कथित 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम् इत्यादि पद्य की अवधारणा अक्षरशः वाल्मीकि की ही है। तथैव अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धा काण्ड तथा सुन्दर काण्ड इन प्रत्येक काण्डों का प्रारम्भ उन्हीं शब्दों से किया गया है, जिन शब्दों से वाल्मीकि रामायण में हुआ है। जिसका सोदाहरण विवरण इस प्रकार है -

वाल्मीकि रामायण	**चम्पू-रामायण**
'गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदानघः । शत्रुघ्नो नित्याशत्रुघ्नो नीतः प्रीतिपुरस्कृतः।।' (अयोध्या काण्ड)	'गच्छता दशरथेन निर्वृतिम् इत्यादि।' (अयोध्या काण्ड)

'प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमाप्तवान्।
रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम्।।'
(अरण्य काण्ड)

'प्रविश्य विपिनं महत्रदुन-
मैथिली वल्लभो' इत्यादि।'
(अरण्य काण्ड)

'सतां पुष्पकरिर्णी गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलम्।
रामः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः।।'
(किष्किन्धा काण्ड)

'सतां सतां बुद्धिमिव प्रसन्नां
पम्पां वियोगज्वरजातकम्पः'।
(किष्किन्धा काण्ड)

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्शनः।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि।।'
(सुन्दर काण्ड)

'ततो हनुमान दशकण्ठनीतां
सीतां विचेतुं पथि चारणानाम्'
(सुन्दर काण्ड)

यद्यपि युद्धकाण्ड का प्रारम्भ के विषय में चम्पू रामायण में पूर्वोक्ति द्ध पद्धति का परिपालन नहीं हुआ। उसमें भिन्न-भिन्न स्वरूप ही प्रारम्भ में प्रस्तुत हुए हैं तथापि उक्त आरोप स्वतः निर्मूल हैं क्योंकि युद्धकाण्ड का प्रणयन भोजराज के द्वारा हुआ ही नहीं। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ सुन्दरकाण्ड तक ही है। जिसमें इन्होंने वाल्मीकि रामायण को ही अपने काव्य का आदर्श मानकर उनके सम्पूर्ण घटना क्रमों के अनुसार ही अपने ग्रन्थ का प्रणयन किया है।

चम्पू-रामायण के अध्ययन से यह पता चलता है कि यद्यपि भोजराज ने-

'वाल्मीकिगीतरघुपुंगवकीर्तिलेशै[1]
स्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्।
गंगाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः
किं तर्पणं न विदधाति नरः पितृणाम्'।।

1- चम्पू-रामायण श्लोक - 4 बालकाण्ड।

इस तरह यज्ञ के उपरान्त पायस वितरण के समय भी पर्याप्त भिन्नता देखी जाती है जहाँ वाल्मीकि रामायण में -

'सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्याभिदमब्रवीत्।[1]
पायसं प्रतिगृहणीष्व पुत्रीयं त्विदमात्मनाः ।।
कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा ।
अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः ।।
कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात् ।
प्रददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम् ।।
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः ।
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक' ।।

अर्थात् राजा दशरथ ने प्रथमतः पायस का आधा भाग कौसल्या को और अवशिष्ट भाग का आधा सुमित्रा को अवशिष्ट अर्धभाग कैकेयी को दिया। इसके बाद जो अवशिष्ट भाग बचा था उसे पुनः सुमित्रा को दे दिया। इस पायस विभाग के अनुसार सम्पूर्ण पायस का आधा भाग कौसल्या को प्राप्त होता है और कैकेयी को सम्पूर्ण पायस का चौथा हिस्सा प्राप्त होता है। परन्तु सुमित्रा को दोनों बार दशरथ के द्वारा सम्पूर्ण पायस का आठवाँ + आठवाँ = 1/4 हिस्सा मिलने पर चौथाई भाग बनता है।

चम्पू-रामायण में पायस वितरण की व्यवस्था इससे सर्वथा भिन्न है। जो इस प्रकार है -

'कौसल्यायै प्रथममदिशद्भूपतिः पायसार्धं[2]
प्रादार्धं प्रणयमधुरं केकयेन्द्रस्य पुत्र्यै ।
एते देव्यौ तरलमनसः पत्युरालोच्य भावं
स्वार्धांशाभ्यां स्वयमकुरूतां पूर्णकामां सुमित्राम्' ।।

1- वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग 16 श्लोक - 26 से 29.

2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक - 23.

अर्थात् राजा सम्पूर्ण पायस का दो भाग करते हैं और एक भाग कौसल्या को तथा दूसरा भाग कैकेयी को देते हैं। वे दोनों पति के अभिप्राय को समझकर अपने-अपने भाग का आधा-आधा भाग सुमित्रा को दे देती है, इस प्रकार चौथाई-चौथाई भाग कौसल्या एवं कैकेयी को प्राप्त होता है और दो चौथाई भाग सुमित्रा को प्राप्त होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त पायस विभाग के दोनों वर्णनों में पर्याप्त भिन्नता दिखाई पड़ती है।

वाल्मीकि रामायण में यज्ञ रक्षा के लिए विश्वामित्र केवल राम की ही याचना करते हैं -

'तथाभूता हि सा चर्या न शापस्तत्र मुच्यते ।[1]
स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम् ।'
काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे द्वातुमर्हसि ।।

किन्तु जब राम को भेजने का प्रश्न उठता है तो दशरथ लक्ष्मण के सहित ही राम को विश्वामित्र के साथ भेजने के लिए बुलाते हैं और उन दोनों को विश्वामित्र को समर्पित करते हैं -

'तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथः स्वयम् ।[2]
प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव सलक्ष्मणम्' ।।

इस घटना में भी परिवर्तन चम्पू-रामायण में प्राप्त होता है। चम्पू-रामायण में विश्वामित्र कहते हैं कि -

---

1- वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग 19 श्लोक - 8.

2- वाल्मीकि रामायण 1/22/1.

'राजन् भवतस्तनयेन विनयाभिरामेण रामेण शरासवनमित्रेण सौमित्रिमात्रपरिजनेन क्रियामाणक्रतुरक्षो रक्षोदुरितमुत्तीर्य कृतावभृथो भवितुमभिलषामीति'।[1]

मुझे धनुषधारी राम को लक्ष्मण के सहित यज्ञ रक्षा के लिए प्रदान करो।

इस प्रकार विश्वामित्र के कहने पर दशरथ जी भी वसिष्ठ द्वारा समझाये जाने के बाद लक्ष्मण के साथ ही श्रीराम को विश्वामित्र के साथ जाने को आदेश देते हैं -

'पर्याप्तिभाग्याय भवानमुष्मै कुर्यात्सपर्यां कुशिकात्मजाय।[2]
निर्यातुधानां वसुधां विधातुं निर्यातुं निर्यातु रामः सह लक्ष्मणेन।

ये पूर्व लिखित तीनों घटनाक्रम जो वाल्मीकि से सर्वथा पृथक है। इस पृथकता का वास्तविक कारण क्या है इस पर विचार करना अत्यावश्यक है क्योंकि अकारण ही भोजराज की प्रवृत्ति घटना परिवर्तन के विषय में नहीं हुई। इससे यह प्रतीत होता है कि वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त भी कहीं न कहीं राम विषयक किसी अन्य संरचना से भी प्रभावित है और इन्होंने उसका अनुसरण करने वाली किसी घटनाओं के रखने का अंशतः प्रयास किया है और उसके परिणाम स्वरूप पूर्वोक्त घटना क्रमों की अवस्थिति बनी है।

राम कथा के रसिक पाठकों के लिए जैसे श्रद्धा एवं भक्ति का आश्रय वाल्मीकि रामायण है उसी प्रकार अध्यात्म रामायण की भी स्थिति श्रद्धास्पद रही है। किसी न किसी दृष्टि से पूर्वोक्त घटनाक्रमों का साम्य अध्यात्म रामायण में दिखलायी देता है जिसका विवेचन इस प्रकार है -

पृथक घटना क्रम जिसमें देवताओं द्वारा विष्णु से निवेदन का है। इसमें वाल्मीकि रामायण में यज्ञ भूमि में ब्रह्मा विष्णु आदि देवता रहते हैं और विष्णु भी

1- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 40.

2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक 34

वहीं आते हैं जिनसे रावण वधार्थ दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म लेने का निवेदन होता है।

चम्पू-रामायण में ब्रह्मा इन्द्रादि देवता यज्ञ भूमि में तो रहते हैं किन्तु विष्णु वहाँ नहीं रहते वे सब मिलकर विष्णु के पास जाते हैं।

अध्यात्म रामायण में भी उपस्थित सभी देवता भगवान् विष्णु के समीप उनसे निवेदन करने के लिए क्षीर सागर में जाते हैं -

'तस्मात्क्षीरसमुद्रतीरमगमद्ब्रह्माथ देवैर्वृतो,[1]
देव्या चाखिललोकहृत्स्थमजरं सर्वज्ञमीशं हरिम् ।
अस्तौषीच्छ्रुतिसिद्धनिर्मलपदैः स्तोत्रैः पुराणोद्भवै -
र्भक्त्या गद्गदया गिरातिविमलैरानन्दवाष्पैर्वृतः' ।।

इससे यह प्रतीत होता है कि चम्पू-रामायण का उक्त घटनाक्रम अध्यात्म रामायण की घटना क्रम से अंशतः प्रभावित है।

द्वितीय परिवर्तन का स्वरूप जो पायस वितरण का है जिसमें पर्याप्त भिन्नता देखी गयी है वहाँ का भी घटना क्रम अध्यात्म रामायण से पूर्णतः प्रभावित है -

'वसिष्ठश्रृष्यशृङ्गाभ्यामनुज्ञातो ददौ हविः ।[2]
कौसल्यायै सकैकेय्यै अधमर्धं प्रयत्नतः ।।
ततः सुमित्रा सम्प्राप्ता जगृहनुः पौत्रिकं चरूम् ।
कौसल्या तु स्वभागार्धं ददौ तस्यै मुदान्विता ।।
कैकेयी च स्वभागार्धं ददौ प्रीतिसमन्विता ।
उपयुज्य चरुं सर्वाः स्त्रियो गर्भसमन्विताः '।।

1- अध्यात्म रामायण द्वितीयोऽध्यायः श्लोक 7.

2- अध्यात्म रामायण तृतीयोऽध्यायः श्लोक 10-11-12.

इस श्लोक के माध्यम से भोजराज ने वाल्मीकि के रामायण के अनुसार ही अपने चम्पू-रामायण की संरचना की यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है तथापि कुछ ऐसे अंश हैं जो वाल्मीकि के द्वारा वर्णित घटना क्रमों से पर्याप्त पृथक हैं। जैसे- वाल्मीकि रामायण में पुत्रेष्टि यज्ञ में आवाहित सभी देवतागण उपस्थित रहते हैं और वे रावण के अत्याचार से अत्यन्त दुखी हो उसके प्रतीकार के विषय में विचार करते हैं। इस देवमण्डली में ब्रह्मा के सहित इन्द्रादि सभी देवता रहते हैं। उनके विचार करते रहने पर उसी समय विष्णु भी उस यज्ञ भूमि में अवाहित होने से उपस्थित होते हैं[1] और उसी समय सभी देवतागण अत्यनत दुखी विष्णु की प्रार्थना करते हुए निवेदन करते हैं कि आप रावण के विनाश के लिए दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण करें।

चम्पू-रामायण में इस घटना में परिवर्तन देखा जाता है। उसमें वाल्मीकि रामायण के अनुसार पुत्रेष्टि यज्ञ में ब्रह्मा सहित इन्द्रादि देवगण उपस्थित दिखलाये गये हैं किन्तु विष्णु की उपस्थिति नहीं है। वे सभी रावण के अत्याचार से पीड़ित हो वहाँ मन्त्रणा करते हैं और इसका समाधान प्राप्त करने की अभिलाषा से ब्रह्मा के सहित विष्णु के समीप क्षीरसागर में जाते हैं जिसका वर्णन इस प्रकार है -

'तदनु हविराहरणाय धरणौ कृतावतरणाः सर्वे गीर्वाणगणाः शतमखप्रभुखाश्चर्तुमुखाय दशमुखप्रतापग्रीष्मोष्मसंप्लोषणमावेद्य तेन सह शरणमिति शार्ङ्गधन्वानं मन्वाना नानाविधप्रस्तुतस्तुतयः क्षीराम्बुराशिमासेदुः ।'[2]

1- एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरूपयातो महाद्युतिः ।
शंखचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ।।
वैनतेयं समास्त्य भास्करस्तायदं यथा । वाल्मीकि रामायण 1/15/16

2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड, पृष्ठ - 15

यहाँ भी राजा दशरथ पायस के दो भाग कर कौसल्या एवं कैकेयी को देते हैं और वे दोनों अपने-अपने भाग का आधा भाग सुमित्रा को देती हैं। इस तरह से यह वर्णन चम्पू-रामायण का सर्वंशतः अध्यात्म रामायण से भी प्रभावित है।

वाल्मीकि रामायण में तथा चम्पू-रामायण में विश्वामित्र के द्वारा केवल राम या लक्ष्मण सहित राम की याचना का प्रश्न है जिसमें दोनों में भिन्नता दिखायी पड़ती है। वह भी वर्णन स्थल सर्वंशतः अध्यात्म रामायण से ही प्रभावित है। वहाँ पर भी विश्वामित्र लक्ष्मण सहित श्रीराम को माँगते हैं और दशरथ भी वसिष्ठ के समझाने के बाद लक्ष्मण के सहित राम को विश्वामित्र को समर्पित करते हैं-

'अतस्तयोर्बधार्थाय ज्येष्ठं रामं प्रयच्छ मे।[1]
लक्ष्मणेन सह भ्राता तव श्रेयो भविष्यति' ।।

× × × × × × × × ×

'आहूय रामरामेति लक्ष्मणेति च सादरम् ।[2]
आलिङ्ग्यमूर्ध्न्यवघ्राय कौशिकाय समर्पयत्' ।।

इस तरह से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि भोजराज के इस अनुपम ग्रन्थ चम्पू-रामायण का मूल स्त्रोत यदि सर्वांशतः वाल्मीकि रामायण है तो अंशतः अध्यात्म रामायण भी इसके स्त्रोत के रूप में माना जा सकता है, क्योंकि पूर्वोक्त उदाहरणों के अतिरिक्त भी कई उदाहरण हैं जहाँ भोजराज अध्यात्मरामायण से प्रभावित दिखते हैं जिनका विस्तार भय से विवेचन न कर उदाहरण स्वरूप में पूर्वोक्त विवरण दिया गया है।

1- अध्यात्म रामायण चतुर्थोऽध्याय, श्लोक 7.

2- अध्यात्म रामायण चतुर्थोऽध्याय, श्लोक 22.

मूलस्रोत की चम्पू-रामायण में मूलअवधारणा -

भोजराज चम्पू-रामायण की संरचना में कथानक का पूर्ण स्वरूप वाल्मीकि का ही ग्रहण किया है जिसका प्रतिपादन पूर्व में किया गया है। वस्तुतः न केवल भोजराज ने अपितु समस्त उत्तरवर्ती राम से सम्बन्धित साहित्य रचनाकारों ने वाल्मीकि रामायण को आधार स्वरूप स्वीकार किया है। भोजराज ने तो वाल्मीकि रामायण का लगभग संक्षेप में पूरे घटनाक्रमों तथैव अपने शब्दों में स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

वाल्मीकि रामायण के घटना क्रमों के विस्तार होने पर भी उसकी मूल अवधारणा का त्याग भोजराज ने नहीं किया। नारद के वाणी को सुनकर मध्याह्न कर्तव्य दैनिक कार्यों के लिए प्रस्थान का वर्णन वाल्मीकि में भी है और उसी का अनुसरण चम्पू-रामायण में भी है। क्रौञ्च वध एवं शाप की घटना की योजना तथैव की गई है। इस तरह जितनी भी घटनाएँ है सभी घटनाओं का समायोजन वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही हुआ। किसी भी ऐसे मुख्य घटनाक्रम का समायोजन नहीं किया गया जो या तो वाल्मीकि रामायण में हो ही न अथवा भिन्न रूप में प्रत्येक घटनाओं का समायोजन अविकल रूप में वाल्मीकि के समान ही करना ग्रन्थकार का मुख्य उद्देश्य रहा। इसलिए यदि यह कहा जाये कि चम्पू-रामायण वाल्मीकि रामायण का संक्षेपीकरण है तो अत्युक्ति नहीं होगी।

चम्पू-रामायण की मौलिकता -

भोजराज काव्य कला के मर्मज्ञ शब्द प्रयोग चतुर भक्त एवं रसिक कवि थे। इन्होंने जहाँ अनेक अलंकार आदि से विभूषित काव्य से भावों की अभिव्यक्ति में सौन्दर्य को बढ़ाया, वहीं अपने मौलिक कल्पना शक्ति से काव्य की अपूर्वता को भी सुरक्षित किया जिससे वाल्मीकि जैसे सम्पूर्ण वृहद् महाकाव्य का अध्येयता भी लघुकाय चम्पू-रामायण को भी उसके प्रस्तुति की नवीनता से प्रभावित हो, उसका अध्ययन करना चाहता है। उसका आनन्द उठाना चाहता है। यदि कवि की अलौकिक चमत्कार

युक्त प्रतिभा का उत्कर्ष है।

यद्यपि भोजराज ने मूल स्त्रोत के रूप में वाल्मीकि का अनुसरण किया तथापि पग-पग में अपनी मौलिकता से सहृदय पाठक को परिचय कराये बिना नहीं रहते।

बालकाण्ड में जिस समय पुत्रेष्टि यज्ञ का कार्य प्रारम्भ था वहाँ वाल्मीकि रामायण एवं चम्पू-रामायण दोनों में देवताओं के आने का उल्लेख है। दोनों विष्णु से अपने कष्टों को दूर करने के लिए निवेदन करना चाहते हैं। किन्तु वाल्मीकि रामायण में विष्णु भी वहीं पहुँचते हैं और देवता वहीं उनसे निवेदन करते हैं। चम्पू-रामायण में भोजराज ने विष्णु के उत्कृष्ट स्वरूप एवं अद्भुतता से परिचय कराने के लिए या उनके प्रति विशेष महत्व को बतलाने के लिए ब्रह्मा के सहित देवताओं को क्षीर सागर जाने की घटना का नवीन वर्णन किया है -

'क्षीराम्भोधेजठरमभितो देहभासा प्रराहैः[1]
कालोन्मीलत्कुवलयदलद्वैतभापादयन्तम्।
आतन्वानं भुजगशयने कामपि क्षौमगौरे
निद्रामुद्रां निखिलजगतीरक्षणे जागरूकाम्'।।

यहाँ पर भोजराज ने विष्णु के विषय में कई श्लोकों का प्रणयन करके दिव्य स्वरूप का वर्णन किया है।[2] साथ ही इस वर्णन के प्रसंग में नरसिंहावतार, वामनावतार आदि का भी वर्णन है। वाल्मीकि रामायण में उक्त प्रसंग की चर्चा भी नहीं है।

चम्पू-रामायण में कौसल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी के गर्भावस्था का सुन्दर वर्णन, कौसल्या के स्वरूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि -

---

1- चम्पू-रामायण बालकाण्ड, श्लोक सं0 14.

2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड, श्लोक सं0 13, 14, 15.

न्यग्रोधपत्रसमतां क्रमशः प्रयाता-[1]

मङ्गीचकार पुनरप्युदरं कृशाङ्गयाः ।

जीवातवे दशमुखोरगपीडितानां

गर्भकछलेन वसता प्रथमेन पुंसा ।।

अर्थात् कौसल्या के कृशमध्य भाग में रावण रूपी सर्प से पीड़ित मनुष्यों के जीवन की रक्षा के लिए अवतार ग्रहण करने के लिए गर्भवास के बहाने से परमात्मा ने वटवृक्ष के पत्र के समता को पुनः प्राप्त कर लिया।

भगवान् प्रलयकाल के समय वट वृक्ष के पत्ते में निवास करते हैं। उसी की समता कवि ने कौसल्या के गर्भावस्था में रहने पर वटपत्र सदृश उदर भाग के होने से उसकी उपमा प्रदान करना कवि की लेखनी का अलौकिक चमत्कार है।

अयोध्याकाण्ड में पिता की आज्ञा का महत्त्व बतलाते हुए श्रीराम ने परशुराम के द्वारा माँ रेणुका के सिर काटने का, महर्षि कण्डु द्वारा गोहत्या का, पुरु द्वारा पिता ययाति के जरावस्था लेने के इस प्रकार तीन दृष्टान्त बतलाया है।

किन्तु वाल्मीकि रामायण में मात्र पूर्व दो दृष्टान्तों की चर्चा है तीसरे की नहीं। इसमें भी द्वितीय दृष्टान्त का कथन राम ने कौसल्या से किया है न कि लक्ष्मण के प्रति। यह कथन कवि की मौलिकता का एवं नवीनता का अनुपम उदाहरण है।

दशरथ की मृत्यु होने के बाद जब उनका अन्तिम संस्कार करने का समय आता है तो गुरू वसिष्ठ की आज्ञा से भरत उनका सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक कृत्य करते हैं। साथ ही भरत के विलाप का भी वर्णन हुआ है जबकि चम्पू रामायण में कौसल्या सती होनाा चाहती है और जिन्हें रोकने के लिए भरत सैकड़ों सपथों का कथन करते हैं,

---

1- चम्पू-रामायण बालकाण्ड, श्लोक सं0 27.

तब कहीं जा करके कौसल्या अपने चिता प्रवेश कार्य से निवृत्त होती हैं। यह भी कथानक वाल्मीकि रामायण से नवीन ही है।

आरण्य काण्ड में खरदूषण आदि के वध के पश्चात् जब शूर्पणखा रावण के पास जाती हैं तब चम्पू रामायण के अनुसार आठ राक्षस वीरों को रावण के द्वारा दण्डकारण्य भेजने का उल्लेख हुआ है जबकि वाल्मीकि रामायण में इसकी कोई चर्चा नहीं है।

इसी प्रकार सुन्दर काण्ड में हनूमान् के द्वारा सात मन्त्री पुत्रों के मारे जाने पर रावण पहले विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रहस्त और भासकर्ण, नामक पाँच सेनापति युद्ध के लिए रावण द्वारा भेजे जाते हैं। हनूमान् उन सभी का वध करके बाद में रावण के द्वारा प्रेषित रावण पुत्र अक्षय कुमार का वध करते हैं। इन्द्रजीत और हनूमान् के युद्धावस्था में ब्रह्मपाश से हनूमान् को बाँध करके इन्द्रजीत राजसभा में ले जाते हैं।

वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग में पाँच सेनापतियों के भेजने का तथा उनके मारे जाने का उल्लेख है आठ का उल्लेख न होने से यह वर्णन कवि का स्वतः कल्पना प्रसूत होने से नवीन ही कहा जा सकता है।

चम्पू-रामायण में जब रावण से यह प्रश्न किया जाता है कि वह सीता को बलात् अंकशायनी क्यों नहीं बनाता तो इस प्रसंग में वहाँ पर तीन शापों का उल्लेख हुआ है।

नल कूबर के उद्देश्य से जाती हुई रम्भा के साथ बलात्कार करने पर नल कूबर के द्वारा दिया गया सिर के सौ टुकड़े होने का शाप, रावण के द्वारा कैलास के उठाने पर नन्दीश्वर के द्वारा वानरों द्वारा वंश के नाश का शाप, पुञ्जिकस्थला नाम की अप्सरा जो ब्रह्म लोक जा रही थी, उसके साथ बलात्कार करने पर सिर के सौ टुकड़े हो जाने के शाप का उल्लेख हुआ है। इन तीनों शापों में केवल ब्रह्मा द्वारा दिया गया शाप का ही वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है। नन्दीश्वर एवं नल कूबर

द्वारा दिये गये शाप का वर्णन भोजराज की मौलिकता है।

इस प्रकार कई घटनाओं की उपस्थिति तथा वर्णन शैली वाल्मीकि से पृथक मौलिक कृति के रूप में भी चम्पू रामायण की स्थिति बनती है जिससे ये अपनी मौलिकता को अक्षुण्य रखते हुए सहृदय रसिक पाठकों का मनोरंजन करने में पूर्ण समर्थ होते हैं।

चतुर्थ अध्याय

कथानक का औचित्य

शास्त्रों में काव्य के प्रत्येक अंगों पर विशिष्ट विचार प्रस्तुत हुए हैं जहां उनके अभ्यन्तर स्वरूप में रसों का विचार हुआ है। वहीं प्रत्येक वाक्य संरचना में भी छन्द एवं अलंकार की योजना का बृहद् विचार प्राप्त होता है। वाक्यों में तथा कथानक की घटनाओं में रस परिपाक की दृष्टि से यदि वाक्यों तथा घटनाओं का समुचित संघटना न की गई हो, तो उसे उचित नहीं माना जाता इसीलिए दोषों के लक्षण में रस के अपकर्षक तत्वों को ही दोष कहा गया है।

प्रत्येक पदों, वक्यों एवं घटनाओं की उस स्थल पर अनिवार्यता ही उसका औचित्य है। इसीलिए औचित्य को रससिद्ध सहृदय आचार्यगण काव्य का प्राण भी स्वीकार करते हैं -

'औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्'[1]।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य के लिए अनिवार्य माना है। वे औचित्य की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि -

'उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किलयस्य तत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते'[2]।।

तात्पर्य यह हुआ कि जो वस्तु जिसके अनुरूप होती है उसे हम उचित कहते हैं। अर्थात् प्रत्येक वस्तु का प्रत्येक वस्तु के साथ अनुकूल सम्बन्ध नहीं बन सकता किसी विशिष्ट वस्तु से उनकी अनुकूलता बनती है। इसलिए उस वस्तु विशेष के लिए अनुकूल वस्तु विशेष ही आवश्यक एवं उचित कहा जाता है और उसी उचित का भाव ही औचित्य कहलाता है।

1- औचित्य विचार चर्चा क्षेमेन्द्र - 5.

2- औचित्य विचार चर्चा क्षेमेन्द्र कारिका - 5.

कथानक में घटनाओं की जो योजना होती है उसमें मुख्य कथानक के साथ अनेक अवान्तर कथानकों की भी (प्रकरी, पताका) योजना होती है। साथ ही तत्-तत् प्रसंग के अनुसार पदों, वाक्यों एवं तद्नुसार वर्णनों की संरचना होती है। यदि कहीं भी विपरीत स्थिति होती है तो उसका औचित्य भंग होता है। इसलिए औचित्य का विचार सभी जगह अत्यन्त आवश्यक होता है।

चम्पूरामायण का कथानक एवं घटना वाल्मीकि रामायण की मूल कथानक से पूर्णतया प्रभावित है। इसलिए वाल्मीकि रामायण के घटना क्रम तथा तदनुसार चम्पूरामायण की घटनाक्रमों का क्रमशः उल्लेख आवश्यक होने से प्रथमत. इन दोनों की घटना क्रमों का विवेचना इस प्रकार है -

वाल्मीकि रामायण की मुख्य कथा संरचना

बालकाण्ड -

वाल्मीकि रामायण प्राचीन मान्यता के अनुसार उत्तर काण्ड के साथ में लेने पर सात काण्डों में नवी समालोचकों के अनुसार युद्ध काण्ड तक मात्र छः काण्डों में विभक्त माना जाता है जिसमें रामकथा की मूलकथा के (मूलरामायण) विवेचन से लेकर सम्पूर्ण राम एवं उनसे सम्बन्धित पात्रों का प्रसंगानुसार वृहद् एवं संक्षेप में वर्णन तथा श्रीराम के परम धाम गमन तक की कथा का वर्णन है।

बालकाण्ड में सर्वप्रथम नारद वाल्मीकि संवाद में वाल्मीकि के पूछने पर संक्षेप में सम्पूर्ण राम कथा का वर्णन नारद करते हैं जिसके सुनने के बाद वाल्मीकि स्नानार्थ तमसा नदी की ओ जाते हैं। मार्ग में क्रौञ्च वध की घटा से उद्वेलित होने पर स्वभावतः 'मा निषाद' यह श्लोक अचानक प्रस्फुटित होता है और उस श्लोक की उत्पत्ति से उन्हें भी आश्चर्य होता है। तभी ब्रह्ममी आकर राम कथा को एक काव्यमय स्वरूप देने के लिए उन्हें प्रेरित करते हैं जिसकी संरचना कर वाल्मीकि लव कुश को अपना काव्य पढ़ाकर राम के सम्मुख सुनाने की आज्ञा देते हैं। वे दोनों अयोध्यापुरी में आकर श्रीराम से समादृत हो उनके सामने उस सुन्दर रामायण की कथा का गान करते हैं जिसमें दशरथ द्वारा पालित अयोध्यापुरी का, नागरिकों के उत्तम स्थिति का, राजमन्त्री

या पुरोहितों की गुण नीति का, वर्णन करते हुए दशरथ द्वारा अश्वमेध यज्ञ का, जिसमें सुमन्त्र द्वारा श्रृंगी ऋषि को बुलाने की सलाह दी जाती है जिसका वर्णन इस प्रकार है - ऋर्षि श्रृंगी के अंगदेश में जाने शान्ता से विवाह करने के बाद उनके द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ का सम्पादन और उसमें आहूत देवताओं को विष्णु से अवतार की प्रार्थना, उनका देवताओं को आश्वासन देने की कथा वर्णित है। यज्ञ में अग्नि देव प्रकट हो दशरथ को पायस प्रदान करते हैं। जिसे वे अपनी पत्नियों को बॉंट देते हैं। इधर देवता भी अपने को अप्सराओं एवं गन्धर्वियों के माध्यम से वानर आदि के रूप में उत्पन्न करते हैं। राम, भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न के जन्म संस्कार आदि का वर्णन के बाद विश्वामित्र के द्वारा राम लक्ष्मण की याचना, राम का लक्ष्मण के सहित विश्वामित्र के साथ जाने की, बला अतिबला विद्या की प्राप्ति की कथा है। गंगा एवं सरयू के संगम पर विश्वामित्र जी काम दहन, मलद करुष एवं ताटका वन की कथा को बतलाते हुए ताटका वध के लिए राम को प्रेरित करते हैं और उनके पूछने पर ताटका के विषय में उन्हें बतलाते हैं। श्रीराम ताटका का वध करके विश्वामित्र द्वारा अनेक अस्त्रों को भी प्राप्त करते हैं और सिद्धाश्रम पर निवास करते हैं, वहीं अनेक कथायें तथा यज्ञों का आयोजन होता है जिसमें यज्ञ विश्वंस के लिए आये हुए मारीच एवं सुबाहु का निवारण किया जाता है। यज्ञ कार्य से निवृत्त होने पर सभी जनकपुर के लिए प्रस्थान करते हैं, जहॉं मार्ग में विश्वामित्र अपने वंश परम्परा को बताते हैं। उसी में गंगा का स्वर्गारोहण पार्वती विवाह कार्तिकेय जन्म की कथा है। गंगावतरण के प्रसंग में सगर पुत्रों के विवेचन से लेकर भगीरथ द्वारा गंगा को ले आने का तथा सगर पुत्रों के उद्धार की कथा है। उसी अवसर पर विश्वामित्र जी पाषाणभूत अहल्या को दिखाते हुए गौतम द्वारा उसके शाप की कथा को बतलाते हैं। अहल्या के उद्धार की आज्ञा देते हैं। उसके बाद विश्वामित्र राम लक्ष्मण सहित जनकपुर जाते हैं, जहॉं जनक उनका स्वागत करते हैं, वहीं पर शतानन्द जी विश्वामित्र के क्षत्रिय राजा से ब्रह्मर्षि बनने तक की पूरी कथा श्रीरामजी को बताते हैं।

जनक विश्वामित्र से धनुष प्राप्ति एवं सीता के जन्म की कथा बतलाकर सीता विवाह विषयक प्रतिज्ञा को प्रकट करते हैं। धनुष भंग के प्रसंग में आगत वीर राजाओं के असफल होने पर गुरू की आज्ञा से श्रीराम शिवधनुष को तोड़ते हैं और राजा

जनक महाराज दशरथ को बुलाकर वसिष्ठ के द्वारा दशरथ वंश वर्णन के पश्चात् चारों भाइयों का विवाह सम्पन्न होता है। विश्वामित्र उत्तरी पर्वतों की ओर चले जाते हैं। पुत्रों एवं पुत्रवधुओं के साथ दशरथ के अयोध्या प्रत्यावर्तन के समय कुछ अपशकुन होते हैं। उसी समय परशुराम जी आते हैं जहाँ परशुराम से निर्देशित विष्णु के धनुष में प्रत्यञ्चा चढ़ाने पर परशुराम जी श्रीराम की प्रशंसा कर चले जाते हैं और दशरथ भी अयोध्या पहुँचकर अपना उत्सव मनाते हैं। कुछ काल के पश्चात् भरत एवं शत्रुघ्न अपने ननिहाल को जाते हैं।

अयोध्या काण्ड -

अयोध्या काण्ड का प्रारम्भ राम की लोक प्रियता वर्णन एवं राज्याभिषेक की तैयारी से प्रारम्भ होता है। उसी समय मन्थरा कैकेयी को प्रेरित कर भरत को राज्य एवं राम के लिए वनवास से सम्बन्धित दो वर माँगने के लिए कहती है। कैकेयी राजा दशरथ से उक्त दोनों वर माँगती हैं। उनके समझाने पर भी वह अपना दुराग्रह नहीं छोड़ती। न चाहते हुए भी दशरथ स्वीकृति प्रदान करते हैं। दशरथ के बुलाने पर श्रीराम उनके पास आते हैं। शोकाकुल पिता को देखकर चिन्तित राम को कैकेयी सम्पूर्ण समाचार सुनाती हैं। लौटकर श्रीराम कौसल्या से मिलते हैं जहाँ कौसल्या तथा लक्ष्मण वन गमन के सम्बन्ध में विरोध प्रकट करते हैं। किन्तु श्रीराम उन्हें समझाकर शान्त कर देते हैं। कौसल्या से विदा एवं आशीर्वाद लेकर सीता से मिलते हैं, जो स्वयं वन जाने को उद्यत हैं। उनको वन की विपत्ति दिखाकर समझाते हैं, किन्तु न मानने पर साथ चलने की स्वीकृत देते हैं। इसी तरह लक्ष्मण को भी साथ लेना पड़ता है। सीता राम एवं लक्ष्मण अपनी निजी सम्पत्ति को दान करके दशरथ से मिल वन को प्रस्थान करते हैं। सुमन्त्र कैकेयी की भर्त्सना करते हैं और दशरथ राम के साथ सेना भेजना चाहते हैं, साथ ही अनेक उपभोगों की वस्तुएं तथा सेवकों को भेजना चाहते हैं, जिन्हें श्रीराम अस्वीकार कर देते हैं। दशरथ के द्वारा भर्त्सना करने पर भी श्रीराम को कैकेयी वल्कल वस्त्र देती हैं जिसे धारणकर सुमन्त्र द्वारा लाये हुए रथ पर सवार हो वन के लिए प्रस्थान करते हैं। दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं। कौसल्या विलाप

करती हैं, सुमित्रा उन्हें संत्वना देती हैं। अयोध्यावासी रथ के साथ-साथ चलने लगते हैं। रात्रि में तमसा के तट पर निवास करते समय सबके सो जाने पर राम के निर्देश से सुमन्त्र राम आदि को लेकर आगे की ओर प्रस्थान करते हैं और नगरवासी जागने पर विलाप करते हुए अयोध्या लौट जाते हैं। राम का मित्र निषादराज गुह विवेदश्रुति और गोमती नदी के पार मिलता है। वहीं लक्ष्मण और गुह की वार्ता करते हुए रात्रि व्यतीत होती है। प्रातः श्रीराम सुमन्त्र को विदा करके नौका से गंगा पार करते हैं। उस समय राम खिन्न होते हैं लक्ष्मण उन्हें सान्त्वना प्रदान करते हैं। आगे चलने पर प्रयाग में भरद्वाज आश्रम में जाते हैं और उनके परामर्शानुसार यमुना को पार करके चित्रकूट जाते हैं। वाल्मीकि से मिलने के बाद लक्ष्मण द्वारा निर्मित पर्णशाला में तीनों निवास करते हैं।

इधर सुमन्त्र के खाली अयोध्या लौटने पर दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं। सुमन्त्र कौसल्या को समझाते हैं। कौसल्या के मर्म कथन से दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं। पुनः प्रकृतिस्थ होने पर अन्धमुनि के पुत्र श्रवण की कथा कहते हैं। उसी समय पुत्र मोह में दशरथ की मृत्यु हो जाती है। वसिष्ठ द्वारा प्रेषित सेवक भरत को बुला लाते हैं। उनके अयोध्या आगमन पर प्रसन्न हो कैकेयी राज्यग्रहण का अनुरोध करती हैं। किन्तु भरत उसकी भर्त्सना कर मन्त्रियों के सम्मुख राज्यपद को अस्वीकार कर देते हैं। कौसल्या उन्हें निरापराध मानती हैं। भरत पिता की अन्त्येष्टि करते हैं तथा अत्यन्त दुखी होते हैं। उसी समय आयी हुई मन्थरा को शुत्रुघ्न प्रताड़ित करते हैं जिसे भरत छुड़ा देते हैं।

सभी के कहने पर भी राज्य को अस्वीकार कर भरत श्रीराम को मनाने के लिए प्रस्थान करते हैं जहाँ श्रृंगवेरपुर में उनके पहुँचने पर निषादराज गुह मिलते हैं जहाँ वे श्रीराम के शयन स्थल आदि को दिखलाते हैं। गंगा पार करने के पश्चात् प्रयाग में सेना के सहित भरत का भरद्वाज आतिथ्य सत्कार करते हैं। चित्रकूट के समीप पहुँचकर भरत सेना को रोकते हैं। सेना को निकटस्थ देखकर भरत के प्रति संदिग्ध लक्ष्मण के आक्रोशित होने पर राम उन्हें समझाते हैं। शत्रुघ्न के सहित भरत श्रीराम के पास जाकर उनसे मिलते हैं तथा श्रीराम उनका कुशल प्रश्न पूछते हैं। भरत

द्वारा दशरथ मरण को जान राम अत्यन्त दुखी होते हैं और उनके लिए जलाञ्जलि प्रदान करते हैं। माताओं गुरुओं के सहित भरत के श्रीराम से राजय ग्रहण का अनुरोध को श्रीराम अस्वीकार कर देते हैं और पिता की आज्ञा के परिपालन में जोर देते हुए वनावधि के पश्चात् राज्य ग्रहण के अनुरोध को स्वीकार कर लेते हैं और श्रीराम की पादुकायें लेकर सभी के साथ अयोध्या जाकर भरत राज्य सिंहासन पर पादुकाओं को स्थापित करके नन्दिग्राम में जाकर निवास करते हैं। ऋषियों वृद्ध कलपतियों के द्वारा तथा अन्य मुनियों के द्वारा चित्रकूट का त्याग करके अन्य आश्रम में राक्षसों के उपद्रव के भय से बसने के आग्रह को राम अस्वीकार कर देते हैं। तदान्नतर सीता एवं लक्ष्मण के सहित वहाँ से अत्रि मुनि के आश्रम आते हैं। सीता अनुसुइया से सुन्दर वार्ता होती है। अनुसुइया अनेक वस्त्राभूषणों से उनका सत्कार करती हैं और सीता अपना इतिवृत्त सुनाती हैं और इसके साथ ही वे सब वहाँ से प्रस्थान करते हैं।

आरण्य काण्ड -

सीता एवं लक्ष्मण के सहित श्रीराम के दण्डकारण्य में प्रवेश कर वहाँ के ऋषि उनका स्वागत करते हैं तथा वहीं विराध का वध करते हैं। राम को देख इन्द्र का आश्रम से प्रस्थान सरभंग का राम को सुतीक्ष्ण के आश्रम भेजने की कथा है। ऋषियों को राक्षसों के नाश की प्रतिज्ञा करके श्रीराम सुतीक्ष्ण के आश्रम में रात्रि निवास करते हैं। तदान्नतर वहाँ से प्रस्थान करते हैं। सीता द्वारा अहिंसा के आग्रह करने पर श्रीराम राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा का उल्लेख करते हैं। पंचाप्सर सरोवर में आकर उसके चारों ओर स्थित आश्रमों में दस वर्ष तक निवास करते हैं। सुतीक्ष्ण से अग के आश्रम का मार्ग पूछते हैं और उसी के अनुसार आश्रम की ओर प्रस्थान करते हुए उनके प्रभाव का वर्णन करते समय इलवल और वातापि की कथा बतलाते हैं। अगस्त्य इनका स्वागत करके अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्रों को प्रदान करते हैं। श्रीराम वहाँ से चलकर गोदावरी के तट पर स्थित पंचवटी की ओर प्रस्थान करते हैं।

दशरथ के मित्र जटायु से मिलकर लक्ष्मण द्वारा निर्मित पर्णकुटी में निवास करते हैं। लक्ष्मण के आक्रोशित होने पर उन्हें समझाकर भरत के गुणों को बतलाते हैं।

इनके रूप को देखकर रावण की बहन शूर्पणखा उपस्थित हो प्रणय निवेदन करती है। जहाँ दोनों से प्रत्याख्यात (नकारा जाना) होने पर सीता की ओर आक्रमण करते हुए उसके नाक-कान को लक्ष्मण काट डालते हैं। इससे वह क्रुद्ध हो अपने भाई खर के पास जाती है तो चौदह हजार सेना के लेकर खर श्रीराम पर आक्रमण करताा है। उस अवस्था में लक्ष्मण को सीता को लेकर गुफा में जाने की आज्ञा देकर श्रीमरा सम्पूर्ण सेना सहित खर-दूषण एवं त्रिशिरा का वध कर डालते हैं। अकम्पन खर आदि के वध का समाचार रावण को देकर सीता हरण के लिए प्रोत्साहित करता है। शूपर्णखा लंका जाकर रावण की निन्दा करते हुए सीता के सौन्दर्य का वर्णन करती है, रावण सीता हरण का निश्चय करके मारीच के सामने जाकर उसे बताता है। यद्यपि मारीच उसे समझानाा चाहता है, किन्तु उसके (रावण के) क्रुद्ध होने पर वह उसके साथ चलकर स्वर्ण मृग का वेश बनाकर सीता के सामने प्रकट होता है। उसे देखकर सीता श्रीराम से उसे ले आने का आग्रह करती है। लक्ष्मण को सौंपकर श्रीराम मृग के पीछे जाकर उसका वध करते हैं। किन्तु वह मायावी मरते समय राम की आवाज में हे सीता! हे लक्ष्मण! यह शब्द कहता है जिससे वान्जित हो सीता लक्ष्मण को हठात् भेजती है। इधर सर्वप्रथम सन्यासी के वेश मे रावण आकर अपनी महत्ता प्रकट करके सीता का बल पूर्वक अपहरण करके रथ में बैठाकर चल देता है। सीता के करुणापूर्ण विलाप से उद्विग्न जटायु उससे युद्ध कर आहत हो जाता है। आकाश मार्ग से जाते समय सीता ऋष्यमूक पर्वत पर पाँच बन्दरों को देखकर कुछ आभूषण वस्तु गिरा देती हैं। रावण सीता को अशोक वाटिका में राक्षसियों के बीच स्थापित करके, उसी समय देवराज इन्द्र सीता के लिए दिव्य हवि प्रदान करते हैं।

इधर मारीच वध के पश्चात् लौटते समय लक्ष्मण को देखकर शंकाकुल श्रीराम लक्ष्मण को दोष देते हैं। पर्णकुटी को शून्य देख सर्वत्र सीता खोजते हुए अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं। सीता को खोजते हुए आगे चलने पर जटायु के साथ युद्ध के चिन्ह दिखाई देते हैं। विकल राम को लक्ष्मण सान्त्वना प्रदान करते हैं। मार्ग में जटायु रावण द्वारा सीता हरण का तथा दक्षिण को प्रस्थान करने का समाचार देकर अपने प्राण त्याग देता है। उसी समय लक्ष्मण अयोमुखी को भी विरूप करते हैं।

राक्षस कबन्ध के वध एवं उसके शाप की कथा के बाद उसे चिता में प्रज्ज्वलित कर राम और लक्ष्मण उसका अन्तिम संस्कार करते हैं और वहीं इन्हें सुग्रीव के पास जाने का परामर्श देता है। पम्पासर के निकट शबरी के आश्रम में जाकर उसका आतिथ्य स्वीकार करते हैं। शबरी के स्वर्गारोहण के पश्चात् पम्पासर एवं श्रीराम के विलाप का वर्णन हुआ है।

किष्किन्धा काण्ड -

पम्पासर को देखकर श्रीराम कुछ दुखी होते हैं। आगे चलने पर उन्हें देख सशंकित सुग्रीव हनूमान् को श्रीराम के पास भेजता है। हनूमान् श्रीराम को लेकर न केवल सुग्रीव से मिलाते हैं, अपितु उन दोनों की मित्रता भी कराते हैं। श्रीराम तथा सुग्रीव अपनी-अपनी कथा बतलाते हैं तथा दोनों एक दूसरे की सहायता का वचन देते हैं। सुग्रीव सीता के आभूषणों को दिखलाते हैं जिन्हें देखकर श्रीराम शोकमग्न हो जाते हैं। सुग्रीव पुनः उन्हें सहायता का वचन देते हैं।

सुग्रीव बालि के अत्यन्त शक्तिशाली स्वरूप का वर्णन करके अपने विश्वास के लिए दुन्दुभी अस्थि कंकाल को फेंके जाने, सात ताड़ के वृक्षों को एक बाण से एक साथ भेदने का वर्णन है। राम के कहने पर सुग्रीव बालि से प्रथम युद्ध करता है जहाँ उससे प्रताड़ित हो ऋष्यमूक पर्वत लौट जाता है। श्रीराम से पुनः प्रेरित हो सुग्रीव बालि से द्वन्द्व युद्ध के लिए जाता है। बालि तारा द्वारा रोके जाने पर भी सुग्रीव से युद्ध करते समय श्रीराम के बाण से मारा जाता है। इन्द्र के माला के प्रभाव से जीवित बालि श्रीराम की निन्दा करता है। किन्तु श्रीराम उसका उचित उत्तर देते हैं। बालि वध को सुन तारा विलाप करती है। हनूमान् तारा को समझाते हैं, बालि अंगद का हाथ सुग्रीव को देकर तथा इन्द्र माला को देकर प्राण त्यागता है। सभी वानर एवं तारा विलाप करते हैं। सुग्रीव भी पश्चाताप एवं विलाप करता है। श्रीराम सबको सान्त्वना प्रदान करते हैं। सुग्रीव के राज्याभिषेक के बाद वर्षा ऋतु में प्रस्त्रवण पर्वत पर श्रीराम लक्ष्मण के सहित एक गुफा में निवास करते हैं। वर्षा के पश्चात् शरद् ऋतु में उदासीन सुग्रीव को देखकर श्रीराम लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजते हैं, लक्ष्मण को क्रोधित देख

तारा उन्हें समझाती है। सुग्रीव के आने पर लक्ष्मण उनकी भर्त्सना करते हैं। सुग्रीव क्षमा माँगते हैं तथा सेना के सहित राम के पास पहुँचकर सम्पूर्ण सेना के चार भाग कर चारों दिशाओं में भेजते हैं। हनूमान् को विश्वास पात्र समझ उन्हें दक्षिण दिशा में भेजा जाता है तथा राम उन्हें अँगूठी अभिज्ञान के रूप में देते हैं। सभी वानर अपनी-अपनी दिशाओं में खोजकर निराश हो लौट आते हैं, किन्तु हनूमान् और उनके साथी विन्ध्यादि पर्वतों में व्यर्थ खोजते हुए एक कन्दरा में प्रवेश करते हैं। वहाँ स्वयंप्रभा सबका सत्कार करती है और तप के प्रभाव से आँख बन्द कराकर गुफा के बाहर समुद्र तट के समीप पहुँचा देती है। सीता का पता न मिलने से अंगद आदि सभी दुखी एवं निराश होते हैं। उसी समय प्रसंगतः अंगद द्वारा जटायु का उल्लेख करने पर उसका भाई सम्पाती आता है। उससे वृतान्त पूछते हैं और लंका की स्थिति के विषय में बतलाता है जिसमें अपने पुत्र सुपार्श्व द्वारा रावण को सीता ले जाने का उल्लेख है। उसी समय चन्द्रमा ऋषि के अनुसार सम्पाती के जले हुए पंख उग आते हैं। सागर तट पर अंगद आदि को निराश देखकर जाम्बवान् हनूमान् के सामर्थ्य का वर्णन करते हुए उन्हें प्रोत्साहित करते हैं और हनूमान् महेन्द्र पर्वत पर चढ़कर सागर को पार करने के लिए उद्वत होते हैं।

सुन्दर काण्ड -

हनूमान् जी समुद्र लाँघते समय आये हुए मैनाक के आग्रह को सम्मानित कर, बुद्धि बल से सुरसा से विजय प्राप्त कर, छाया ग्राही सिंहिका का वध करके बिडाल के आकार में लंका में प्रवेश करते हैं। प्रवेश के समय लंका देवी रोकती है जिसे परास्त करके सम्पूर्ण नगर में महलों विमानों एवं शयनागारों में जाकर सीता के खोजते हैं। न मिलने पर हताश हो अशोक वन में जाने पर राक्षसों से घिरी हुई शिंशपा वृक्ष के नीचे सीता को देखते हैं। उसी समय रावण अर्द्ध रात्रि के समय सीता से प्रणय निवेदनार्थ आता है जहाँ सीता उसकी भर्त्सना करती हैं। रावण सीता को भय दिखाकर अनुकूल होने की दो महीने की अवधि देता है तथा उसे अनुकूल करने के लिए रावण अनेक राक्षसियों की नियुक्ति करता है। सीता राक्षसियों के कथन के अस्वीकार कर

विलाप करने लगती हैं। उसी समय त्रिजटा राक्षसों के पराजय के सूचक अपने स्वप्न को बतलाती है तथा राक्षसियों को निवृत्त करती है। सीता विलाप करते हुए जब प्राण त्यागने के लिए उद्धत होती हैं तो शुभ शकुन हेता है। हनूमान् रामकथा का वर्णन करते हैं, जिसे सुन सीता के भयभीत होने पर प्रकट होते हैं तथा सीता के अपने प्रति सन्देह का समाधान करते हैं। सीता के विश्वस्त होने पर हनूमान् श्रीराम की मुद्रिका तथा समाचार देते हैं। उनके पीठ पर चढ़ाकर ले चलने के प्रस्ताव को सीता अस्वीकार कर देती है और श्रीराम के लिए अभिज्ञानस्वरूप काक वृत्तान्त कथा और चूड़ामणि देती हैं। हनूमान् उन्हें आश्वासन देकर. विदा लेते हैं और स्वयं अशोक वन चैत्य प्रासाद का ध्वंस करके राक्षसों का वध करते हैं। प्रहस्त पुत्र जम्बुमाली तथा कुमार अक्षय का वध करके इन्द्रजीत का मान मर्दन करते हैं। किन्तु इन्द्रजीत दिव्यास्त्रों के बन्धन में हनूमान् को बाँधकर रावण के समक्ष प्रस्तुत करता है। हनूमान् राम को सीता सौंपने का आग्रह करते हैं। रावण के हनूमान् वध के लिए उद्यत होने पर विभीषण के समझाने पर दण्डस्वरूप हनूमान् की पूँछ में आग लगाई जाती है जिससे हनूमान् सम्पूर्ण लंका का दहन करते हैं। सीता के रक्षा के विषय में चिन्तित हनूमान् को चारणों की बात-चीत से सीता की सुरक्षा का ज्ञान होता है। आकाशमार्ग से चलकर हनूमान् अंगदादि के समीप पहुँचते हैं तथा सम्पूर्ण समाचार सुनाते हैं। यद्यपि अंगद उसी समय सीता मुक्ति का प्रस्ताव करते हैं जिसे जाम्बवान् अस्वीकार कर देते हैं।

सभी किष्किन्धा पहुँचकर मधुबन में फलों को खाकर मधुपान करते हैं तथा वन रक्षकों को प्रताड़ित करते हैं। अन्त में सभी श्रीराम के पास पहुँचते हैं जहाँ हनूमान् सीता का समाचार सुनाकर अभिज्ञान चूड़ामणि देते हैं तथा काक वृत्तान्त को बतलाते हैं। श्रीराम विलाप करने लगते हैं। हनूमान् जी अपनी पूरी कथा श्रीराम को सुनाते हैं।

युद्ध काण्ड -

सुग्रीव राम एवं लक्ष्मण के साथ सम्पूर्ण सेना को लेकर समुद्र की ओर प्रस्थान करते हैं जहाँ बाधा स्वरूप समुद्र को विचार कर निराश श्रीराम को सुग्रीव सेतुबन्ध का प्रस्ताव रखते हैं। हनूमान् लंका का वर्णन करते हैं। विरहाकुल श्रीराम समुद्र के समीप पहुँचते हैं।

इधर लंका में सभासद रावण को विजय का आश्वासन देते हैं। यद्यपि विभीषण रावण को सीता लौटा देने की सलाह देता है। दूसरे दिन चेतावनी भी देता है। इधर कुम्भकर्ण जागकर रावण को सीताहरण के विषय में दोष देता है, परन्तु सहायता की प्रतिज्ञा भी करता है। यहीं पर हठात् सीता के न वरण करने का कारण पुञ्जिकस्थला के कारण ब्रह्मा के शाप का उल्लेख करता है। इन्द्रजीत तथा रावण से अपमानित विभीषण श्रीराम के पास जाता है। जहाँ सुग्रीव के विरोध करने पर भी हनूमान् के आग्रह से विभीषण राम के शरण में आता है। राम उसे लंका के राज्य का अभिषेक करते हैं। समुद्रतरण हेतु विभीषण प्रायोपवेशन की सलाह देता है। इधर शार्दूल द्वारा राम सेना के आगमन की रावण को सूचना मिलने पर वह शुक गुप्तचरी के लिए प्रेषित करता है जहाँ शुक पकड़ा जाता है। परन्तु राम की दया से छोड़ दिया जाता है। इधर तीन दिन तक प्रायोपवेशन से समुद्र के प्रसन्न न होने से ब्रह्मास्त्र के द्वारा श्रीराम उसे दण्डित करना चाहते हैं। वह घबड़ाकर श्रीराम के सामने प्रकट हो नल के द्वारा सेतु बन्ध बनाने की सलाह देता है। लंका में अपशकुन होते हैं तथा शुक रावण को सलाह देता है। शुक सारण को गुप्तचरी के लिए आया हुआ जानकर विभीषण उन्हें बन्दी बनाते हैं। किन्तु राम उन्हें मुक्त करा देते हैं। यह सम्पूर्ण समाचार शार्दूल रावण को देता है।

इधर विद्युत्जिह्वा राम के मायामय कटे सिर को सीता को दिखलाता है जिससे सीता विलाप करने लगती हैं। किन्तु सरमा सीता को रहस्य बतलाकर सान्त्वना प्रदान करती हैं। सरमा रावण का समाचार सीता को बतलाती हैं। रावण मूल्यवान् के सुझाव को न मानकर अपशकुन होने पर नगर के प्रवेश द्वारों की रक्षा का आदेश देता है। इधर सुवेल पर्वत पर जब श्रीराम लंका को देखते रहते हैं। सुग्रीव कूदकर रावण से द्वन्द युद्ध करते हैं और रावण को घायल कर राम के पास आ जाते हैं। अंगद दूत बनकर यद्यपि रावण को समझाते हैं फिर भी वह नहीं मानता दोनों सेनाओं का भयंकर युद्ध होता है। अंगद से पराजित इन्द्रजीत माया का आश्रयण कर अदृश्य हो राम लक्ष्मण सहित सभी को नागपाश में बाँध देता है और उसी अवस्था में राम लक्ष्मण को रावण सीता को पुष्पक विमान से दिखलाता है, सीता विलाप करने लगती हैं जिसे त्रिजटा सन्त्वना प्रदान करती हैं। जाग्रत हो राम लक्ष्मण के लिए दुखित होते हैं

किन्तु सुषेण के कथनानुसार हनूमान् द्वारा लायी विशल्या औषधि से लक्ष्मण स्वस्थ होते हैं। गरुड़ आकर नागपाश से सबको मुक्त करते हैं। धुम्राक्ष, वज्रदष्ट्र, अकम्पन, प्रहस्त, सृदश्य, महाबलियों का वध होता है। राम लक्ष्मण के द्वन्द युद्ध में लक्ष्मण के आहत होने पर हनूमान् मुष्टि प्रहार से रावण को मुर्च्छित कर देते हैं। राम रावण युद्ध में पराजित रावण लज्जित हेकर लौट जाता है और कुम्भकर्ण को जगाता है। विभीषण राम से कुम्भकर्ण की निन्द्रा की कथा बतलाता है। क्रोधित कुम्भकर्ण के आक्रमण से सबको बचाने के लिए सुग्रीव द्वन्द युद्ध करते हैं। अन्त में कुम्भकर्ण राम द्वारा मारा जाता है तथा नरान्तक, देवान्तक, त्रिशिरा, अतिकाय इन चार पुत्रों का महोदर महापार्श्व दोनों भाइयों का वध होने पर रावण शोकाकुल होता है। इन्द्रजीत अदृश्य होकर राम लक्ष्मण सहित सम्पूर्ण सेना को व्यथित करता है। किन्तु हनूमान् औषधि पर्वत लाकर सभी घायलों को तथा राम लक्ष्मण को स्वस्थ करते हैं। रात्रि में वानर पुनः लंका को जलाते हैं। कम्पन, कुम्भ, निकुम्भ तथा मकराक्ष का वध करते हैं। इधर इन्द्रजीत यज्ञ करके युद्ध करता है। माया की सीता बनाकर वानरों के समक्ष उसका वध करने पर राम विलाप करते हैं। लक्ष्मण उन्हें सान्त्वना प्रदान करते हैं और विभीषण उसका रहस्योद्घाटन करते हैं। लक्ष्मण सेना सहित जाकर निकुम्भिला में इन्द्रजीत का वध करते हैं। पुत्र वध से क्रोधित रावण सीता का वध करना चाहता है जिसे सुपार्शव रोक देता है। विरुपाक्ष आदि अनेक राक्षसों के वध से राक्षसियाँ विलाप करती हैं। युद्ध में लक्ष्मण पर रावण के द्वारा शक्ति लगने पर हनूमान् जी पर्वत से औषधि लाते हैं इधर मातलि इन्द्र का रथ लेकर आता है और राम रावण का भयंकर युद्ध होता है। अगस्त्य ऋषि राम को आदित्य हृदय स्त्रोत का उपदेश देते हैं। सात दिन के युद्ध के बाद ब्रह्मास्त्र से रावण का वध होता है। विभीषण आदि विलाप करते हैं। राम के समझाने पर रावण की अन्त्येष्टि के बाद विभीषण का राज्याभिषेक होता है। राम सीता को बुलवाते हैं तथा उनको अस्वीकार भी करते हैं। उस समय लक्ष्मण द्वारा निर्मित चिता में सीता प्रवेश करती हैं, विशुद्ध सीता को अग्नि श्रीराम को समर्पित करके देवता एवं शिव श्रीराम की प्रशंसा करते हैं तथा दशरथ शिक्षा प्रदान करते हैं। राम की आज्ञा से मृत वानरों को इन्द्र जीवित करते हैं। विभीषण सभी वानरों को अनेक प्रकार का दान करते हैं तथा पुष्पक विमान से जाम्बवान् सुग्रीव विभीषण के

सहित राम लक्ष्मण सीता के साथ आकाश मार्ग से विभिन्न स्थानों से जाते हुए किष्किन्धा में सुग्रीव आदि पत्नियों को साथ में लेते हैं। तदानन्तर भरद्वाज से मिलते हैं। हनूमान् गुह एवं भरत को श्रीराम का सन्देश देते हैं श्रीराम के आने पर भरत शत्रुघ्न सहित सभी लोग श्रीराम से मिलते हैं। पुष्पक कुबेर को लौटा दिया जाता है। बड़े ही उत्साह से श्रीराम का राज्याभिषेक होता है। अन्त में राम राज्य का वर्णन एवं फलस्श्रुति का कथन

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण की मुख्य कथा संरचना है।

चम्पू-रामायण की मुख्य कथा संरचना का उल्लेख तृतीय अध्याय के विवेचन में कथानक के रूप में हुआ है। इसलिए उसका विवरण पुनः यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इन दोनों मुख्य कथा संरचनाओं में कुछ स्थलों को छोड़कर लगभग समानता है।

वाल्मीकि रामायण एवं चम्पू-रामायण के कथानकों में साम्य एवं वैषम्य -

प्रत्येक रचनाकार का अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। वह सर्वत्र बाह्य जगत से प्रभावित होता हुआ भी अपनी प्रस्तुति में नवीनता का ही आभास कराता है। इसीलिए उसकी अपनी कृति मौलिकता को लिए हुए ही होती है। वही उसकी पहचान है। अन्यथा प्रभावित कृति का स्वतन्त्र अस्तित्व बाधित हो सकता है। फलतः प्रभावकारक बाह्य तत्वों से कृति में कुछ स्थलों से साम्यता होती है तो स्वतः स्फुरित तत्वों में उससे विषमता भी परिलक्षित होती है।

प्रस्तुत चम्पू-रामायण ग्रन्थ आदि कवि वाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण से सर्वथा प्रभावित माना जाता है। फिर भी उसकी जो अपनी मौलिकता है वही उसे नवीनता प्रदान करती है। इसीजिए दोनों में साम्य एवं वैषम्य दृष्टिगोचर होते हैं।

साम्य -

कथावस्तु क्योंकि वाल्मीकि से पूर्णतः प्रभावित है। इसलिए सम्पूर्ण कथानक कुछ सामान्य परिवर्तन को छोड़कर वाल्मीकि के कथानक से समानता रखता है।

प्रत्येक काण्ड का सम्पूर्ण कथानक जिस प्रकार वाल्मीकि रामायण में आरम्भ हुआ, विकसित हुआ तथा परिणाम को प्राप्त हुआ उसी तरह चम्पू-रामायण में भी भोजराज ने प्रत्येक काण्ड के कथानक को आरम्भ किया और सम्पूर्ण विवेचन के साथ उसी की भाँति उसका अवसान भी किया। इसलिए प्रत्येक काण्डों के कथानक का आरम्भ मध्य एवं अवसान पूर्णतया न केवल समानता रखता है अपितु वाल्मीकि के प्रत्येक काण्ड के प्रथम श्लोक के शब्दों से ही चम्पू-रामायण के प्रत्येक काण्ड का आरम्भ किया गया है। इसलिए भी इस रूप में दोनों की समानता बनती है। यद्यपि उक्त नियम का परिपालन युद्धकाण्ड में नहीं देखा जाता तथापि भोजराज के अतिरिक्त कवि लक्ष्मण सूरि के द्वारा विरचित होने से भोज के लिए यह कथन लागू नहीं होता। प्रत्येक काण्डों की अवतारणा भी वाल्मीकि के रामायण के अनुसार ही है। इस दृष्टि से काण्डों का विभाजन दोनें ग्रन्थों में समानता रखता है। यद्यपि भोज ने समस्त रामचरित को संक्षेप में ही कहने का प्रयास किया है। इसलिए विषय वस्तु के संक्षिप्त होने से वर्ण्य विषय भी संक्षिप्त हो गया है, तथापि संक्षेपीकरण के प्रयास में वाल्मीकि के मूल घटना क्रम की उपेक्षाकर किसी भी घटना क्रम का अभाव नहीं किया। इसलिए कथानक का मूल घटनाक्रम दोनों में समान ही पाया जाता है।

रामायण में अनेक उपकथाओं का उल्लेख हुआ है। जिनका प्रसंगानुसार विशद एवं सामान्य संक्षेप में वर्णन हुआ है। रामायण चम्पूकार ने अपने इस ग्रन्थ में रामायण वर्णित लगभग सभी उपकथाओं को न केवल निबद्ध किया है अपितु संक्षेप में ही सही प्रसंगानुसार उनको विवेचन करने का यथा सम्भव प्रयास किया है। मूल कथा एवं प्रासंगिक कथाओं के प्रमुख घटनाक्रमों में कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं देता भले ही संक्षेपीकरण के प्रयास में विशिष्ट प्रसंगों का वर्णन न हो पाया है। परन्तु सांकेतिक अस्पष्ट उल्लेख आदि यथासम्भव वर्णन अवश्य है।

भोजराज की परिकल्पना से केवल वर्ण्य विषय को अलंकृत करने का ही प्रयास हुआ है। घटनाक्रमों में वैचित्र्य उत्पन्न करने के उद्देश्य से कल्पना के द्वारा कोई प्रमुख परिवर्तन नहीं किया। इसलिए सर्वत्र समानता परिलक्षित होती है।

भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी बहुत से स्थलों में समानता देखी जाती है। चम्पू-रामायण में अनेक इस प्रकार के घटना स्थल उपलब्ध होते हैं जहाँ उस समय परिस्थितिवशात् उत्थित मानवीय भावों की अभिव्यक्ति वाल्मीकि रामायण से समानता रखती है। ऐसे प्रसंगों में प्रायः देखने को मिलता है कि भावाभिव्यक्ति को पूर्णतया उत्तमोत्तम बनाने के लिए कवि ने उन्हीं अलंकारों को अपनाया, जिस प्रकार वाल्मीकि ने रामायण में स्वीकार किया है। उपमा अलंकार का प्रयोग तो विशेषतः कवि ने भाव-चित्रण में वाल्मीकि जैसा ही करते हुए पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। इस परिप्रेक्ष्य में कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं। जो इस प्रकार हैं -

'इति ब्रुवन्तं मुदिताः प्रत्यनन्दन् नृपा नृपम्[1]।
वृष्टिमन्तं महामेघं नर्दन्त इवि बर्हिणः "।।

अर्थात् महाराजा दशरथ के कथन को सुनकर सभी राजाओं ने उसी प्रकार प्रसन्नता प्रकट की जैसे बरसते हुए बादलों के गम्भीर गर्जन को सुनकर मयूरगण नर्दन (मधुर केका ध्वनि) करने लगते हैं। वाल्मीकि रामायण के इस पद्य में महाराज दशरथ के कथन को सुनकर राजाओं की प्रसन्नता की अभिव्यञ्जना जैसे- उपमा अलंकार के विधान के द्वारा वाल्मीकि ने किया है उसकी स्पष्ट छाया भोज के प्रस्तुत गद्य खण्ड में प्रदर्शित हुई है -.

'ततः प्रावृषेण्यपयोवाहव्यूहस्तनितनादाकर्णनसमुदीर्णनिरतिशयाह्लादसंसर्गनिरर्गलनिर्गलत्के-कालापिनः कपालिन इव जनाः प्रमदभवकलकलरवमुखरितहरिन्मुखा बभूवुः'।[2]

इसका तात्पर्य है वर्षाकालीन मेघ मण्डल के गर्जित ध्वनि सुनने के अनन्तर आनन्दित होने के कारण प्रतिबन्ध रहित भाव से केका ध्वनि का नाद करने वाले मयूरों के अनुसार ही नागरिकजन आनन्द जन्य मधुर कल-कल शब्दों से दिशाओं को मुखरित करने लगते हैं।

1- वाल्मीकि रामायण 2/2/17.

2- चम्पू-रामायण अयोध्याकाण्ड, पृ0 109.

इसी प्रकार -

'वञ्चयित्वा तु पौलोमीमनुह्लादो यथा शचीम्'।।[1]

'नचिरात् तं वधिष्यामि रावणं निशितैः शरैः ।

पौलोम्याः पितरं दृप्तं शतक्रतुरिवारिहा'।।

प्रस्तुत इस वाल्मीकि श्लोक में वर्णित उपमा अलंकार का स्वरूप चम्पू-रामायण के 'पुरुहुत इव पुलेमजाप हारिणमनुह्लादं रावणं रणे निहिनिष्यसीति'[2] इस गद्य खण्ड में अपने एक अनूठे रूप में प्राप्त होता है।

चम्पू-रामायण के 'तदनु क्षणदाचरीणा भीषणवीक्षणवाग्दोषोन्मेषेण मुकुलितहृदय-पुण्डरीका पुण्डरीकयूथपरिवृतसारंगांगनाभंगीमंगीकुर्वाणा गीर्वाणतरुणीव शापबला द्वसुधां प्रपन्ना जनकनन्दिनी चिन्तामेवमकरोत्'।[3] इस गद्यखण्ड में राक्षसियों से चारों ओर से घिरी हुई सीता की उपमा ऐसे हरिणी या देवबाला से दी गई जो व्याघ्रों से घिरी हुई हरिणी की दशा शाप वश प्राप्त करके सोचती हुई देवबाला के समान बताया गया है।

यह उपमा वाल्मीकि के -

"सा राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा ।[4]

न शर्म लेभे शोकार्ता रावणेनेव भर्त्सिता"।।

"वेपते स्माधिकं सीता बिशन्तीवांगमात्मनः ।

वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता ।।"

इन श्लोकों में वर्णित उपमा से पर्याप्त साम्य रखती है।

ऐसी ही सुन्दर काण्ड में अत्यन्त तेजस्वी हनूमान् की उपमा भगवान नन्दी से दी गई है तथा रवण के हृदय स्थित भावों की अभिव्यञ्जना सुन्दर रीति से प्रस्तुत

1- वाल्मीकि रामायण 4/39, 6, 7

2- चम्पू-रामायण किष्किन्धा काण्ड पृ0 सं0 295.

3- चम्पू-रामायण सुन्दर काण्ड पृ0 सं0 332.

4- वाल्मीकि रामायण 5/25/4, 5

हुई है। ये दोनों वर्णन वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार है -

'तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिंगाक्षं पुरतः स्थितम् ।[1]
रोषेण महताऽऽविष्टो रावणो लोकरावणः'।।

शंकाहतात्मा दध्यौ स कपीन्द्रं तेजसावृतम् ।
किमेष भगवान् नन्दी भवेत् साक्षादिहागतः ।।

येन शप्तोऽस्मि कैलासे मया प्रहसिते पुरा।
सोऽयं वानरमूर्तिः स्यत्किंस्विद् बाणोऽपि वासुरः'।।

इसी प्रकार की उपमा एवं भाव का साक्षात्कार हमें चम्पू-रामायण के इस पद्य में प्राप्त होता है -

'सोऽपि प्लवंगमभिवीक्ष्य समीरपुत्रं [2]
चित्तीयमाणहृदयः पिशिताशनेन्द्रः ।
कैलासशैलचलनागसि शापदायी
नन्दीश्वरः स्वयमुपागत इत्यमंस्त' ।।

उपमा के साम्यता के अतिरिक्त अनेक स्थल ऐसे भी उपलब्ध होते हैं जहाँ परिस्थिति विशेष में पात्रों के साधारण भी कथोपकथन वाल्मीकि रामायण के तथा चम्पू-रामायण के एक ऐसे प्रतीत होते हैं - वाल्मीकि रामायण में दशरथ प्रजा से प्रश्न करते हुए कहते हैं :-

'कथं नु मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति ।[3]
भवन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं महाबलम्' ।।

1- वाल्मीकि रामायण 5/50/1, 2, 3

2- चम्पू-रामायण सुन्दर काण्ड श्लोक - 47

3- वाल्मीकि रामायण 2/2/25

चम्पू-रामायण में भी वैसा ही प्रश्न एवं वर्णन की अभिन्नता इस श्लोक में हमें प्राप्त होती है -

'अस्माननामिश्रततपोवनभूमिभागा[1]
नुन्मुच्य मार्गपरिपालनजागरूकान् ।
अम्लानमौग्ध्यमचिरादवलम्ब्य रामः
मेवविधः कथमुदेति जनानुरागः' ।।

इन उदाहरणों में केवल इनती ही भिन्नता दिखाई देती है कि वाल्मीकि रामायण में महाबली इस विशेषण से राम को विशेषित किया गया है। चम्पू-रामायण सामान्य कथन ही है अर्थात् इसमें राम का कोई विशेषण प्राप्त नहीं होता है। केवल एक विशेषण अम्लानमौग्ध्यम यह है जो राम की सरलता को प्रकट करता है। शेष वर्णन दोनों का समान ही है। इस श्लोक में राम का यह विशेषण भोज की मौलिकता को प्रकट करता है तथा श्रीराम के सरल व्यक्तित्व का परिचायक है।

वाल्मीकि रामायण के वर्णनों का अक्षरशः अपने शब्दों में कई स्थलों में भोजराज अनुवाद करते हैं। उसे ठीक उसी प्रकार पूरा तात्पर्य कह देते हैं। वाल्मीकि रामायण के प्रस्तुत पद्य जो इस प्रकार है -

'अलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहते मम[2]।
स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम्'।।

का भोजराज ने इस प्रकार अपने शब्दों में वर्णन किया है -

'तातः स्ववाचा व्यवहृत्य हृद्यं वत्साभिषेकोत्सवमंगलं मे[3]।
प्रणामसंज्ञस्य मयापितस्य किं पात्रस्य नपात्रमासीत् ।।'

इन दोनों पद्यों का भावाभिव्यञ्जन समान रूप में ही है। कोई मौलिक भेद दोनों कथनों में प्राप्त नहीं होता है।

1- चम्पू-रामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक सं0 5

2- वाल्मीकि रामायण 2/19/6

3- चम्पू-रामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक 26

लक्ष्मण प्रकृत्या कुछ खरे स्वभाव के हैं। यदि उनके हृदय में यह बात आ जाये कि अमुक कार्य या अमुक व्यक्ति का व्यवहार अनुचित है, तो वे अत्यधिक क्रुद्ध एवं दुखी हो जाते हैं। इनके इस मनोदशा का स्वभाविक चित्रण है। वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार हुआ -

'न रोचते ममाप्येतदार्य यद् राघवो वनम् ।[1]
त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेत् स्त्रियावाक्यवशंगतः' ।।
'विपरीतश्च, वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः ।
नृपः किमिध न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः' ।।

भोजराज लक्ष्मण के इसी भावनावस्था का चित्रण करते हैं जो वाल्मीकि रामायण के वर्णन का प्रतिबिम्ब है। वह इस प्रकार है -

'अकार्यमिदं लोकगर्हणार्हायाः कैकेय्या वचसा रजसा जरसा च समाक्रान्तस्वान्ततया कृत्याकृत्यविवेकमूकस्य राज्ञः प्रज्ञाशैथिल्यान्निःसृतेन वचसा सन्त्यज्य राज्यमटवीपर्यटनं विधातुम्' ।[2]

तीसरे अध्याय के विवेचन में हमने कथानक के मूलस्त्रोत इस शीर्षक में इस बात को स्पष्ट किया है कि प्रत्येक काण्ड का प्रथम पद्य में तथा वर्णन भोजराज का वाल्मीकि से अक्षरशः भी समानता रखता है। इसलिए तुल्यता के इस विवेचन में उसका पुनः विवेचन नहीं किया जा रहा है।

अलंकारों के समानता के साथ-साथ कुछ ऐसे स्थलों में भी समानता दिखलायी पड़ती है। जहाँ परिस्थिति विशेष में कहे गये पात्रों के संवाद में एक रूपता दिखलायी पड़ती है यथा -

---

1- वाल्मीकि रामायण 2/21/2, 3

2- चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड पृ0 132

'कथं न मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति [1]।
भवन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं महाबलम्' ।।

यह श्लोक दशरथ के उक्ति के रूप में प्रजा के प्रति प्रश्न के समय का है।

चम्पू-रामायण में उक्त श्लोक के समान ही निबद्ध श्लोक को दृष्टि में रखकर इस प्रकार आया है -

'अस्माननाश्रिततपोवनभूमिभागा -[2]
नुन्मुच्य मार्गपरिपालनजागरूकान् ।
अम्लानमौग्ध्यमचिरादवलम्ब्य रामः
मेवविधः कथमुदेति जनानुरागः ।।'

इन दोनों के उदाहरणों में केवल इतना ही भेद है कि वाल्मीकि रामायण में राम महाबली विशेषण से विभूषित हैं जिससे दशरथ के प्रश्न का समाधान अपने आप हो जाता है। किन्तु चम्पू-रामायण में दशरथ के प्रश्न के औचित्य पर प्रभाव देने के लिए राम को अम्लानमौग्ध्यम् विशेषण से विशिष्ट किया गया है जो भोज की अपनी मौलिकता को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार जिन कथोपकथनों का बहुत कम परिवर्तन के साथ चम्पू-रामायण में प्रस्तुत किया गया है उनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

'अलीकं मानकं त्वेकं हृदयं दहते मम ।[3]
स्वयंयन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम्' ।।
× × × ×
'न रोचते ममाप्येतदार्ये यद् राघवो वनम्।[4]
त्यक्त्वाराज्यश्रियं गच्छेत् स्त्रियावाक्यवशंगतः।।
विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः।
नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः ।।

1- वाल्मीकि रामायण 2/2/25
2- चम्पू-रामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक 5
3- वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग 19/6
4- वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग 2/21/2, 3

अनेक वर्णनात्मक स्थल इस प्रकार भी चम्पू-रामायण में प्राप्त होते हैं जहाँ पर वाल्मीकि रामायण का पर्याप्त अनुकरण किया गया है। कुछ ऐसे स्थल हैं जहाँ आंशिक अथवा कुछ पूर्ण रूप से शाब्दिक परिवर्तनों के साथ वाल्मीकि रामायण से उसी आनपूर्वी को भी उद्धत कर दिया गया है। यथा - वाल्मीकि रामायण में वर्णित राम के वनवासी स्वरूप के चित्रण के प्रसंग में वर्णनार्थ प्रस्तुत -

'निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम्[1] ।
उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम्' ।।
'कृष्णाजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम् ।
दर्दश राममासीनमभितः पावकोपमम्' ।।
सिहस्कन्धं महाबाहुं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ।
पृथिव्याः सागरान्ताया भर्तारं धर्मचारिणम् ।।

श्लोक में "जटामण्डलधारिणम्," "चीरवल्कलवाससम्", "महाबाहुम्" तथा "पुण्डरीकनिभेक्षणम्" ।

उपर्युक्त विशेषणों को भोजराज ने अपने श्लोकों में निबद्ध करके जटाजूटापीडम् वल्कलधरम्, भुजगपितः भोगोपमभुजम्, नलिन नयनम्[2] इन पदों के रूप में ग्रहण किया है।

इसी प्रकार वन में चलते समय राम और लक्ष्मण के मध्य में गमन करती हुई सीता के मालिन्य रहित मुख एवं आलक्तक रहित रक्ताभ चरणों की स्वाभाविक शोभा को भोजराज ने ठीक उसी प्रकार चित्रित किया है -

---

1- वाल्मीकि रामायण 2/99/25, 26, 27

2- चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक सं0 77

'तस्या विदेहदुहितुः पदयोर्नखेषु[1]

लाक्षां विनाप्यरुणिमा सहसा बभूव ।

वन्ये पथि प्रियतमेन सह व्रजन्त्या

वैवर्ण्यमाविरभवन्न कदापि वक्त्रे' ।।

'वदनं तद् वदान्याया वैदेहया न विकम्पते' ।।[2]

'अलक्तरसरक्ताभावलक्तरसवर्जितौ[3] ।

अद्यापि चरणौ तस्याः पद्मकोशसमप्रभौ' ।।

इस प्रकार और भी वर्णन के समानता से युक्त ऐसे स्थल हैं जहाँ वाल्मीकि रामायण की तथा चम्पू-रामायण की पूर्ण समानता दिखलायी पड़ती है।

वैषम्य -

वाल्मीकि रामायण तथा चम्पू रामायण ये दोनों रचनाएँ साहित्य की दो विधाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं जहाँ वाल्मीकि रामायण संस्कृत जगत का (भारतीय मान्यतानुसार सम्पूर्ण विश्व का) सर्वलक्षणसम्पन्न अत्युत्तम महाकाव्य है चम्पू-रामायण गद्य पद्योभयमय चम्पू काव्य है। इस तरह दोनों का वैषम्य विधागत प्रथमतः सिद्ध होता है।

ये दोनों ही पृथक-पृथक व्यक्तियों से रचे गये हैं। फलतः रचनाकार की दृष्टि से भी दोनों का वैषम्य बनता है। इन दोनों के ग्रन्थों की रचना के उद्देश्य भी कुछ भिन्न-भिन्न से प्रतीत होते हैं। जहाँ वाल्मीकि रामायण में श्रीराम सदृश्य सर्वगुण सम्पन्न आदर्श मानव चरित्र के संकीर्तन के माध्यम से भारत वर्ष की तत्कालीन

1- चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक 55.

2- वाल्मीकि रामायण 2/60/17 का उत्तरार्ध ।

3- वाल्मीकि रामायण 2/60/18

सभ्यता संस्कृति सामाजिकता राजनैतिक परिस्थितियाँ आर्थिक, धार्मिक तथा वैज्ञानिक स्थिति को पूरी तरह से प्रस्तुत करना मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है वहीं चम्पू-रामायण की संरचना में राजा भोज का लक्ष्य चम्पू की मिश्रित शैली को उत्साह प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध राम कथा को अपनी कथावस्तु बना करके एक काव्यात्मक प्रबन्ध के संरचना के द्वारा रसिक सहृदय जनों के मानस का समाकर्षण एवं आह्लाद उत्पन्न करने तक ही सीमित है। इसीलिए वाह्य रूप के साथ ही दोनों के अभ्यन्तर स्वरूप में भी आकार-प्रकार में भी पर्याप्त अन्तर है।

वाल्मीकि रामायण एक ऐसा महाकाव्य है जो अपने समय के तत्कालीन इतिहास को राजनैतिक उथल-पुथल को मनोवैज्ञानिक रीति से वर्णन कर अपने विशिष्ट स्वरूप को स्थापित करता है, किन्तु चम्पू-रामायण में भोज ने उन प्रमुख प्रसंगों का वर्णन काव्यात्मक ढंग से ही किया और उन्हें काव्यात्मक एवं आलंकारिक शैली में वर्णन करने का सफल प्रयास किया है। जैसे दशरथ के यज्ञ में आहूत समस्त देव, यक्ष, गन्धर्व एवं राजागण आदि जब एकत्रित हुए तो सभी के समक्ष मात्र एक ही प्रमुख प्रश्न रहा कि रावण के अत्याचार से संसार को मुक्त कैसे कराया जा सके। इसलिए वे सभी लोग ब्रह्मा के शरण में जाकर रावण के अत्याचारों का पूरा वर्णन करते हुए उसकी भर्त्सना करते हुए कहते हैं -

'उद्वेजयति लोकांस्त्रीनुच्छ्रितान् द्वेष्टि दुर्मतिः ।[1]
शक्रं त्रिदशराजानं प्रधर्षयितुमिच्छति ।।

ऋषीन् यक्षान् सगन्धर्वान् ब्राह्मणानसुरांस्तदा ।
अतिक्रामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः ।।'

देवताओं की अत्यन्त दयनीय दशा को देखकर ब्रह्मा विष्णु से रावण वध करने का अनुरोध करते हैं -

---

1. वाल्मीकि रामायण 1/15/8, 9

'त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया'।[1]

'तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम्' ।[2]

'अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्' ।[3]

इस स्थल में यज्ञ भूमि में संप्राप्त सभी देवगण विष्णु की स्तुति करते समय रावण के अत्याचारों से अत्यन्त घबराये हुए आते हो अपने संकट एवं कष्टों का ही वर्णन करते हैं विष्णु के अलौकिक प्रभाव पराक्रम एवं कुकृत्यों का वर्णन नहीं करते वाल्मीकि रामायण के इस वर्णन में देवताओं के उस समय के उद्वेग की स्पष्ट मनोवैज्ञानिक झलक प्राप्त होती है।

चम्पू-रामायण में इसी विषय का सम्पूर्ण वर्णन बड़े ही अलंकृत तथा कृत्रिम ढंग से इस प्रकार से प्रस्तुत हुआ है जिससे उसका बाह्य सौन्दर्य तो प्राप्त होता है किन्तु देवताओं के मानसिक भावों का स्वाभाविक चित्रण न होने से प्रवाहशीलता नहीं बनती क्योंकि चम्पू-रामायण में वे देवतागण विष्णु की स्तुति करते समय अपने कष्टों का उल्लेख न करके विष्णु के सौन्दर्य एवं पराक्रम आदि का उल्लेख करते हैं और उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु इस प्रकार देवताओं का समाचार पूछते हैं मानो विश्व को अपने अत्याचार से आतंकित करने वाला रावण का ज्ञान विष्णु को रहा ही न हो, जिसने भयंकर आतंक से सबको प्रभावित किया है -

'अपि कुशलममर्त्याः स्वागतं सांप्रतं वः [4]

शमितदनुजदम्भा किं नु दम्भोलिकेलिः ।

अपि धिषणमनीषानिर्मिता नीतिमार्गा

स्त्रिदशनगरयोगक्षेमकृत्ये क्षमन्ते' ।।

1- वाल्मीकि रामायण 1/15/18 उत्तरार्थ

2- वाल्मीकि रामायण 1/15/21 उत्तरार्थ

3- वाल्मीकि रामायण 1/15/22 पूर्वार्द्ध

4- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 17.

इन उदाहरणों से यह ज्ञात होता है कि वाल्मीकि की दृष्टि समकालीन परिस्थितियों को स्वभाविक ढंग से लेकर के चलती है और भोजराज को काव्यात्मक चमत्कार का समावेश ही प्रमुखतया प्रतिपाद्य दृष्टिगोचर होता है। जहाँ वाल्मीकि का स्वाभाविकता पर जोर है वहीं चम्पू–रामायणकार चमत्कार पर यही दोनों का प्रमुख वैषम्य है। वाल्मीकि की भाषा एवं वर्ण्यविषय नैसर्गिक भावना से संलग्न होने के साथ-साथ उसकी प्रस्तुति सरस मधुर तथा प्रसादमयी है। किन्तु चम्पू-रामायण की अलंकृत शैली पाठक को वर्ण्य वस्तु को छोड़कर अलंकार छटा की ओर आकर्षित करती है। इस तरह स्वाभाविकता एवं कृत्रिमताधिक्य इन दो दृष्टियों से भी चम्पू – रामायण एवं वाल्मीकि रामायण में वैषम्य परिलक्षित होता है।

घटनागत वैषम्य -

एक ही विषय को लेकर रचनाकार भेद से कृति विशेष में अपनी दृढ़ उपस्थिति दिखलाने के लिए तथा अन्य कृतियों से अलौकिक बनाने के लिए कवि की कल्पना प्रमुख स्थान रखती है। इसीलिए श्रीराम को लेकर अनेक ग्रन्थों की रचना हुई।[1] किन्तु सबका वैशिष्ट एवं नवीनता उनकी अपनी पहचान है। इसी परिप्रेक्ष्य में चम्पू–रामायण से अत्यधिक प्रभावित होता हुआ भी कुछ न कुछ अपने मौलिक स्वरूप को लेकर उपस्थित है। इसलिए घटनागत वैषम्य भी इसमें आना स्वाभाविक है।

सामान्यतया घटनागत वैषम्य शीघ्र पकड़ में नहीं आता, क्योंकि लगभग वाल्मीकि की घटनाक्रमों का ही अनुशरण भोजराज ने सामान्यतया किया है फिर भी मौलिकता संरक्षण स्वभाव की अवहेलना भोजराज के लिए भी सह्य नहीं था इसलिए कुछ न कुछ वैषम्य अवश्य है जिनका विवरण निम्नलिखित है।

1- वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में विश्वामित्र के यज्ञ रक्षा में तत्पर राम और लक्ष्मण स्वमेव यज्ञवेदी को रूधिर से आप्लावित देखकर ससम्भ्रम इधर-उधर दौड़ते

1- वाल्मीकि रामायण, मूलरामायण, अद्भुत् रामायण, आनन्द रामायण, अध्यात्म रामायण आदि।

हुए राम एवं लक्ष्मण आकाश मार्ग से सम्प्राप्त राक्षसों को देखते हैं -

'तां तेन रुधिरौघेण वेदीं वीक्ष्य समुक्षिताम् ।[1]
सहसाभिद्रुतो रामस्तानपश्चत् ततो दिवि ।।'

चम्पू-रामायण में कुछ स्थिति भिन्न है यहाँ यज्ञकार्य में तत्पर विश्वामित्र को ही उन राक्षसों का ज्ञान होता है और वह उन्हें एकाएक देखकर भयभीत होते हैं। विश्वामित्र के अन्य शिष्य शीघ्रातिशीघ्र जाकर श्रीराम से राक्षसों के अत्याचार की सूचना देते हैं।

तदनन्तरमन्तरिक्षान्तरालादापतन्तमन्तकानीकभयानकं तं पलाशगणमवलोक्य पलायमाना· करगलितसमित्कुशाः कुशिकनन्दनान्तेवासिनः ससम्भ्रममभिलषिताहवाय राघवाय न्यवेदयन्।[2]

इन दोनों स्थलों में यद्यपि स्थिति सामान्य है। उभयत् श्रीराम यज्ञ रक्षा में संलग्न हैं तथापि वाल्मीकि के राम सजग अधिक दिखाई पड़ते हैं। चम्पू-रामायण के राम कुछ असावधान जैसे प्रतीत होते हैं। इस वर्णन से भोजराज के राम के चरित्र में प्रमाद का दोष प्राप्त होता है।

वस्तुतः उक्त घटना के वर्णन में भोज की ही प्रमादजन भूल दिखलाई पड़ती है जिन्होंने उक्त घटना की संरचना में इस बात का ध्यान नहीं रखा। यहाँ भी इस प्रकार की घटना संरचना में स्पष्ट वैषम्य है।

2- बालकाण्ड में रावण वध की चिन्ता में निमग्न देवताओं के दुख को दूर करने के लिए ब्रह्मा जी यज्ञ में आये हुए विष्णु को रावण वध का उपाय सर्वप्रथम बतलाते हैं -

---

1- वाल्मीक रामायण 1/30/13.
2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृ0 5।

'राज्ञा दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो' ।[1]

'धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः ।

अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रिश्रीकीर्त्युपमासु च' ।।

'विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधाम् ।

'तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम्' ।।

अवध्यं दैवतैविष्णो समरे जहि रावणम्' ।

और ब्रह्मा के इस कथन के बाद भगवान् विष्णु रावण के वध के विषय में यद्यपि सब जानते हैं। फिर भी वे देवताओं से तदर्थ प्रश्न करते हैं -

'जानन्नपि सुरानेवं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत ।।[2]

उपायः को वधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुराः ।

यमहं तं समास्थाय निहन्यामृषिकण्टकम्' ।।

और देवता विष्णु को रावण वधार्थ प्रश्नों का उत्तर रावण वध के उपाय के रूप में उन्हें बतलाते हुए कहते हैं कि आप मनुष्य का रूप धारण कर रावण का वध करें क्योंकि इसने वरदान में यह माँग लिया था कि मनुष्य के अलावा विश्व के किसी भी प्राणी से उसे भय प्राप्त न हो -

'मानुषं रूपमास्थाय रावणं जहि संयुगे' ।[3]

देवताओं के उपाय को स्वीकार कर वे दशरथ के घर में जन्म लेने का निश्चय करते हैं -

'पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम्' ।[4]

चम्पू-रामायण में विष्णु को रावण का वध कैसे हो इसका उपाय कोई नहीं बतलाया वे स्वयं देवगणों की स्तुति से प्रसन्न होकर रावण के वध करने का संकल्प लेते हैं -

---

1- वाल्मीकि रामायण 1/15/19 से 22 तक

2- वाल्मीकि रामायण 1/16/1, 2

3- वाल्मीकि रामायण 1/16/3

4- वाल्मीकि रामायण 1/16/8

'भवतामपराधविधायिनस्तस्य यातुधानस्य निधनमधुनैव विधातुं शक्यम्' ।

'किन्तु सरसिजासनशासनमप्यमोघीकुर्वन्नुर्वीतले पुत्रीयतः सुत्राममित्रस्य दशरथस्य मनोरथमपि पूरयितुमाद्गमानुषवेषः सन्नहमेव तं हनिष्यामीति व्याहृत्यान्तरधात्' ।[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि भोजराज विष्णु के प्रति अत्यधिक श्रद्धा भावना से युक्त हैं और उन्हें अतीव उत्कृष्ट चित्रण करने में कभी भी प्रमाद नहीं करते हैं। इसलिए भोज ने यह उचित नहीं समझा कि रावण वध का उपाय विष्णु को कोई दूसरा बताये, इसलिए वे स्वयं विष्णु के मुख से उनके कर्तव्य को कहलवाया।

कवि का यह वैषम्य यद्यपि घटना दृष्टि से वाल्मीकि रामायण से पर्याप्त परिवर्तित है तथापि विष्णु की उत्कृष्टता एवं कर्तव्य परायणता के वर्णन के होने से यह वैषम्य श्लाघनीय है।

3- वाल्मीकि रामायण में विष्णु के अवतार ग्रहण का मुख्य उद्देश्य रावण वध ही है। क्योंकि उसे जो ब्रह्मा का वरदान है, इस कारण मनुष्येतर प्राणी में उसके वध का सामर्थ्य नहीं है। साधारण मनुष्य का भी इतना सामर्थ नहीं है जो ऐसे उत्कृष्ट सामर्थ्यशाली की ओर अपनी दृष्टि भी कर सके। इसलिए उसके वध के लिए विष्णु जैसे परमेश्वर में ही वह सामर्थ्य है, जो मनुष्य रूप धारण करके रावण का वध कर सके इसीलिए वे ऐसा करने का संकल्प करते हैं और पिता के रूप में दशरथ को अपनाते हैं -

'पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम्' ।[2]

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि वाल्मीकि की दृष्टि में राम जन्म का मुख्य उद्देश्य केवल रावण वध को ही माना है।

भोजराज की स्थिति कुछ भिन्न है। भोजराज ने राम जन्म के उद्देश्य के लिए तीन उद्देश्यों को स्वीकार किया है।

1- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 29.

2- बाल्मीकि रामायण 1/16/8

1) रावण वध।

2) ब्रह्मा के वरदान की सत्यता।

3) दशरथ की पुत्र कामना पूर्ति।

इन तीन उद्‌देश्यों को भोजराज ने स्वयं विष्णु के मुख से ही उद्‌धृत किया है -

'किंतु सरसिजासनशासनमप्यमोघीकुर्वन्नुर्वीतले पुत्रीयतः सुत्रामनित्रस्य दशरथस्य मनोरथमपि पूरयितुमादृतमानुषवेषः सन्नहमेव तं हनिष्यामीति व्याहृत्यान्तरधात्' ।[1]

यद्यपि वाल्मीकि रामायण में रावण वध के अतिरिक्त भोजराजोक्त प्रयोजनद्वय भी यथा कथञ्चित सिद्ध होते हैं। तथापि प्रयोजन के रूप में स्पष्ट कथन जहाँ विष्णु के भक्तवत्सलता सामर्थ्य तथा ब्रह्मा के प्रति आदर भाव सूचित करता है वहीं भोज की यह कल्पना अपने स्वतन्त्र वर्णन का परिचय देते हुए वाल्मीकि के वर्ण्य विषय की पृथकता सिद्ध करती है।

4- वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र के आगमन की घटना का संयोजन जिस प्रसंग में हुआ है वह प्रसंग पूर्वापरभाव को लिए हुए है जिससे कथानक की क्रबद्धता सुदृढ़ होती है।

राम आदि के विवाह के लिए चिन्तित दशरथ के रहने पर वे जब अपने बान्धवों से तथा उपाध्यायों से विचार-विमर्श करते हैं उसी समय विश्वामित्र आते हैं, जिससे उनका आगमन रामादि के विवाह की ओर संकेत देता है और उस प्रयोजन की सिद्धि में विश्वामित्र प्रमुख कड़ी के रूप में सिद्ध होते हैं।

चम्पू-रामायण में बिना किसी प्रसंग विशेष योजना के ही विश्वामित्र के आगमन की स्थिति बनती है। पूर्वापरि घटना से कोई स्पष्ट संगति नहीं बनती, विश्वामित्र के आगमन की घटना एक आकस्मिक सी प्रतीत होती है जिसका सम्भव कोई प्रयोजन न हो।

चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 29.

इसमें वाल्मीकि का सप्रसंग विश्वामित्र गमन की चर्चा तथा चम्पू-रामायण में बिना प्रसंग के ही घटना का उल्लेख विषमता का स्थापक है।

5- गंगावतरण की घटना के उल्लेख में वाल्मीकि रामायण में राजा सगर के साठ हजार पुत्रों के भस्म हो जाने की सूचना प्राप्त करके ही राजा सगर यज्ञ का विधि पूर्वक समापन करके तीस हजार वर्ष तक राज्य करके स्वर्गगामी होते हैं -

'तच्छ्रुत्वा घोरसंकाशं वाक्यमंशुमतो नृपः' ।[1]
यज्ञं निर्वर्तयामास यथाकल्पं यथाविधि ।।
'त्रिंशद्वर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः' ।।[2]

चम्पू-रामायण में ऐसा नहीं है। इस पुराण प्रसिद्ध घटना को भी भोजराज ने सेक्षेपीकरण के उतावलेपन से इस प्रकार चित्रित किया कि वह इतिहास से विपरीत हो गया है -

'ततस्तनयवृत्तान्तं श्रुत्वा लब्धतुरंगमः ।[3]
समाप्य सगरः सत्रं पुत्रशोकाद्दिवं गतः' ।।

इसके अनुसार पुत्रशोक से सगर इतने संतप्त हो जाते हैं कि अश्व प्राप्त करने के बाद यज्ञ को समाप्त करने के अनन्तर अल्प समय बाद मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

इस वर्णन से कथमऽपि यह प्रतीत नहीं होता कि यज्ञ के समाप्ति के अनन्तर थोड़े ही समय जीवित रहे हों।

इस प्रकार सत्र समापन के पश्चात् सगर की अधिक जीवन एवं अल्प जीवन का वैषम्य दोनों के वर्णन में स्पष्ट प्रतीत होता है।

1- वाल्मीकि रामायण 1/41/24

2- वाल्मीकि रामायण 1/41/26

3- चम्पू-रामायण, बालकाण्ड, श्लोक 74

6- गंगावतरण की घटना के समुल्लेख में वाल्मीकि रामायण में गंगा के इस गर्वोक्ति का वर्णन है कि मैं अपने वेग से शिव को पाताल लोक पहुँचा दूँगी तथा गंगा के अवतरण के बाद शिव के जटाओं में अनेक वर्षों तक भटकते रहने का वर्णन है-

'आकाशादपतद् राम शिवे शिवशिरस्युत' ।[1]

'विशाम्यहं हि पातालं स्त्रोतसा गृह्य शंकरम् ।[2]
तस्यावलेपनं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तु भगवान् हरः ।।
तिरोभावयितुं बुद्धिं चक्रे त्रिनयनस्तदा ।
सा तस्मिन् पतिता पुण्या पुण्ये रूद्रस्य मूर्धिनि' ।।

'नैव सा निर्गमं लेभे जटामण्डलमन्ततः ।[3]
तत्रैवाबभ्रमद् देवी संवत्सरगणान् बहून्' ।।

किन्तु चम्पू-रामायण में केवल जटाजूट से बाहर न निकल पाने का वर्णन है। गंगा के गर्वोक्ति का कथन नहीं है -

'अलब्धनिर्गमा शम्भोः कपर्दादमरापगा ।[4]
दधौ दूर्वाशिखालग्नतुषारकणिकोपमाम्' ।।

7- गंगा अवतरण के ही प्रसंग में वाल्मीकि रामायण में शंकर की जटा से निकली हुई सप्त धाराओं का पतन शिव द्वारा बिन्दुसर सरोवर में बतलाया गया है जबकि चम्पू-रामायण में शंकर की जटाओं से निकली सप्त धारायें पहले हिमालय पर्वत की शिखर में गिरती है, पश्चात् बिन्दुसर सरोवर में भगीरथ के प्रार्थना करने पर शिव द्वारा डाली जाती है।

1- वाल्मीकि रामायण 1/43/4

2- वाल्मीकि रामायण 1/43/6, 7

3- वाल्मीकि रामायण 1/43/9

4- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या - 83

'गंगा सप्ताकृतिर्जाता न्यपतद्धरमूर्धानि ।[1]
तेन स्तुत्या प्रसन्नेन क्षिप्ता बिन्दुसरस्यपि' ।।

8- मरुत के उत्पत्ति वर्णन के प्रसंग में एक सामान्य वैषम्य प्राप्त होता है। इस प्रसंग में वाल्मीकि रामायण में जहाँ दिति गर्भस्थ शिशु के इन्द्र के द्वारा सात खण्डों में काटे जाने पर उन्हें इन्द्र से कहती है कि ये सात खण्ड मरुत नाम से प्रसिद्ध हो तुम्हारे सप्त स्थानों के संरक्षक होंगे।

'मरुतां सप्त सप्तानां स्थानपाला भवन्तु ते ।।
वातस्कन्धा इमे सप्त चरन्तु दिवि पुत्रक ।
मारुता इति विख्याता दिव्यरूपा ममात्मजाः' ।।[2]

चम्पू-रामायण में स्थिति कुछ भिन्न है। वहाँ दिति स्वयं मारुतों को स्थानाधिक्य नहीं बनाती अपितु वैसा करने के लिए इन्द्र से कहती है -

'दीतिरपि विदिततनयवृत्तान्ता तान्यपि खण्डान्याखण्डलेन सप्तमरुतः कारयित्वां त्रिविष्टपं प्रविष्टा' ।[3]

वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में राम के राज्याभिषेक का जब निश्चय दशरथ अपने सचिवों के साथ करते हैं तो उसकी सूचना कौसल्या को राम के मित्रों से प्राप्त होती है -

'तच्छ्रुत्वा सुहृदस्तस्य रामस्य प्रियकारिणः' ।।[4]
'त्वरिताः शीघ्रमागत्य कौसल्यायै न्यवेदयन्' ।[5]

1- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या - 85

2- वाल्मीकि रामायण 1/47/3, 4

3- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ - 74

4- वाल्मीकि रामायण 2/3/46 उत्तरार्ध.

5- वाल्मीकि रामायण 2/3/47 पूर्वार्द्ध.

किन्तु चम्पू-रामायण में अपने राज्याभिषेक की यह महत्वपूर्ण सूचना माता कौसल्या को श्रीराम स्वयं देते हैं -

'अथ दशरथमनोरथं कौसल्यायै निवेद्य स्वभवनमुपागतस्य रामस्य' ।[1]

9- कैकेयी वनगमन रूप व्ररदान माँगने के बाद पुत्र शोक संतप्त राजा दशरथ के कुछ न बोल पाने की स्थिति में स्वकार्य सम्पादन में पटु कैकेयी श्रीराम को बुलाने के लिए सुमन्त्र को आदेश देती है -

यदा वक्तुं स्वयं दैन्यान्न शशाक महीपतिः ।[2]
तदा सुमन्त्रं मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह ।।
सुमन्त्र राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः ।
प्रजागरपरिश्रान्तो निद्रावशमुपागतः ।।
तद् गच्छ त्वरितं सूत राजपुत्रं यशस्विनम् ।
राममानय भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा ।।

चम्पूरामायण में उस दुसह अवस्था में भी राम मुखावलोकन के इच्छुक स्वयं ही सुमन्त्र को श्रीराम को बुलाने के लिए भेजते हैं -

तदनु मुहुर्तमात्रमपि राममुखावलोकनसुखम नुबुभूषुर्दशरथः कुमारमानयेति सुमन्त्रमादिदेश।[3]

10- वाल्मीकि रामायण दशरथ के व्याकुलता के कारण जानने के उत्सुक श्रीराम से प्रतिज्ञा कराकरके ही अपने वरदान के विषय में तथा राजा के शोक के विषय में कैकेयी बतलाती है -

---

1- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ - 113.

2- वाल्मीकि रामायण 2/14/61 से 63

3- चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड पृष्ठ 125

'यदि तद् वक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वाशुभम् ।[1]
करिष्यसि ततः सर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम् ।।
तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिका
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ।।
तमार्जवसमायुक्तमनार्या सत्यवादिनम् ।
उवाच रामं कैकेयी वचनं भृशदारुणम्' ।।

चम्पू–रामायण में कैकेयी राम द्वारा दशरथ के शोक के विषय में पूछने पर किसी प्रकार की भी बिना कोई प्रतिज्ञा कराये अपने वरदान माँगने की बात को शोक के कारण के रूप में बतला देती है और उसे पूर्ति कराने के लिए राम से किसी भी प्रकार की कोई प्रतिज्ञा नहीं कराती है -

'किमिदमिति कैकेयीमन्वयुक्तः । वत्स, प्रतिश्रुतवरद्वयनिर्वहणे[2] निपुणेतरस्तातस्ते सम्प्रति सानुशयस्तनयवात्सल्यात्सल्यात्सत्यव्यत्यास्त्रासाच्च गाढम गाधे शोकसागरे निमज्जतीति।

वरद्वयं तावत्तव मुनिवृत्यैव वने वर्तनमवनेखनं भरतस्येति'

।।- वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण एवं सीता सहित राम को श्रृंगवेरपुर तक पहुँचा कर सुमन्त्र जब दशरथ के समीप आते हैं, तो श्रीराम का सम्पूर्ण समाचार उन्हें बतलाते हैं साथ ही अवध वासियों की विरह अवस्था का भी वर्णन करते हैं -

'इति सूतो नरेन्द्रेण चोदितः सज्जमानया ।[3]
उवाच वाचा राजानं स वाष्पपरिबद्धया' ।।
'तथैव रामोऽश्रुमुखः कृताञ्जलिः
स्थितोऽब्रवील्लक्ष्मणबाहुपालितः ।
तथैव सीता रुदती तपस्विनी
निरीक्षते राजरथं तथैव माम्' ।।

1- वाल्मीकि रामायण 2/18/25, 30, 31

2- चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड पृष्ठ 126, 127

3- वाल्मीकि रामायण 2/58/13 से 37

'मम त्वश्वा निवृत्तस्य न प्रावर्तन्त वर्त्मनि ।[1]

उष्णमश्रु विमुञ्चन्तो रामे सम्प्रस्थिते वनम्' ।।

'निरानन्दा महाराज रामप्रव्राजनातुरा ।

कौसल्या प्रत्रहीनेव अयोध्या प्रतिभाति मे' ।।

चम्पू-रामायण में इसी प्रसंग में सुमन्त्र राम का कोई समाचार न बतलाकर उनकी दिनचर्या सीता की करुणावस्था एवं लक्ष्मण की कर्तव्य परायणता का ही वर्णन करते हैं।[2]

12- वाल्मीकि रामायण में रामवनगमन एवं अपने लिए राज्य को माँगने वाली कैकेयी की भर्त्सना करते हुए भरत कैकेयी के समक्ष ही उसे सम्बोधित करते हुए कहते हैं -

'इत्येवमुक्त्वा भरतो महात्मा[3]

प्रियेतरैर्वाक्यगणैस्तुदंस्ताम् ।

शोकार्दिश्चापि ननाद भूयः

सिंहो यथा मन्दरकन्दस्थः' ।।

चम्पू-रामायण में इसी प्रसंग में स्थिति कुछ भिन्न है। उक्त वरदानद्वय से आक्रोशित एवं दुःखी भरत कैकेयी की भर्त्सना तो करते हैं, किन्तु वे शत्रुघ्न को सम्बोधित करते हुए कहते हैं न कि कैकेयी से -

'तदनु तन्मुखादाकृष्टदृष्टिरनुजमिदमवादीत्' ।[4]

1- वाल्मीकि रामायण 2/59/1 से 16

2- चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक 53 से 56

3- वाल्मीकि रामायण 2/73/28 एवं 2/74/ 1 से 36

4- चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड पृष्ठ 179

13- मन्थरा के शत्रुघ्न द्वारा ताड़ित करने की घटना का उल्लेख यद्यपि उभयत्र है तथापि ताड़न से शत्रुघ्न को रोकने वाले व्यक्ति वाल्मीकि रामायण में भरत है,[1] तो चम्पू-रामायण में कौसल्या को बतलाया गया है।[2]

14- खर-दूषण के युद्ध के अवसर पर वाल्मीकि-रामायण में खर सर्वप्रथम राम-लक्ष्मण को दण्ड देने के लिए केवल चौदह राक्षसों को भेजता है और उनके मारे जाने पर अपनी सम्पूर्ण सेना चौदह हजार राक्षसों के साथ श्रीराम से युद्ध करने के लिए जाता है।[3]

चम्पू-रामायण में यही घटना कुछ भिन्न रूप में प्रस्तुत है। वह प्रारम्भ में ही चौदह सेना पतियों से नियन्त्रित चौदह व्यूहों से युक्त सेना को राम लक्ष्मण को पकड़ ले आने के लिए आदेश देता है। दूसरी बार पुनः सेना भेजने का कोई उल्लेख नहीं है।[4]

15- सीता का हरण करने के पश्चात् वाल्मीकि रामायण में ऐसा वर्णन है कि रावण सर्वप्रथम उन्हें अन्तःपुर ले जाता है। वहाँ उन्हें किसी भी प्रकार विचलित न देखकर अशोक वाटिका में स्थापित करता है।

'संरूढकक्ष्यां बहुलां स्वमन्तःपुरमाविशत् ।[5]
तत्र तामसितापांगीं शोकमोहसमन्विताम् ।।
निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम्' ।
'अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामिति ।[6]
तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता' ।।

1- वाल्मीकि रामायण 2/78/16 से 21
2- चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 75
3- वाल्मीकि रामायण 3/19/21 से 25
4- चम्पू-रामायण आरण्य काण्ड पृष्ठ 226
5- वाल्मीकि रामायण 3/54/13-14 का पूर्वार्द्ध
6- वाल्मीकि रामायण 3/56/30

चम्पू-रामायण में सीता-हरण के पश्चात् रावण चसीता को अन्यत्र कहीं न ले जाकर अशोक वाटिका में ही स्थापित करता है।

'तत्पतनमपि स्वतेजःपतनमिव नालक्षयल्लंकालंकारभूतामशोकवनिकां मैथिलीमनयदनया-भिज्ञो दशग्रीवः' ।[1]

16- ऋष्यमूक पर्वत में निवास कर रहे हनूमान् आदि सचिवों से युक्त सुग्रीव बालि के डर से अत्यन्त भयभीत रहते हैं। दूर से ही लक्ष्मण के साथ श्रीराम को आते हुए देखकर सशंकित हो उठने पर उनके वृत्तान्त जानने के लिए हनूमान् को भेजते हैं। विनयपूर्वक हनूमान् के द्वारा परिचय पूछे जाने पर लक्ष्मण जी आदि से लेकर उस समय तक की सम्पूर्ण वृत्तान्त को अपने परिचय सहित बतलाते हैं तथा अपने आने का प्रयोजन भी बतलाते हैं।[2]

चम्पू-रामायण में इस प्रसंग में हनूमान् मात्र प्रश्न ही करते हैं। उनके प्रश्न का उत्तर देने का उल्लेख न लक्ष्मण के द्वारा न राम के द्वारा या अन्य किसी के द्वारा नहीं है।[3]

17- वाल्मीकि रामायण में बालि के संहार के बाद सुग्रीव के राज्याभिषेक के लिए श्रीराम से किष्किन्धापुरी चलने के लिए हनूमान् जी प्रार्थना करते हैं[4] किन्तु चम्पू-रामायण में श्रीराम से चलने का निवेदन सुग्रीव के द्वारा किया गया है।[5]

18- वाल्मीकि रामायण में वर्षा काल के व्यतीत हो जाने पर श्रीराम सुग्रीव को सीतान्वेषण की आज्ञा देते हैं।[6]

1- चम्पू-रामायण आरण्य काण्ड पृष्ठ 243
2- वाल्मीकि रामायण 4/4/6 से 18
3- चम्पू-रामायण किष्किन्धा काण्ड पृष्ठ 259 से 261 तक
4- वाल्मीकि रामायण 4/26/3-5
5- चम्पू-रामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 21 उत्तरार्ध
6- वाल्मीकि रामायण 4/26/11-17

परन्तु चम्पू-रामायण में वर्षा ऋतु के अनन्तर शरद ऋतु में सुग्रीव स्वयं ही सीतान्वेषण की घोषणा करते हैं जो राम के प्रति सुग्रीव को कृज्ञता का आभास दिलाता है। राम को सुग्रीव से सीतान्वेषण रूप प्रत्युपकार करने के लिए कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती।[1]

चम्पू-रामायण में कुछ पात्रों के नामों का भी वैषम्य देखने में आता है। सुमेरु पुत्री एवं पर्वतराज हिमालय की पत्नी के नाम का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में मेना इस नाम से हुआ है -

'या मेरुदुहिता राम तयोर्माता सुमध्यमा।[2]
नाम्ना मेना मनोज्ञावै पत्नी हिमवतः प्रिया' ।।

चम्पू-रामायण में इसका नाम मनोरमा प्राप्त होता है-

'पुरा मनोरमा नाम सुमेरोरभवत्सुता।[3]
गृहमेधी तयैवासीच्चक्रवर्ती धराभृताम्' ।।

इन दोनों के द्वारा उल्लिखित यह नाम एक अतिरिक्त स्थिति को उत्पन्न करता है। इससे यह प्रतीत होता है कि मेना या मनोरमा या तो ये दोनों नाम हिमालय की पत्नी के थे अथवा भोजराज के समर्थकों में मनोरमा नाम की प्रसिद्धी अधिक रही हो। पितरों की मानसिक सन्तान अर्थात् मनोबल से उत्पादित मेना सुमेरु के द्वारा पुत्री रूप में स्वीकार की गई थी। इसीलिए इसे सुमेरू पुत्री कहा जाता है।

'मत्सुते यामिति ज्ञात्वा शिषेवे मातृवर्चसा ।[4]
हिमालयप्रिया मेना सर्वादिर्धिभिरनिर्भरा' ।।

1- चम्पू-रामायण किष्किन्धा काण्ड - श्लोक 2।

2- वाल्मीकि रामायण 1/35/15

3- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक 55

4- शिवपुराण 2/3/1/श्लोक संख्या 5

'तदेव मेनका तां सा हिमालयप्रिया मुने ।[1]
शिवलोकस्थितां देवीमारिराधयिषुस्तदा' ।।

अन्य शिवपुराण में मैना या मेनका नाम भी प्राप्त होता है। कालिदास ने कुमार सम्भव में हिमालय पत्नी का नाम मेना ही स्वीकार किया है।[2]

इस तरह इन नामों के पार्थक्य देखने से यही मानना उचित है कि हिमवत् पत्नी के अनेक नाम थे। कवि ने अपने रुचि अनुसार तत्-तत् पर्यायों को छन्द एवं रुचि की दृष्टि से ग्रहण किया। चम्पू-रामायणकार ने भगवती गंगा एव भगवती पार्वती की कथा के प्रसंग में उनकी माता के नामोल्लेख में मनोरमा का उल्लेख सम्भवतः अतीव आदरता को दृष्टि में रखकर ही किया हो।

कालिदास ने मेना के सौन्दर्य वर्णन में उनके यौवन को मनोरमा विशेषण से विशिष्ट वर्णन किया है -

'मनोरमं यौवनमुद्वहन्त्या गर्भोऽभवद् भूधरराजपत्न्या' ।।[3]

कालिदास का मनोरम यह यौवन का विशेषण वस्तुतः मेना के अनुपम सौन्दर्य की ओर इंगित किया करता है। सम्भवतः कालिदास को भी कहीं न कहीं मेना के मनोरमा इस नाम का भी उल्लेख कथमऽपि करना अभीष्ट था। भोजराज चमत्कार चातुर्य से युक्त कविता को संवारने वाले कवि हैं। इस नाम के प्रयोग के माध्यम से इन्होंने अपनी काव्यमयी भावना का परिचय दिया है। इस दृष्टि से इनका नाम परिवर्तन उचित है।

वाल्मीकि रामायण में जृम्भकास्त्रों को प्रजापति का पुत्र बतलाया है।

'तोषिताः कर्मणानेन स्नेहं दर्शय राघवे।[4]
प्रजापतेः कृशाश्वस्य पुत्रान् सत्यपराक्रमान्' ।।

1- शिवपुराण 2/3/1/श्लोक संख्या 7
2- कुमार सम्भव प्रथम सर्ग
3- कुमार सम्भव प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 19
4- वाल्मीकि रामायण 1/26/29

चम्पू-रामायण में इससे भिन्न जृम्भकादि अस्त्रों के निर्माता के रूप में कृशाश्व के स्थान में भृशाश्व का उल्लेख हुआ है -

'मुनिर्भृशाश्वोपज्ञानि ताटकामाथिने ददौ ।[1]
अस्त्राणि जृम्भकादीनि जम्भशासनात्' ।।

इस स्थल की व्याख्या करते हुए ग्रन्थ के प्रकाश टीकाकार आचार्य रामचन्द्र मिश्र ने - 'भृशाश्वः कृशाश्वो वेति मुनिनाम' ।[2]

इस प्रकार दोनों के विषय में अपना वाक्य कथन से विचार न प्रस्तुत करते हुए, उसे स्वीकार किया है तथा भृशाश्व इस नाम के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है तथा इस विषय में भवभूति का भी विचार प्रकट किया है।

सम्भवता ऐसा प्रतीत होता है कि ये भी दोनों शब्द पर्याय रूप में हों जिसमें वाल्मीकि में कृशाश्व तथा चम्पू रामायण में भृशाश्व का प्रयोग हुआ हो।

इस तरह इन दो स्थलों में इन दोनों की प्रयोग की स्थिति बनती है।

ब्रह्मा की आज्ञा से वाल्मीकि अपने तपस्या तथा योगबल के माध्यम से सम्पूर्ण रामकथा का साक्षात्कार कर लेते हैं। इस प्रसंग में राम कथा के सम्पूर्ण साक्षात्कार के लिए उदाहरण स्वरूप वाल्मीकि में -

'ततः पश्यति धर्मात्मा तत् सर्वं योगमास्थितः ।[3]
पुरा यत् तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा' ।।

इस कथन से हाथ में 'अमालक' के समान कहा है। इसी प्रसंग में भोजराज ने -

---

1- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 44

2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 49

3- वाल्मीकि रामायण 1/3/6

'अथ सरसिजयानेराज्ञया रामवृत्तं[1]

करबदरसमानं प्रेक्ष्य दृष्टया प्रतीच्या ।

शुभमतनुत काव्यं स्वादु रामायणाख्यं

मधुमयफणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः' ।।

इस कथन के द्वारा हाथ में रखे हुए 'बदरीफल' के समान उदाहरण प्रस्तुत किया है।

यद्यपि ये दोनों उदाहरण वस्तुतः इसी बात की ओर संकेत करते हैं कि सम्पूर्ण रामकथा का साक्षात्कार योगबल से वाल्मीकि ने कर लिया था। क्योंकि एतदर्थ उदाहरण स्वरूप वाल्मीकि के कथन से कुछ अतिरिक्त स्वरूप को दिखलाने के लिए किया है। इसका कोई अन्य औचित्य सिद्ध नहीं होता है। यदि आमलकी एवं बदरीफल के गुणों एवं स्वरूपों के आधार पर रामकथा के विषय में कुछ कल्पना की जाये और उससे इन कथनों का औचित्य सिद्ध किया जाये तो वह उचित प्रतीत नहीं होता है। हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वाल्मीकि की कथा एवं वर्णन स्वरूप सर्वथा सरस और मनोरम है वहीं चम्पू-रामायण का कथा स्वरूप एवं वर्णन चमत्कार एवं अलंकारों से विभूषित है। रस की माधुर्यता भी प्रसंगानुसार रसिकों के आस्वाद का विषय बनती है।

घटनाक्रमों का औचित्य की दृष्टि से साम्य एवं वैषम्य

एक ही कथावस्तु के घटनाक्रमों का यथा कथञ्चित किंचदपि भी परिवर्तन उद्देश्यहीन नहीं हो सकता कहीं न कहीं रचनाकार की भावना उसके अपने भाव तथा नवीनता की ललक उसे ऐसा करने के लिए बाध्य करती है जिससे उनका कहीं तो सटीक औचित्य सिद्ध होता है तो कहीं-कहीं मानव स्वभाव जन्य प्रमाद के होने से अनौचित्य भी दिखलाई देता है।

1- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 8

वाल्मीकि रामायण के अनुगामी भोजराज ने अपने इस चम्पू-रामायण ग्रन्थ मे जिन वाल्मीकि के कथा प्रसंगो से अपने कथा प्रसंगो में विषमता दिखलाई है। उनका भी कुछ औचित्य एवं अनौचित्य अवश्य उपस्थित हुए हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है।

(1) देवताओं के प्रार्थना के समय का जो वर्णन है। उसमें जहाँ वाल्मीकि रामायण में देवता रावण के वध का अनुनय करते हैं वहीं चम्पू-रामायण में जो देवता लोग रावण वध का अनुनय न करके केवल विष्णु के स्वरूप का वर्णन करते हैं।

इस वर्णन में ऐसा प्रतीत होता है कि भोजराज यह बतलाना चाहते हैं कि विष्णु के प्रति सभी देवगण इतने आश्वस्त हैं कि वे मात्र उनके स्तुति में अपनी सार्थकता समझते हैं और उनसे पूर्व में अपनी व्यथा न कहकर अपनी श्रद्धा एवं विश्वास का पूर्ण परिचय देते हैं।

विष्णु के पूछने पर अपनी बात कहते हैं जिसका निराकरण स्वयं रावण वध, ब्रह्मा वचन पूर्णता एवं दशरथ की पुत्रेषणा पूर्ति हेतु अवतार धारण से करते हैं।

इस प्रकार देवताओं की श्रद्धा एवं भक्ति की दृष्टि से उक्त घटना का औचित्य श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

विश्वामित्र द्वारा यज्ञ रक्षण के समय श्रीराम का वाल्मीकि रामायण में समग्र स्वरूप चित्रित हुआ है जहाँ वे राक्षसों की उपस्थिति एवं उनके उपद्रवो को स्वयं जानते हैं किन्तु चम्पू रामायण में इसकी सूचना विश्वामित्र के शिष्यों से प्राप्त होती है।

इस घटना का चित्रण औचित्य की दृष्टि से ठीक नहीं है क्योंकि राम का उदात्त चरित्र सर्वगुण सम्पन्नता कर्त्तव्य के प्रति अनवधानता एवं निष्ठा सर्वत्र प्रसिद्ध है। उसने भिन्न चित्रण या घटनाक्रम का वर्णन यद्यपि उचित नहीं हो सकता है।

(2) भोजराज विष्णु की उत्कृष्टता को सिद्ध करने का अपने वर्णनों में सर्वदा प्रयास किया है। वाल्मीकि रामायण में जहाँ रावण वध का उपाय ब्रह्मा के द्वारा

सुलझाया जाता है। वहीं चम्पू-रामायण में स्वयं विष्णु के द्वारा मानव रूप में अवतार लेने का निश्चय स्वयं विष्णु करते हैं। औचित्य की दृष्टि से इस घटना क्रम का उल्लेख श्लाघ्नीय है। इससे देवों के प्रति विष्णु की कृपा दृष्टि एवं देव परिक्षण रूप कर्तव्य का परिपालन सिद्ध होता है।

(3) वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र के आगमन को राम लक्ष्मण आदि के विवाह विषयक विचार विमर्श के समय दिखलाये गये जिससे यह सिद्ध होता है कि विश्वामित्र का आगमन भी विवाह से सम्बन्धित किसी घटना को पूर्ण करने का संकेत है। उस आधार पर वाल्मीकि रामायण की उस घटना का औचित्य सिद्ध होता है। भोजराज इस प्रकार के किसी भी प्रसंग का उल्लेख न कर अचानक विश्वामित्र के आगमन का प्रसंग उपस्थित करते हैं जो एक अनिश्चित आकस्मिक घटना सी प्रतीत होती है। किसी अन्य घटना की पूर्ति का प्रयोजन नहीं दिखता।

इस परिवर्तन में यद्यपि भोजराज के इस घटना का औचित्य वाल्मीकि के समान महत्वपूर्ण नहीं बन पाया, फिर भी यदि ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद गृहस्थ आश्रम के प्रवेश को ध्यान में रखा जाये तो भोजराज के भी इस घटना क्रम का औचित्य सिद्ध होता है।

(4) गंगावतरण के प्रकरण में सगर के तीस हजार वर्ष तक राज्य करने का उल्लेख साठ हजार पुत्रों के मारे जाने के तथा यज्ञ समाप्त करने के बाद का वाल्मीकि रामायण में है। चम्पू रामायण में पुत्रों के मृत्यु की सूचना के बाद यज्ञ समाप्ति के अनन्तर इतने समय तक जीने का कोई उल्लेख या प्रसिद्ध घटना के विरूद्ध उल्लेख उचति नहीं कहा जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि संक्षेपीकरण के उत्सुकता में भोजराज इस प्रमुख घटना को यथार्थ चित्रित नहीं कर सके।

(5) इसी प्रसंग में वाल्मीकि रामायण में जहाँ गर्वोन्मत्त गंगा शिव सहित पाताल जाने की बात करती है और पुनः कई व़र्षों तक शंकर की जटा में भटकती रहती हैं चम्पू-रामायण में केवल शंकर की जटाओं में भटकने मात्र का ही उल्लेख है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन अवान्तर घटनाओं का नाम मात्र उल्लेख करना ही भोजराज का उद्‌देश्य रहा है जिसके प्रयत्न में वे प्रसिद्ध वस्तु की ही अवहेलना कर देते हैं।

प्रस्तुत घटना में शंकर की जटाओं में भटकने का कारण गंगा का अभिमान ही है। अतः कारण बिना कार्य का उल्लेख व्यतिरेकव्यभिचार दोष से युक्त चम्पू-रामायण का यह वर्णन दूषित होता है जिसे औचित्य की दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता है।

(6) इसी प्रसंग में गंगा के सात धाराओं का विवेचन वाल्मीकि रामायण एवं चम्पू-रामायण में प्राप्त होता है। जहाँ वाल्मीकि रामायण में वे सात धारायें शंकर के द्वारा जटाओं से छोड़े जाते समय होती है और बिन्दुसर सरोवर में पहुँचकर उन सात धाराओं में तीन पूर्व की ओर तीन पश्चिम की ओर जाती हैं सातवीं एक धारा भगीरथ के रथ का अनुकरण करती हैं। शंकर की जटाओं में एक ही धारा का गिरने का उल्लेख है।

चम्पू-रामायण में भी शिव की जटाओं में एक ही धारा गिरने का उल्लेख है। किन्तु जब शिव के जटाओं से उसकी सप्त धारायें निकलती हैं तो वे पहले हिमालय पर्वत के शिखर पर गिरती हैं जिन्हें शिव बिन्दुसर सरोवर में डालते हैं। शेष वर्णन वाल्मीकि के समान है। औचित्य की दृष्टि से भोजराज का वर्णन अधिक व्यवहारिक है। क्योंकि कैलास शिखर में उपस्थित शिव की जटाओं से निकली वे गंगा की सप्त धारायें स्वाभाविक दृष्टि से हिमालय की शिखर पर ही पड़ेगी। इसलिए प्रस्तुत वर्णन हिमालय शिखर का उल्लेख औचित्य की दृष्टि से उत्तम है।

(7) राम राज्याभिषेक की घटना की प्रथम सूचना वाल्मीकि रामायण में कौसल्या को राम के प्रिय चाहने वाले मित्रों के द्वारा प्राप्त होती है और चम्पू-रामायण में यह शुभ संवाद कौसल्या को राम के द्वारा प्राप्त होती है। इस घटना के दोनों स्थलों के वर्णन औचित्य की दृष्टि से शोभन हैं। यदि मित्रों के द्वारा सूचना कौसल्या को प्राप्त होती है। वहाँ अपने उत्कर्ष की स्वयं सूचना न देकर मित्रों के द्वारा सूचित करवाने

से जहाँ राम की शीलता गर्व हीनता सलज्जता सूचित होती है वहीं चम्पू-रामायण के वर्णन के आधार पर अपने प्रिय से ही प्रिय को शुभ सूचना अतिशय प्रीति कारक होती है। यदि इसे दृष्टि में रखा जाये तो माँ की अतिशय प्रसन्नता को लक्ष्य में रखकर श्रीराम द्वारा अपने राज्याभिषेक की सूचना माता कौसल्या को देना औचित्य की दृष्टि से उपयुक्त ही है।

(8) कैकेयी द्वारा वरदान स्वरूप दशरथ से चौदह वर्ष के लिए राम वनवास एवं भरत के लिए राज्याभिषेक माँगने पर दशरथ के शोकार्त स्थिति में चतुर कैकेयी अपने कार्य की सिद्धि के लिए सुमन्त्र को राम को बुला लाने आ आदेश देते हैं। प्रस्तुत घटना क्रम औचित्य की दृष्टि से अच्छा है। वहीं पुत्र वात्सल्य की दृष्टि से चम्पू-रामायण का भी घटना क्रम अनुपेक्षणीय है।

(9) इसी प्रकार इसी वर्णन में कैकेयी राम के आने पर प्रतिज्ञा कराकर उन्हें पिता के शोक के कारण को बतलाती है। किन्तु चम्पू-रामायण में सामान्यतैव पूरी घटना को कैकेयी श्रीराम से कह देती है। इस स्थल में कैकेयी की कुटिलता एवं कूट नीतिज्ञता परिलक्षित होती है। उस आधार पर वाल्मीकि द्वारा रचित घटनाक्रम उचित है।

चम्पू-रामायण के इस घटना के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि कैकेयी श्रीराम के निश्च्छल एवं अकुटिल स्वभाव से सर्वथा परिचित है। इसलिए वह सामान्यतैव दशरथ के शोक का कारण बतला देती है। इस वर्णन से राम की उदात्तता सिद्ध होती है तथा राम के गुणों से कैकेयी की अभिभूतता भी सिद्ध होती है जो औचित्य की दृष्टि से सर्वथा अपेक्षणीय है।

(10) सुमन्त्र वाल्मीकि रामायण श्रृंगवेरपुर लक्ष्मण एवं जानकी के सहित श्रीराम को पहुँचाने के बाद दशरथ श्रीराम का सम्पूर्ण सन्देश सुनाते हैं, साथ ही अयोध्या वासियों के विरहावस्था को भी बतलाते हैं।

किन्तु चम्पू-रामायण में राम के द्वारा कहे हुए किसी सन्देश को न बतलाते हुए उनकी दिनचर्या सुकुमारी सीता की करुणावस्था और लक्ष्मण की कर्तव्यपरायणता का ही वर्णन करते हैं। औचित्य की दृष्टि से यदि चम्पू-रामायण के वर्णन का ध्यान रखा जाये तो प्राथमिक दृष्टि से उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि सर्वप्रथम किसी का सन्देश बताना ही उचित होता है। बाद में भले ही उसके विषय में थोड़ा बहुत बता दिया जाये। किन्तु व्यञ्जनना की दृष्टि से अगर विचार किया जाये तो यह वर्णन सर्वथा उचित प्रतीत होता है क्योंकि दशरथ सुकुमार श्रीराम लक्ष्मण एवं सीता के विषय में वन के कष्टों को लेकर ही अधिक चिन्तित थे। इसलिए श्रीराम के सन्देश की अपेक्षा उन्हें उनके सौविध्य आदि का समाचार सुमन्त्र की दृष्टि में अधिक आवश्यक प्रतीत हुआ। इसलिए उन्होंने राम की दिनचर्या लक्ष्मण की कर्तव्य परायणता से जहाँ दशरथ को आश्वस्त किया। वहीं सीता की करुणावस्था का वर्णन कर किञ्चित विचलित भी किया। किन्तु इससे यह समझा गया कि जब दोनों बन्धु वनजन्य कष्टों से व्यथित नहीं हैं तो सीता जी भी शीघ्र ही वनजन्य निवास के अनुरूप अपने को बना लेंगी। इस दृष्टि से चम्पू-रामायण का यह वर्णन उचित कहा जा सकता है।

(11) वाल्मीकि रामायण में माँ के कुकृत्यों से व्यथित भरत माँ केकेयी को ही सम्बोधित करके उनकी भर्त्सना करते हैं। चम्पू-रामायण में शत्रुघ्न को सम्बोधित करके भरत द्वारा केकेयी के भर्त्सना का वर्णन है जो भरत के हृदयगत ग्लानि एवं माता केकेयी के प्रति अत्यधिक क्रोध को व्यञ्जित करता है। ऐसा प्रतीत होता हे मानो भरत उसके कुकृत्यों से अतीव दुखी हो उससे बात ही न करना चाहते हैं। इससे यह चम्पू-रामायण का वर्णन औचित्य की दृष्टि से श्लाघ्नीय है।

(12) इसी सन्दर्भ में शत्रुघ्न द्वारा मन्थरा की ताड़ना से जहाँ वाल्मीकि रामायण में भरत द्वारा निवारण किया जाता है वहीं चम्पू-रामायण में कौसल्या के द्वारा रोकने का उल्लेख है। यहाँ भोजराज ने इस वर्णन के द्वारा यह व्यञ्जित किया है कि मन्थरा को उसके अपराध का उचित दण्ड उसे मिलना चाहिए सम्भवत: इसलिए भरत उसे नहीं रोकते और कौसल्या द्वारा शत्रुघ्न को रोकने कौसल्या की उस उत्कृष्टता एवं महानता को द्योतित करता है जिसमें महान् व्यक्ति अपने प्रति किये गये अपराधों को क्षमाकर

देता है। इससे इस वर्णन का औचित्य सुन्दर सिद्ध होता है।

(13) खर दूषण से युद्ध के प्रसंग में वाल्मीकि रामायण में प्रथम चौदह राक्षसों का पाश्चात् चौदह हजार राक्षसों का खर द्वारा संप्रेषण एवं उनका संहार है। चम्पूरामायण में एक साथ ही चौदह हजार राक्षसों से एक साथ आने का आक्रमण करने का और उनके वध आदि का उल्लेख औचित्य की दृष्टि से यह ठीक नहीं है। क्योंकि किसी भी शत्रु का बलाबल जाने बिना एकाएक आक्रमण करना राजनीति की दृष्टि से अनुचित कहा जाता है। इसलिए औचित्य की दृष्टि से चम्पू रामायण का वर्णन अधिक उपयक्त नहीं है।

(14) वाल्मीकि रामायण में रावण सीता का अपहरण करके सर्वप्रथम अन्त:पुर में पश्चात् अशोक वाटिका में पहुँचता है। चम्पू–रामायण में सीधे अशोक वाटिका में ही स्थापित करने का उल्लेख है। प्रस्तुत वर्णन में वाल्मीकि का घटना क्रम यद्यपि मानवीय दृष्टि से अधक उचित है। क्योंकि भोग विलासार्थ अपहरण की गई किसी स्त्री का अन्त:पुर में ही निवास देना अधिक उचित प्रतीत होता है, किन्तु बाद यदि वहाँ रहना उपयुक्त न बन पा रहा हो तो उसका अन्यत्र स्थापन करना उचित होता है। रावण अन्तः पुर में ले जाकर सीता से अनेक प्रकार से प्रणय निवेदन करता है अपने कार्य में असफल होने पर तथा शाप के भय से बलात्कार आदि में असमर्थ होने से समय की प्रतीक्षा करने के लिए सीता को अशोक वाटिका में स्थापित करता है। इस दृष्टि से यह वाल्मीकि का वर्णन अधिक उचित है।

भोजराज का भी वर्णन अनुपयुक्त नहीं है उनके वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि रावण अपहरण के समय ही यह अनुभव कर लेता है कि सीता शीघ्र वशवर्तनी नहीं हो सकती। इसलिए उसे अशोक वाटिका में स्थापित किया और वश में करने के लिए अनेक राक्षसियों को लगाया इस दृष्टि से इनका भी वर्णन उचित कहा जा सकता है।

(15) किष्किन्धा काण्ड में वाल्मीकि रामायण में हनूमन् के द्वारा राम लक्ष्मण के विनयपूर्वक परिचय पूछने पर लक्ष्मण सम्पूर्ण वृत्तान्त को बतलाते हैं। चम्पू-रामायण में हनूमान् के प्रश्नों का उल्लेख तो है किन्तु लक्ष्मण के उत्तर देने का नहीं है। यह चम्पू-रामायण का वर्णन कुछ अटपटा सा प्रतीत होता है कि कोई प्रश्न करे और

उसका कुछ भी उत्तर दिये बिना प्रश्नकर्ता को पूरा परिचय अपने आप प्राप्त हो जाये। ऐसा प्रतीत होता है, मानो हनूमान् को ही सीता हरण आदि की घटना प्रसिद्ध होने से केवल इन दोनों भाइयों के अलौकिक स्वरूप देखकर उसका उत्तर पा गये हों और श्रीराम ने ही अपने परम हितैषी एवं भक्त हनूमान् को पहचान लिया हो इसलिए आगे के वर्णन में श्रीराम हनूमान् जी को गले लगा लेते हैं। इस दृष्टि से इस घटना का औचित्य कथमऽपि स्वीकार्य माना जा सकता है।

(16) इसी प्रसंग में बालि के वध के अनन्तर सुग्रीव के अभिषेकार्थ वाल्मीकि रामायण में जहाँ हनूमान् निवेदन करते हैं वहीं चम्पू-रामायण में उक्त प्रार्थन सुग्रीव के द्वारा की जाती है। प्रस्तुत स्थल में कृतज्ञ तथा अनुगृहीत सुग्रीव के द्वारा किष्किन्धापुरी में चलने के लिए तथा राज्याभिषेक करने के लिए प्रार्थना सर्वथा उचित है।

(17) सुग्रीव के राज्याभिषेक के बाद वर्षा ऋतु का समय रहता है। वर्षा काल बीतने के बाद अपनी सेना प्रमुखों के साथ जब सुग्रीव श्रीराम से मिलते हैं तो सीतान्वेषण की आज्ञा सभी को श्रीराम प्रदान करते हैं। चम्पू-रामायण में कृतज्ञ सुग्रीव स्वयंमेव वर्षा ऋतु के बाद शरद् ऋतु के बाद शरद् ऋतु में गीता के अन्वेषण हेतु चारों दिशाओं में सभी को भेजते हैं। एतदर्थ सुग्रीव से राम को कहने की आवश्यकता नहीं है। इस घटनाक्रम के उल्लेख से जहाँ सुग्रीव के कृतज्ञता एवं कर्तव्य परायणता द्योतित होती है वहीं श्रीराम की उत्तमता भी सिद्ध होती है। इस दृष्टि से इस घटना का वर्णन अपने औचित्य का सर्वथा परिपालन करता है।

साम्य एवं वैषम्य की दृष्टि से उपकथाओं का विवेचन

वाल्मीकि रामायण में कई अवान्तर कथाओं का वर्णन है जिनमें घटनाविशेष अथवा पात्रविशेष का पूर्ण परिचय दिया गया है। ये उपकथायें लगभग सभी काण्डों में प्राप्त होती है। ये उपकथायें कथानक की जहाँ संवर्धिका है वहीं कई ऐतिहासिक तत्वों के जानकारी की प्रमुख स्त्रोत है।

वाल्मीकि रामायण में सभी उपकथायें विशद् रूप में चित्रित हुई। चम्पू-रामायण-कार ने इन उपकथाओं का कहीं यथासम्भव विशद् रूप में तो कहीं संक्षेप रूप

में तो कहीं नाममात्र संकीर्तन से ही इनका उल्लेख किया है। कुछ ऐसी भी उपकथायें हैं जिनका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है चम्पू-रामायण में नहीं है अथवा चम्पू-रामायण में है वाल्मीकि रामायण में नहीं है। इन सभी उपकथाओं का विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड -

ऋष्यश्रृंग वृत्तान्त, काम दहन-कथा, मलदा और करुष-वृत्तान्त, ताटका वृत्तान्त, सिद्धाश्रम-वृत्तान्त (बालिनिग्रह-कथा) ब्रह्मदत्तोत्पत्ति-कथा, गाधि की उत्पत्ति कथा, सत्यवती-वृत्तान्त, गंगोत्पत्ति-कथा (या गंगा स्वर्ग-गमन-वृत्तान्त) कार्तिकेयोत्पत्ति-कथा, गंगावतरण-कथा, (भागीरथी-उपाख्यान) समुद्र मन्थन-कथा, विशाला-नगरी वृत्तान्त, अहल्या-कथा, विश्वामित्र-कथा, त्रिशंकु-कथा, अम्बरीष-कथा, विश्वामित्र मेनका वृत्तान्त, रम्भा शाप-वृत्तान्त, धनुष-वृत्तान्त, परशुराम-कथा।

अयोध्याकाण्ड -

कैकेयी की माता का वृत्तान्त, श्रवण कुमार वृत्तान्त, सीता स्वयंवर-वृत्तान्त।

आरण्य काण्ड -

पञ्चाप्सर तीर्थ एवं माण्डकर्णिकामुनि-कथा, इल्वलोपाख्यान, विराध-वृत्तान्त, जटायु-वंश-वृत्तान्त, (जीवोत्पत्ति-कथा) कबन्ध की आत्म-कथा।

किष्किन्धा काण्ड -

सुग्रीव बालि विरोध-वृत्तान्त, बालि को मतंग का शाप-दान, स्वयंप्रभा-वृत्तान्त, सम्पाति की आत्मकथा, हनुमदुत्पत्ति-कथा।

सुन्दर काण्ड -

मैनाक पर्वत-वृत्तान्त, त्रिजटा स्वप्न-वृत्तान्त, काक-कथा।

युद्ध काण्ड -

रावण शाप वृत्तान्त, मरुकान्तर-वृत्तान्त, इन्द्रजीत-माया-रहस्य-वृत्तान्त।

ऋष्यश्रृंग वृत्तान्त -

पुत्रहीन दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ करना चाहते हैं और उसका संपादक ऋषि के रूप में श्रृंगी ऋषि महामंत्री सुमन्त्र के सुझाव से बुलाये जाते हैं। इन कश्यप पुत्र विभाण्डक के यशस्वी पुत्र श्रृंगी ऋषि का सम्पूर्ण विवरण एक कथानक के रूप में वाल्मीकि रामायण में दो सर्गों में वर्णित है जिसका विवेचन मात्र ढाई पंक्तियों में भोजराज ने प्रस्तुत कथानक का केवल परिचय दिया है।

इससे यह ज्ञात होता है कि भोजराज को इस कथा का परिचय मात्र देना ही उद्देश्य था न कि सम्पूर्ण विवरण जबकि वाल्मीकि रामायण में एक विशद् महाकाव्य होने के नाते पूर्ण विवरण देना आवश्यक था।

कामदहन-वृत्तान्त -

गंगा और सरयू के संगम के समीप राम और लक्ष्मण जब विश्वामित्र के साथ पहुँचते हैं तो वहाँ अनेक तपस्वी ऋषियों के कई आश्रमों को देखते हैं। उनके विषय में परिचय प्राप्त करना चाहते हैं। उसी दौरान अंगदेश के विषय में बताते समय काम दहन की कथा का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में हुआ है[1]। जिससे इस कथानक का सामान्य उल्लेख हुआ।

चम्पू-रामायण में कामदेव के दहन की कथा के विषय में केवल एक पद्य प्राप्त होता है[2] जिसमें कामदेव को भस्म क्यों किया गया है और उसका नाम अनंग कैसे पड़ा इसका उल्लेख नहीं है। केवल संक्षेप में ही अंग देश के नामकरण का उल्लेख करते हुए इस कथा का विवरण प्रस्तुत हुआ है।

मलदा और करुष-वृत्तान्त -

मलदा और करुष ये दोनों वन हैं जो विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण के जाते हुए सरयू के उस पार हैं जिनकी कथा का विवरण वाल्मीकि रामायण में प्रस्तुत

1- वाल्मीकि रामायण 1/23/10-15 श्लोक

2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक 38.

हुआ है।[1] ये दोनों वन पहले देवलोक के समान नगर थे जिन्हें ताटका ने उजाड़ दिया था।

चम्पू-रामायण में इनकी कथा तो है किन्तु इतने संक्षेप में आयी है कि इन्द्र के द्वारा प्रदत्त वरदान का भी उल्लेख नहीं हो पाया है।[2]

ताटका-वृत्तान्त -

सुकेतु यक्ष की पत्नी मारीच एवं सुबाहु की माता ताटका की सम्पूर्ण कथा का विवरण वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है।[3]

चम्पू-रामायण में उक्त कथा का विवरण यद्यपि संक्षेप में तो है, परन्तु दोनों के विवरण में पूर्ण साम्य है।[4]

सिद्धाश्रम-वृत्तान्त -

इसकी कथा में विश्वामित्र जिस आश्रम में यज्ञ एवं तपस्या करते थे। उससे सम्बन्धित बलि निग्रह की कथा का विवरण है जिसमें वामन रूप धारण कर विष्णु के द्वारा बलि को बन्दी बनाया गया था, पुनः उनसे स्वर्गादि लोकों को छीनकर बलि को पाताल लोक में भेज दिया था।[5] यह कथा सामान्य रूप से वाल्मीकि रामायण में आयी है।

चम्पू-रामायण में उक्त कथा का उल्लेख अति संक्षेप में हुआ है। इसके कारण वाल्मीकि रामायण सदृश्य कश्यप एवं अदिति की तपस्या एवं वरप्राप्ति आदि का उल्लेख नहीं हो पाया।[6]

1- वाल्मीकि रामायण 1/24/17-22

2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 44

3- वाल्मीकि रामायण 1/25/4-14

4- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक 39 एवं पृष्ठ 45

5- वाल्मीकि रामायण 1/29/2-22

6- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 45

ब्रह्मदत्त की कथा -

यह कथा गाधि उत्पत्ति कथा के प्रसंग में आयी है।[1] जिसमें महर्षि चूलि तथा सोमदा गन्धर्वी की चर्चा है जिसमें ब्रह्मदत्त नामक महर्षि चूलि द्वारा मानस पुत्र गन्धर्वी को प्रदान किया गया है। इस कथा का उल्लेख चम्पू-रामायण में बिल्कुल नहीं है, केवल चूलि पुत्र तथा सोमदा पुत्र राजा ब्रह्मदत्त का स्मरण मात्र है।[2]

गाधि उत्पत्ति कथा -

इसमें ऋषि विश्वामित्र ने अपने सम्पूर्ण राजवंश की चर्चा की है जिसमें गाधि को इन्होंने अपने पिता के नाम से स्मरण किया है।[3]

चम्पू-रामायण में संक्षेप में ही यह कथा यद्यपि प्रस्तुत हुई है फिर भी संक्षेपीकरण के प्रयास में कोई अंश इसका बाधित नहीं हुआ है।[4]

गंगोत्पत्ति वृत्तान्त -

इस कथा में गंगा की उत्पत्ति की सम्पूर्ण कथा वर्णित है।[5]

चम्पू रामायण में यह सम्पूर्ण कथा संक्षेप रूप में प्राप्त होती है[6] जो वाल्मीकि रामायण के कथानक से पर्याप्त साम्यता रखती है।

कार्तिकेय वृत्तान्त -

इसमें शिव पार्वती के विवाह एवं कार्तिकेय की उत्पत्ति से लेकर तारकासुर नामक दैत्य के संहार आदि का कथानक विस्तृत रूप में प्रस्तुत हुआ है।[7]

1- वाल्मीकि रामायण 1/33/11-19
2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 57
3- वाल्मीकि रामायण 1/32/1-10/1/33 सम्पूर्ण सर्ग
4- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 56-57
5- वाल्मीकि रामायण 1/35/14-23
6- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक 55, 56, 57
7- वाल्मीकि रामायण 1/36/6-1/37

चम्पू-रामायण में लगभग उसी रूप में यह कथा प्राप्त होती है[1] जिसका विवरण पाँच श्लोकों मे हुआ है।

गंगावतरण की कथा -

गंगा स्वर्ग लोक से इस मनुष्य लोक में कैसे आयी। इस प्रसंग में राजा सगर के वृत्तान्त के साथ विस्तृत रूप में लगभग छः सर्गों में वाल्मीकि रामायण में वर्णित हुआ है।

चम्पू-रामायण में यह कथा संक्षेप में प्राप्त होती है। इस कथा का प्रारम्भिक अंश सगर के केशिनी एवं समुमति के पुत्रोत्पत्ति से लेकर अश्वमेध यज्ञ आदि के अनुष्ठान इन्द्र द्वारा अश्वमेधीय अश्व का अपहरण उसके अन्वेषण के लिए साठ हजार पुत्रों का प्रस्थान का विवरण दोनों में लगभग समान है किन्तु वाल्मीकि रामायण के उस प्रसंग का उल्लेख नहीं है जिसमें पृथ्वी के खोदने का और उनके इस कार्य से डरे देवताओं गन्धर्वों असुरों आदि के द्वारा ब्रह्मा की स्तुति तथा कपिल के क्रोधाग्नि से उन साठ हजार राजकुमारों के जलने की ब्रह्मा द्वारा प्राप्त सूचना का विवरण नहीं है। किन्तु देवताओं के द्वारा ब्रह्मा से आश्वासन प्राप्त कर चले जाने पर और इधर पृथ्वी के खोदते हुए सगर पुत्रों के कपिल आश्रम में पहुँचकर अश्वमेधीय अश्व को प्राप्त करना और क्रुद्ध होकर उन पर प्रहार करने के लिए उद्धत होना, उनके क्रोधाग्नि से जलना आदि की कथा जो वाल्मीकि रामायण में वर्णित है। उसका उल्लेख चम्पू-रामायण में संक्षेप में ही प्राप्त है। अपने पुत्रों को बहुत दिनों के बाद भी लौटते न देख राजा सगर पौत्र अंशुमान को भेजते हैं जो खोजता हुआ जहाँ कपिल के क्रोधाग्नि से सगर पुत्र जले हुए थे, वहीं पहुँचता है और अपने मामा गरुड़ के निद्रेशानुसार गंगा जल से पितृव्यों के तपर्ण की सम्मति प्राप्त कर यज्ञीय घोड़ा को लेकर राजा सगर के पास जाता है और सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाता है। यह कथा चम्पू-रामायण में चार श्लोकों में यथावत् वर्णित है। इसके बाद की अंशुमान दिलीप आदि की कथा का उल्लेख जो वाल्मीकि

---

1 - चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक 58 - 62

रामायण में तथैव भागीरथ के द्वारा तपस्या करना एवं गंगा को धारण करने के लिए शिव की आराधना करना यह सम्पूर्ण कथा जो वाल्मीकि रामायण में वर्णित है उसमें कुछ आंशिक रूप में तो कहीं संपूर्ण रूप में वर्णित हुई है।

यह कथा वाल्मीकि रामायण में लगभग छः सर्गों[1] में आयी है। जिसका सम्पूर्ण विवरण चम्पू-रामायण में 24 श्लोकों में वर्णित है।[2]

समुद्र मंथन -

समुद्र मंथन की कथा का विवरण विशाल नामक नगरी से सम्बन्धित वृत्तान्त के प्रसंग में आया है जो वाल्मीकि रामायण में विस्तृत रूप में वर्णित है[3] किन्तु चम्पू-रामायण में सम्पूर्ण कथा का नाम मात्र में संकेत केवल डेढ़ पंक्ति के गद्य में कर दिया गया है।[4]

विशाला नगरी-वृत्तान्त -

विशाला नगरी वृत्तान्त की कथा मारुतों के जन्म से सम्बन्धित है। यहाँ कश्यप पत्नी देवी दिति ने पुत्र प्राप्त हेतु तपस्या की थी और इन्द्र ने उसकी सेवा किया था। इस कथा का विवरण वाल्मीकि रामायण[5] में लगभग डेढ़ सर्ग में प्राप्त होता है। यह सम्पूर्ण कथानक अत्यन्त संक्षेप में किन्तु मुख्य विवरण के साथ चम्पू-रामायण[6] में प्रस्तुत हुआ है। अतः कथानक की दृष्टि से दोनों में समानता कही जा सकती है।

अहल्या कथा -

मिथिलापुरी के एक वन में निर्जन स्थल पर रमणीय आश्रम को देखकर श्रीराम एवं लक्ष्मण के पूछने पर गौतम पत्नी अहल्या का वृत्तान्त आया है। चम्पू

1- वाल्मीकि रामायण 1/38/1 से 1/44/19 तक
2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 65 से 88
3- वाल्मीकि रामायण 1/45/15 से 45 श्लोक
4- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 73
5- वाल्मीकि रामायण 1/46 से 1/47 के 1-12 तक
6- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 73-74

रामायण[1] में यह सम्पूर्ण वृत्तान्त यद्यपि संक्षेप में वर्णित है, तथापि वाल्मीकि रामायण[2] के वर्णन से पर्याप्त साम्यता रखता है।

विश्वामित्र कथा -

विश्वामित्र से सम्बन्धित उनके ब्रह्मर्षित्व प्राप्त की उनके कठोर तपस्या की सम्पूर्ण कथा वाल्मीकि रामायण[3] में जनक पुरोहित शतानन्द के द्वारा राम-लक्ष्मण को बताई गई है जो लगभग सात वर्गों में विभक्त यह सम्पूर्ण कथा लगभग समान रूप में ही किन्तु संक्षेप में वर्णित है। इसी के अन्तर्गत त्रिशंकु की भी कथा इसी में समाहित है। यह सम्पूर्ण कथानक चम्पू-रामायण[4] में संक्षेप में ही लगभग वाल्मीकि रामायण जैसा ही प्रस्तुत हुआ है।

अम्बरीष की कथा[5] विश्वामित्र मेनका[6] की कथा रम्भा शाप[7] की कथा ये सम्पूर्ण कथायें विश्वामित्र के कथा के अन्तर्गत आती है। जिनका विवरण चम्पू-रामायण में भी उसी रूप में किन्तु संक्षेप में प्राप्त होता है।

धनुष वृत्तान्त -

शिव धनुष के प्राप्ति का वृत्तान्त वाल्मीकि रामायण में वर्णित है। उसी में सीता की उत्पत्ति का भी प्रसंग आया है।[8] चम्पू-रामायण[9] में यह वर्णन केवल संकेत के रूप में ही है। कथा का थोड़ा भी वर्णन प्रस्तुत नहीं हुआ है।

1- चम्पू-रामायण श्लोक संख्या 90 से 92 तक

2- वाल्मीकि रामायण 1/45/15 - अन्तिम तक तथा 1/49/1 से 10 तक

3- वाल्मीकि रामायण 1/51/18 से 1/57/9

4- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 95-97 इनके अन्तर्गत गद्य खण्ड

5- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 83-84

6- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 85

7- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 98

8- वाल्मीकि रामायण 1/66/के 8 से 26 श्लोक

9- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 90

परशुराम कथा -

रामायण में परशुराम का प्रवेश धनुष भंग तथा विवाह होने के बाद होता है। इनका सम्पूर्ण परिचय कथानक के रूप में वाल्मीकि रामायण[1] में पूर्ण रूप से प्राप्त होता है।

चम्पू-रामायण[2] में यह कथानक नहीं है अत्यन्त संक्षेप में केवल क्षत्रिय वध का ही उल्लेख है।

अयोध्या काण्ड में कैकेयी के वरदान की अवस्था में सुमन्त्र द्वारा कैकेयी के पिता एवं माँ की कथा का तथा राजा दशरथ के युवाकाल के श्रवण कुमार के वध की कथा और अत्रि के आश्रम में अनुसुइया से वार्तालाप के प्रसंग में सीता स्वयंवर की कथा का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है। इनमें पूर्वोक्त दो कथाओं का विवरण चम्पू-रामायण में तथैव किन्तु संक्षेप में प्राप्त होता है। किन्तु अन्तिम कथा की चर्चा चम्पू-रामायण में नहीं है।

आरण्य काण्ड में वाल्मीकि रामायण में पञ्चाप्सर तीर्थ एवं माण्डकर्णि मुनि की कथा जिसे धर्मवृद्ध नामक मुनि राम लक्ष्मण को सुनाते हैं। इल्वल एवं वातापि नामक दो महा असुरों की कथा जो मुनियों को भोजन देकर पेट फाड़कर उनकी हत्या करते थे उनकी कथा, विराध, जटायु तथा कबन्ध की कथा का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

चम्पू-रामायण में पञ्चाप्सर तीर्थ एवं माण्डकर्णि मुनि की कथा का विवरण नहीं है। इल्वल एवं वातापि की कथा का भी कोई परिचय नहीं है। केवल उदाहरण के तौर पर वातापि का कथन है। विराध वृत्तान्त में विराध के माता-पिता का नामोल्लेख तो नहीं है। किन्तु उसकी पूर्व कथा एवं कुबेर शाप का वृत्तान्त संक्षेप में निबद्ध है। जटायु के विषय में केवल सांकेतिक परिचय ही आलंकारिक भाषा में दिया गया है।

1- वाल्मीकि रामायण 1/75

2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 97

पूरा परिचय प्राप्त नहीं होता है। कबन्ध की कथा का उल्लेख संक्षेप में ही प्राप्त होता है जिसमें स्थूलशिरा के द्वारा प्रदत्त शाप का एवं दनुपुत्र होने का संकेत तो प्राप्त होता है। किन्तु इन्द्र के द्वारा उसके भयंकर स्वरूप से सम्बद्ध वृत्तान्त का एवं कबन्ध द्वारा अपने से सम्बन्धित वृत्तान्त का विवरण प्राप्त नहीं होता इस दृष्टि से इस कथानक में अर्द्ध साम्यता मानी जा सकती है।

किष्किन्धा काण्ड से सम्बन्धित वाल्मीकि रामायण में पाँच कथायें प्राप्त होती हैं जिनमें सुग्रीव बालि के विरोध का वृत्तान्त, बालि को मतंग ऋषि के शाप का वृत्तान्त, स्वयंप्रभा वृत्तान्त, सम्पाति पक्ष दाह का वृत्तान्त एवं हनूमान् की उत्पत्ति का वृत्तान्त है।

बालि सुग्रीव के विरोध का वृत्तान्त वाल्मीकि रामायण में जिस प्रकार वर्णित हुआ है। चम्पूरामायण में भी कुछ संक्षेप में परन्तु सामान्यतया उसी रूप में वर्णित हुआ है।

दुन्दुभी नामक पराक्रमी राक्षस के द्वारा युद्ध के समय उसके शव मुख से मतंग ऋषि के आश्रम में रूधिर के गिर जाने से शाप की कथा आयी है। चम्पूरामायण में भी संक्षेप में इस का विवरण प्राप्त होता है।

स्वयंप्रभा का वृत्तान्त जो वाल्मीकि रामायण में सम्पूर्ण विवरण के साथ वर्णित है। उसका केवल कुछ ही अंश का संकेत मात्रा ही चम्पूरामायण में प्राप्त होता है। उस दृष्टि से यह कथा वाल्मीकि रामायण से कुछ ही साम्यता रखती है।

जटायु के भाई सम्पाति के पंखों के जलने की कथा का विवरण वाल्मीकि रामायण में विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। इस कथा में सम्पाति के एवं जटायु के आकाश में उड़ने की उसके पंख जलने की कथा का विवरण चम्पूरामायण में प्राप्त नहीं होता, केवल एक पद्य में नाम मात्र का हल्का सा संकेत प्राप्त होता है। इसके अनन्तर सम्पाति के विन्ध्याचल में गिरने चन्द्रमा ऋषि से पोषित होने तथा राम के दूतों को उपदेश करने पर पंख उगने आदि का विवरण वाल्मीकि रामायण में विशद् रूप से वर्णित है।

चम्पूरामायण में इसका भी वर्णन मात्र एक पद्य से संक्षेप में प्राप्त होता है। इस दृष्टि से इस कथा की अर्द्ध साम्यता ही प्राप्त होती है।

समुद्र लंधन के समय जाम्बवान् के द्वारा हनूमान् की उत्पत्ति की कथा सुनायी जाती है जिसका विशद् रूप में उल्लेख वाल्मीकि रामायण में हुआ है। चम्पूरामायण में कथा का उल्लेख न होकर केवल माता एवं पिता के नामों का विश्लेषण के रूप में आन्जनेय तथा प्रभंजन संजात इन दो शब्दों का उल्लेख हुआ है तथा इनके बल प्राप्ति कथा का संक्षेप में विवरण एक पद्य में चम्पूरामायण में प्राप्त होता है।

सुन्दर काण्ड में मैनाक पर्वत, त्रिजटा स्वप्न तथा इन्द्र पुत्र जयन्त काक से सम्बन्धित कथायें तीन उपकथायें प्राप्त होती हैं। उन तीनों कथाओं का सामान्य परिचय वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है। मैनाम पर्वत का वृत्तान्त हनूमान् के द्वारा समुद्र लंघन के समय का है जिसमें वह अपनी कहानी बतलाता है। त्रिजटा स्वप्न

का वृत्तान्त अशोक वाटिका में सीता के निवास करते समय अन्य राक्षसियों के द्वारा बारम्बार मानसिक कष्ट प्रदान करते रहने पर त्रिजटा नाम की एक राक्षसी उन सब राक्षसियों को रोककर अपने स्वप्न का वर्णन विस्तृत रूप में करती है/तथैव जब हनूमान् सीता से निवेदन कर अभिज्ञान के रूप में कुछ वस्तु एवं उनका सन्देश प्राप्त करना चाहते हैं। इसी प्रसंग में चूड़ामणि के साथ-साथ इन्द्र पुत्र जयन्त जिसने कौए के वेष में आकर सीता का अपमान किया था। उससे सम्बन्धित वृत्तान्त प्राप्त होता है।

चम्पू-रामायण में इन तीनों वृत्तान्तों का विवरण प्रस्तुत हुआ है। मैनाक पर्वत सम्बन्धी वृत्तान्त इन्होंने मात्र एक ही पद्य में अपने चतुर लेखनी से निबद्ध कर दिया है जिसमें वाल्मीकि रामायण वर्णित उक्त कथा के सभी अंशों का समावेश हुआ है। त्रिजटा स्वप्न का भी वृत्तान्त यद्यपि वाल्मीकि रामायण में विस्तृत रूप में आया है। इसमें चम्पू-रामायणकार ने स्वप्न की कथा की केवल सूचना ही दी है। वह स्वप्न कैसा था ? इसका विवरण नहीं दिया। इस दृष्टि से इस स्थल में असमानता कही जा सकती है। काक कथा का वृत्तान्त चम्पू-रामायण में लगभग सम्पूर्ण रीति से संक्षेप में प्रस्तुत हुआ है। अतः दोनों के वर्णन में पर्याप्त साम्यता है।

युद्ध काण्ड में रावण शाप वृत्तान्त, मरुकान्तर, वृत्तान्त, इन्द्रजित माया रहस्य वृत्तान्त ये तीन उपकथायें प्राप्त होती हैं। महापार्श्व के साथ वार्तालाप के प्रसंग में जब रावण को महापार्श्व सीता के बलात् उपभोग की सलाह देता है। उस समय रावण अपने शापों के विषय में बतलाया है जिनका विशद् विवरण वाल्मीकि रामायण में आया है। चम्पू-रामायण में शाप सम्बन्धित वृत्तान्त केवल संकेत रूप में ही प्राप्त होता है। मरुकान्तर वृत्तान्त उस समय प्राप्त होता है जब श्रीराम समुद्र से मार्ग प्राप्त करने के लिए तीन दिन तक समुद्र की आराधना करते हैं और उसके न प्रसन्न होने पर उसे दण्ड देने में ब्रह्मास्त्र का अनुसंधान करते हैं। भयभीत समुद्र प्रकट हो राम की स्तुति करके अमोघ बाण को छोड़ने के लिए जिस प्रदेश का निर्देश करता है। वहाँ राम के बाण को छोड़ने पर उस स्थान का नाम मरुकान्तर होता है। वाल्मीकि रामायण में यह कथा विशद् रूप में प्राप्त होती है। चम्पू-रामायण में इसका केवल संकेत ही प्राप्त होता है। इन्द्रजीत भीषम मायावी योद्धा था। अनेक प्रकार की मायायें

रचता था। युद्ध के समय इन मायाओं का रहस्य एवं वृत्तान्त विशद् रूप में वाल्मीकि रामायण में वर्णित है।

चम्पू- रामायण में भी इन कथाओं का संकेत यथा स्थान प्राप्त होता है। किन्तु कथाओं का विस्तार नहीं है।

अनेक कथायें वाल्मीकि रामायण में ऐसी हैं। जिनका विस्तृत विवरण न होकर संकेततः परिचय ही आया है। यथा- रेणुका वध व्रत्तान्त, राजा शिवि, अलर्क सागर वेलानियमन, असमञ्जस निर्वासन, आदि वृत्तान्त उल्लेखनीय है।

चम्पू-रामायण में भी यथा प्रसंग इन कथाओं का संकेत प्राप्त होता है।

समीक्षा -

चम्पू-रामायण यह ग्रन्थ वस्तुतः राम कथा के मुख्य कथानक को ही पूर्णतया यथा सम्भव प्रकाशित करता है। इसलिए उस कथानक से सम्बन्धित अन्य जो उपकथायें हैं उन उपकथाओं में उन्हीं का पूर्ण परिचय चम्पूकार ने दिया है जिसका मुख्य कथानक से अतिशय सम्बन्ध है। जिन उपकथाओं का मुख्य कथानक से सामान्य सम्बन्ध है। उनका कुछ संक्षेप में ही परिचय दिया गया है। कुछ ऐसी भी उपकथायें हैं जिनका मुख्य कथानक से अति सामान्य सम्बन्ध है। उनका संकेत मात्र ही चम्पू-रामायण में दिया गया है। कुछ ऐसी भी उपकथायें हैं जिनका संकेत भी चम्पू-रामायण में प्राप्त नहीं होता। इनमें ब्रह्मदत्तोत्पत्ति कथा, सत्यवती वृत्तान्त, सीता स्वयंवर कथा, परशुराम वृत्तान्त, पञ्चाप्सर तीर्थ एवं माण्डकर्णि मुनि कथा, इल्वलोपाख्यान, त्रिजटा स्वप्न वृत्तान्त इन उपकथाओं में ब्रह्मदत्तोत्पत्ति तथा सत्यवती वृत्तान्त का निर्देश संकेत मात्र भी चम्पू - रामायणकार ने नहीं किया तथैव अन्य घटनाओं की भी यही स्थिति है। किन्तु परशुराम वृत्तान्त इल्वल वृत्तान्त एवं त्रिजटा स्वप्न वृत्तान्त की जो चर्चा है, उससे भी उनके कथाओं के विषय में सांकेतित रूप भी प्राप्त नहीं होता है। केवल प्रसंग आदि चर्चा है। जैसे- परशुराम के विषय में इतना ही कथन है। 'क्षत्रपूर्ण गर्वसर्वंकषपरश्वधधाराधीन-रूधिरधाराकल्पितपितृतर्पणम्[1]।' इस कथन से परशुराम सम्बन्धित किसी भी कथा का

1- चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 97

स्पष्टीकरण नहीं होता तथैव वातापि एवं इल्वल नामक दो बन्धुओं की जो कथा है उसकी चर्चा अगस्त्य आश्रम के वर्णन में केवल 'वातापिदानवदशामुपदेशयन्ति' इतना ही उल्लेख है। इससे भी किसी कथा का स्वरूप प्रकट नहीं होता इसी तरह 'दु:स्वप्नमेकत्रिजटाजगाद्' इस कथन से वह दु:हस्वप्न क्या था क्या उसका स्वरूप था यह कथमऽपि स्पष्ट नहीं है।

ऐसा प्रतीत होता है कि भोजराज ने संक्षेप के प्रयास में कुछ आवश्यक वर्णनों का जहाँ अवहेलना की है वहीं आवश्यक उपकथाओं का वर्णन न कर सहृदय पाठक को असन्तुष्ट किया है। पूर्वोक्त अवर्णित उपकथाओं में सीता स्वयंवर वृत्तान्त इल्वलोवृत्तान्त त्रिजटा स्वप्न वृत्तान्त तथैव परशुराम वृत्तान्त का उल्लेख किसी न किसी रूप में आवश्यक है। क्योंकि इन उपकथाओं का भी मुख्य कथानक से सहैतुक सम्बन्ध है। सीता रामायण की कथाओं की नायिका हैं। अत: उसके विषय में प्रत्येक सहृदय पूर्ण जानकारी अवश्य चाहता है। उसे न देना उसका अपमान है। इसी तरह से इल्वलोपाख्यान परम तेजस्वी महर्षि अगस्त्य की कीर्ति से सम्बन्धित है। महर्षि अगस्त्य राम के रावण वध हेतु अनेक प्रभावकारी अस्त-शस्त्रों को प्रदान करते हैं। इसलिए उस कथा का भी न होना औचित्य की दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता है। त्रिजटा के स्वप्न का अकथन उस प्रसंग को ही प्रभाव रहित बना देता है। वस्तुत: राक्षसियाँ उसी स्वप्न को सुनकर ही डरकर सीता प्रताड़ना से अलग होती है। अत: उस स्वप्न का विवरण देना अत्यन्त आवश्यक था। तथैव क्षत्रिय वंश के नाश करने वाले परशुराम का विवरण भी देना आवश्यक था। क्योंकि क्षत्रियों से उनकी शत्रुता कैसे हुई ? इसका ज्ञान किये बिना ही परशुराम के प्रति श्रद्धा एवं उनसे भय का स्वरूप ज्ञात नहीं हो पाता। एतदर्थ भी इनका उल्लेख आवश्यक है।

ब्रह्मदत्त वृत्तान्त, सत्यवती वृत्तान्त एवं पञ्चाप्सर तीरथ आदि वृत्तान्त यद्यपि आवश्यक तो है, किन्तु मुख्य कथानक से इनका साक्षात् सम्बन्ध नहीं है। इसलिए इनके न देने पर भी पाठक की जिज्ञासा उत्थित नहीं होती है। इसलिए उनके न देने से कथा विस्तार में कोई रूकावट नहीं होती।

रामायण के उपकथाओं की प्रस्तुति भोज ने काव्यात्मक रीति से किया है। वाल्मीकि की अपेक्षा चम्पू-रामायण का कथानक जैसे संक्षिप्त है उसी के अनुसार उपकथाएँ भी संक्षिप्त रूप में उपस्थापित हुई हैं।

चम्पू-रामायण में वाल्मीकि रामायण के समान विस्तृत उपकथाओं के वर्णन में मुख्य कथानक का प्रवाह अवरुद्ध नहीं दिखाई देता। इस विषय में गंगावतरण एवं विश्वामित्र का कथानक अपवाद कहा जा सकता है। परन्तु इसमें भी काल्पनिक काव्य प्रतिभा की चारुता अवलोकनीय है।

वाल्मीकि रामायण के समान चम्पू-रामायण में भी उपकथाओं का विवरण प्राकृतिक शोभा विशेष स्थलों नगरों आदि के परिचय के प्रसंग में हुए। इस प्रसंग में मलदा करुष वृत्तान्त, विशाला नगरी वृत्तान्त, सिद्धाश्रम वृत्तान्त उल्लेखनीय है। कुछ ऐसी भी उपकथायें हैं। जिन उपकथाओं को उपदेशात्मक दृष्टिकोण से रखा गया है। जिनमें दृष्टान्त रूप में कथित वृत्तान्त प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त भी कैकेयी माता वृत्तान्त अहल्या एवं त्रिशंकु का वृत्तान्त दुराग्रह पथ भ्रष्टता योग्यता से अधिक पद लिप्सा आदि के दुष्परिणामों से परिचित कराने का उद्देश्य इन उपकथाओं का रहा है जिनसे उक्त अवगुणों से निवृत्ति की शिक्षा मिलती है। ऋषिश्रृंग वृत्तान्त, अम्बरीष एवं विश्वामित्र वृत्तान्त व्यक्ति विशेष के महिमा पराक्रम एवं दृढ़ निश्चय से परिश्रम के द्वारा सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। इसकी शिक्षा प्राप्त होती है। कुछ ऐसे भी वृत्तान्त है जिनका ऐतिहासिक महत्व है जिनमें समुन्द्र मन्थन, हनुमत् उत्पत्ति, परशुराम कथा त्रिशंकु कथा उल्लेखनीय है।

पञ्चम अध्याय

पात्रालोचन

काव्य का प्रमुख उद्देश्य सहृदयों को रसास्वादन कराना है। कथानक को एक सुव्यवस्थित रूप देते हुए उसे पूर्णता प्रदान करने का मुख्य कार्य पात्रों का होता है। पात्र रस के विभाव-अनुभाव, संचारीभाव के मूल कारणों में विभाव माने जाते हैं। विभाव के दो भेद होते हैं। आलम्बन और उद्दीपन। नायकादि पात्रों का आलम्बन लेकर ही रसोद्गम होता है। इसलिए नायक आदि पात्र आलम्बन विभाव माने जाते हैं[1]। इसलिए रस के अभिव्यक्ति में पात्रों की प्रमुख भूमिका होती है। पात्रों में नायक का प्रमुख स्थान होता है। क्योंकि काव्यों का प्रमुख कथानक नायक को ही मुख्य स्तम्भ मानकर आगे चलता है।

नायक आदि पात्रों का चयन कथानक को लेकर के होता है। कथानक में जिस रस की प्रधानता होती है लगभग उसी रस को अनुरूप नायक आदि पात्रों की स्थिति बनती है क्योंकि जब आलम्बन ही तदनुरूप नहीं होगा तो उस रस की अभिव्यक्ति समुचित नहीं होगी। इसलिए नायक आदि का चयन तदनुरूप आवश्यक होता है। नायकों का सामान्य गुण साहित्य शास्त्रों में वर्णित है। त्यागी, पुण्यशील, कुशल, कुलीन, सम्पत्ति वाला सुन्दर युवा उत्साह से युक्त प्रत्येक कार्य को शीर्घ एवं सुन्दर रीति से करने वाला, अधिकाधिक लोगों को अपनी ओर आकृष्ठ करने वाला तेजस्वी, निपुण सच्चरित्र, विनीत, प्रियवादी, वाक्पटु, प्रसिद्ध वंश उत्पन्न, स्थिर, बुद्धि वाला, दृढ़ शास्त्रज्ञ, धार्मिक व्यक्ति, नायक माना जाता है।[2] नायकों के कई भेद किये गये हैं जिनमें मुख्य

1- आलम्बनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।
आलम्बनं नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात् ।। 29 ।।
(साहित्य दर्पण तृतीय परिच्छेद श्लोक संख्या 29)

2- क- त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्त लोकस्तेजो वैदग्ध्य शीलवान्नेत।। 31 ।। (सहित्य दर्पण 3/31)

ख- नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियवदः।।
रक्त लोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़ वंशः स्थिरोयुवा ।। 1 ।। (दश रूपक 2/1)

ग- बुद्धयुत्साहस्मृति प्रज्ञाकलामानं समन्वितः।
शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ।। 2 ।। (दश रूपक 2/2)

चार भेद सभी साहित्यविदों को मान्य है। स्वयं भोजराज ने भी इन चारों भेदों का उल्लेख करते हुए कहा है कि शान्त (शान्त रस) प्रेयांश (श्रृंगार) उद्धत (रोद्र) ऊर्जस्व (वीर) को कुछ विद्वान् रस मानते हैं। इन्हीं के आधार पर ये रस मूलक धीर शान्त, धीर, ललित, धीरोद्धत, धीरोदात्त नायक माने जाते हैं। अर्थात् इनका आलम्बन लेकर उन-रसों की अभिव्यक्ति होती ।[1]

साहित्य दर्पणकार तक दशरूपककार ने उक्त भेदों को तथैव स्वीकार किया। इनके क्रम का विपर्यय देखा जाता है। साहित्य दर्पणकार के क्रम में धीरोदात्त, धीरोद्धत्त, धीरललित तथा धीरप्रशान्त ये चार भेद माने गये हैं।[2] दशरूपककार धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त, तथा धीरोद्धत भेद से इनका क्रम स्वीकार किया है। धीर प्रशान्त नायक शान्त रस में प्रायः शान्त रस का उद्भावक होता है और शान्त रस की आचार्यों ने अन्तिम रस के रूप में गणना की है। इस आधार पर साहित्य दर्पणकार का क्रम रस की दृष्टि से अधिक उपयुक्त है।

अपनी प्रशंसा न करने वाला, क्षमावान, अत्यन्त गम्भीर, आत्मबली, स्थिर बुद्धि, अपनी नम्रता से स्वाभिमान को छिपाने वाला, दृढ़व्रती, धीरोदात्त कहा जाता है।[3]

1- शान्तं प्रयांसम् उद्धतम ऊर्जस्विनं च केचिद्रसमाचक्षते।
तन्मूलाश्च किलनायकां धीरशान्त, धीरललित, धीरोद्धत धीरोदात्तव्यपदेशाः।।
(श्रृंगार प्रकाश भाग 2 पृष्ठ 366)

2- क- धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च। धीर प्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः ।। । ।।
(साहित्य दर्पण श्लोक ।)

ख- भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम् । (दशरूपक 2/3)

3- अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्व।
स्थेयान्निशूढमानो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः कथितः ।। 32 ।।

राम युधिष्ठिर आदि नायक इसी कोटि में आते हैं । छल से युक्त अत्यन्त क्रोधी, चंचल, अहंकार, एवं दर्प से युक्त अपनी प्रशंसा करने वाला नायक धीरोद्धत कहलाता है।[1] निश्चिन्त कोमल स्वभाव वाला, नृत्य, गीतादि कलाओं में तत्पर नायक धीर ललित कहलाता है।[2] पूर्व वर्णित नायकों के सामान्य गुणों से युक्त ब्राह्मण आदि धीर शान्त नायक कहलाता है।[3] इस प्रकार साहित्य विषयक शास्त्रों में नायक के ही समान उपनायक , प्रतिनायक, नायिका, दूत, सखि आदि लक्षण का विवेचन हुआ है। इतिहास में प्रसिद्ध महापुरुषों के चरित्र इस प्रकार विख्यात हो चुके हैं कि किसी भी काव्य में उन चरित्र नायकों को अपनाया जाता है, तो ऐतिहासिक मान्यता के आधार पर ही उनसे सम्बन्धित कथानक की परिकल्पना रचनाकार को करनी पड़ती है। उसके विपरीत पात्रों का चित्रण रचनाकार को आलोचना एवं उपहास का पात्र बना देता है। यदि राम के लोकोपकारक धर्म-संरक्षक उदात्त आदर्श चरित्र को अवहेलना करके कोई कवि उद्धत्त स्वरूप में चित्रित करे, तो वह रचना सामाजिकों को कथमऽपि स्वीकार्य नहीं होगी और वह रचनाकार निन्दा तथा अवहेलना का पात्र बन जायेगा। इसलिए ऐतिहासिक आदर्श पात्रों से सम्बन्धित कथानक को अपनाने पर उनकी मान्यताओं के आधार पर ही रचनाकार को उनके चरित्र को चित्रित करना होगा। अपनी मौलिकता को प्रदर्शित करने के लिए यथोक्त कथानक से सम्बन्धित कथा पात्रों के चरित्र को दर्शा तो सकता है किन्तु बहुत अधिक नूतनता का वर्णन नहीं कर सकते। इसीलिए राम के प्रति पितृतुल्य आचरण करने वाले लक्ष्मण के लोक विश्रुत चरित्र की अवहेलना करके 'अनर्घराघव' नाटक में 'मुरारिकवि' ने शंकर धनुष के देखने की उत्कण्ठा राम के प्रगट करने पर लक्ष्मण का राजकुमारी सीता को भी देखने की उत्कण्ठा का वर्णन है।[4] इस उपहास को कथोपकथन से जो अप्रसिद्ध

1- मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहंकारदर्पभूयिष्ठः।
आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः।। 33 ।।

2- निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्।
सामान्यगुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरशान्तः स्यात ।। 34 ।।

3- निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्।
सामान्य गुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरशान्त स्यात् ।। 34 ।।

4- 'आर्यायामयोनिजजन्मनिराजकन्यामपि'।
(अनर्घ राघव 2)

आचरण है उसे चित्रित किया है। वह विद्वान् समालोचकों के द्वारा उचित नहीं कहा गया। अतः ऐतिहासिक पात्रों का आश्रयण कर रचनाओं में उनसे सम्बन्धित प्रसिद्ध कथानकों के द्वारा अप्रयुक्त तथा अप्रसिद्ध चरित्रों का चित्रण नहीं करना चाहिए।

चम्पू-रामायण में इस बात का पूरी तरह ध्यान रखा गया है। भोजराज ने वाल्मीकि रामायण की प्रसिद्ध कथा वस्तु को लगभग तदनुरूप ही अपनाया है और उनके सभी पात्र वाल्मीकि रामायण के प्रसिद्ध पात्र हैं। रामायण में राम ही वस्तुतः नायक हैं। रावण प्रतिनायक के रूप में चित्रित हुआ है। सीता नायिका के रूप में तो मन्दोदरी प्रतिनायक की पत्नी के रूप में नायक के सहायक भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, दशरथ, कौसल्या आदि माताएं जनक आदि सुग्रीव, हनूमान, विभीषण प्रभृति पात्र जहाँ प्रसिद्ध हैं, वहीं प्रतिनायक के सहायक मारीच, सुबाहु, ताटका, खरदूषण, त्रिशिरा, कुम्भकर्ण इन्द्रजीत आदि हैं। अन्य कई सहायक पात्र हैं। जिनकी कथानक के अभिवृद्धि में वसिष्ठ भूमिका है जिनमें महर्षि वसिष्ठ , सुमन्त्र, विश्वामित्र आदि विशिष्ठ चरित्र नायक उल्लेखनीय हैं।

वाल्मीकि रामायण एवं चम्पू-रामायण इन दोनों की संरचना की स्थिति जिससे बनती है, उस कथानक के स्रष्टा प्रथम नायक के रूप में सम्प्राप्त महर्षि वाल्मीकि का चरित्र प्रथमतः अवलोकनीय है।

वाल्मीकि:

चम्पूरामायण में वाल्मीकि का चरित्र अत्यल्प मात्रा में चित्रित हुआ है। उनसे सम्बन्धित जो कथानक वाल्मीकि रामायण में विशद है, उसकी मात्र चर्चा करके ही भोजराज ने विस्तार पर ध्यान नहीं दिया। किन्तु उतने मात्र से ही वाल्मीकि की धर्मपरायणता, दयालुता करुणार्द्रता तथा कविकर्मनिपुणता सिद्ध होती है। महर्षि वाल्मीकि नित्य अपने ब्रह्म कर्म में रत रहते हुए, नितनूतन धार्मिक विषयों का मनन और श्रवण की जिज्ञासा रखते हैं। जहाँ वे नारद जी से भगवान् श्रीराम के द्विव्य परमपुरुषोचित चरित्र को सुनते हैं वहीं अपने ब्रह्म कर्म के प्रति भी सजग रहते हैं-

'वाचं निशम्य भगवान् स तु नारदस्य[1]
प्राचेतसः प्रवचसां प्रथमः कवीनाम्।
माध्यन्दिनाय नियमाय महर्षिसेव्यां
पुण्यामवाप तमसां तमसां निहन्त्रीम्' ।। 5 ।।

ऋषियों की दृष्टि सर्वथा प्राणीमात्र को सुखी देखना चाहती है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का सिद्धान्त उनके मन वाणी कर्म में सर्वदा व्याप्त रहता है। किसी के कष्ट को देखकर उनका सहृदय दयालु मन अतीव व्यथित हो उठता है। महर्षि वाल्मीकि व्याध द्वारा क्रौञ्च के बध को देखकर और करुणापूर्ण क्रौञ्ची के विलाप को सुनकर अत्यधिक व्यथित हो जाते हैं, और उनके करुणार्द्रपूर्ण हृदय में अनायास उस व्याध के प्रति एक व्यथित छन्दोमयी सरस्वती रूप साक्षात् वाणी प्रस्फुटित होती है और उनके मुख से व्याध के प्रति यह वाक्य निकलता है कि-

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।[2]
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्' ।। 6 ।।

इस आदि लौकिक संस्कृत के छन्द को अपने हृदय से करुणामयी स्थिति में निकला जानकर वाल्मीकि भोज के अनुसार कुछ ध्यान नहीं देते हैं, अपने उस करुणापूर्ण स्थिति को विवेक से नियन्त्रित करके समयोचित कृत्य को सम्पादित कर अपने आश्रम में आ जाते हैं।

महर्षि के अलौकिक छन्दोमयी वाणी को देखकर प्रजापति ब्रह्मा एक उत्तम कार्य की सृष्टि के लिए महर्षि के पास आते हैं। महर्षि वाल्मीकि अत्यधिक हर्षित हो ब्रह्मा की अर्चना करते हैं। ब्रह्मा जी उन्हें रामचरित्र का वर्णन करने के लिए कहते हैं और तपोबल से इस कार्य के सम्पादन में महर्षि प्रभृत होते हैं।

तपस्वी व्यक्ति तप के प्रभाव से भूत एवं भविष्य को भी वर्तमान की तरह देख सकता है। अपने दिव्य तपःपूत शक्ति से सम्पूर्ण घटनाओं को आत्मसात्

1- चम्पू-रामायण श्लोक 5

2- चम्पूरामायण, श्लोक 6, बालकाण्ड

कर सकता है। ब्रह्मा के आदेश का पालन करने हेतु महर्षि वाल्मीकि ने योगदृष्टि से सम्पूर्ण राम–चरित्र का करामलकवत् आत्मसात् करते हैं। अर्थात् रामायण का सम्पूर्ण यथाघटित चरित्र उनके आँखों के सामने प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है और वे अपनी वाणी से सुन्दर सरस रचना को संसार के प्रति समर्पित करके उसके प्रचार-प्रसार के प्रति भी बध्य परिकर दिखाते देते हैं। रचना सम्पादन ही उतना महत्वपूर्ण नहीं है, उसका प्रचार- प्रसार भी अत्यधिक आवश्यक है। कविता की प्रस्तुति मधुरकण्ठ से जितने सुन्दर रीति से होगी सामान्य जनसमुदाय उतना ही उसे अपनाना चाहेगा। इस कार्य सम्पादन हेतु महर्षि वाल्मीकि सुन्दर कण्ठ वाले अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न मधुर आकृति से युक्त लव एवं कुश को जो उनके छात्र हैं, बुलाते हैं और सम्पूर्ण रामायण का अध्ययन कराकर प्रचार-प्रसार हेतु उन्हें प्रेरित करते हैं।

इस प्रकार ऋषि की संसार के कल्याण हेतु करणार्द्र भावना अखिल प्राणिमात्र का कल्याण करती है।

वाल्मीकि रामायण में वाल्मीकि से सम्बन्धित इसी कथानक को किञ्चित विशद् रूप में प्रस्तुत किया गया है। जहाँ प्रथम सर्ग में श्रेष्ठ मनुष्य के विषय में जिज्ञासा कर नारद से सम्पूर्ण रामचरित्र का परिचय प्राप्त करते हैं वहीं दूसरे सर्ग में क्रौञ्ची के रुदन को सुनकर उक्त छन्दोयुक्त पद्य को बोलते हैं और विचारते हैं कि शोकार्त अवस्था में इस पक्षी को देखकर मैंने क्या कर दिया।[1] और बुद्धिमान् शिष्य को उस

1- 'शोकार्त्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृत मया' ।। 16 ।।

(वाल्मीकि रामायण)

चिन्तयन् स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्मतिम्।

शिष्यं चैवाब्रवीद् वाक्यमिदं स मुनिपुंगवः ।। 17 ।।

पादवद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः।

शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतुनान्यथा ।। 18 ।।

वाक्य को सुनाते है। मुनि कहते हैं, पादवद्ध अक्षर सम वीणा के लय से समन्वित शोकार्त्त अवस्था में प्रवृत्त यह श्लोक अन्यथा न हो ऐसा विचार प्रगट करते हैं और यही विचार करते हुए अपने आश्रम की ओर चल देते हैं और पुनः शोक युक्त होते हैं। ब्रह्मा प्रगट हो उन्हें रामकथा के लिए प्रेरित करते हैं।

इसी तरह तीसरे सर्ग में सम्पूर्ण रामकथा की सूची दी गयी है जिसके आधार पर सम्पूर्ण रामकथा लिखी गयी और चतुर्थ सर्ग में लव-कुश को वह आदि काव्य पढ़ाकर उसे प्रचार-प्रसार हेतु भेजते हैं। राम के दरबार में वे दोनों रामकथा का गान करते हैं। चरित्र-चित्रण के परिपेक्ष्य में यद्यपि भोज एवं वाल्मीकि में कोई विशेष अन्तर नहीं है। केवल घटनाक्रम की विशदता से कुछ अन्तर अवश्य दृष्टिगोचर होता है। दोनों में ऋषि की महत्ता एवं लोककल्याणभावना चित्रित हुई है।

राम:

महाकाव्यों में या महाकाव्यों के सदृश अन्य प्रबंधों (आख्यायिका, चम्पू, नाटक) आदि में भी कथानायक का आश्रयण होता है, क्योंकि कथानक की सम्पूर्ण घटनायें मुख्य नायक के साथ ही आगे बढ़कर परिणति (सामर्थ) को प्राप्त होती है जिस कोटि का नायक होता है। कथानक की संरचना भी वैसी ही होती है और उसी के अनुसार अंगी रस की अभिव्यक्ति सम्यक् रीति से होती है। राम का चरित्र अखिल राम साहित्य में धीरोदात्त नायक के रूप में उभरा है। राम धीरोदात्त नायक के साक्षात्मूर्ति हैं यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा। जन्म के पूर्व से ही लोक भावना की संरक्षा का भार श्रीराम में आता है। श्रीराम का चित्रण भोजराज ने एक शुभकाल में सुन्दर वंश में जन्म लेने वाले सभी से स्नेह करने वाले , और सभी का प्रिय अपने कर्तव्य का यथोचित रीति से पालन करने वाले, प्राणिमात्र पर प्रेम एवं दयालुता की दृष्टि रखने वाले, वीर शत्रु संहारक, मित्रजन कार्य साधक, धर्म संस्थापक, राक्षस निहन्ता, उदार चरित्र सम्बन्धों का पूर्णतया सम्मान करने वाले विष्णु अवतारी पुरुष महापुरुष के रूप में चित्रित किया है।

श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान श्रीकृष्ण का वाक्य है- जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की अभिवृद्धि होती है। तब-तब मैं अपने को धर्म के अभ्युत्थानार्थ मृत्युलोक में सृजित करता हूँ।[1]

सम्पूर्ण तत्कालीन न केवल भारतवर्षअपितु त्रैलोक्य रावण के भीषण अत्याचारो से त्रस्त था प्रत्येक धार्मिक कार्य इन निशाचरों के द्वारा बाधित होने से सृष्टि की सामान्य प्रक्रिया बाधित होने लगी थी। दशरथ द्वारा आयोजित पुत्रेष्टि यज्ञ में आवाहित सृष्टि के तत्-तत् कार्यो के सम्पादक एवं संरक्षक देवतागण व्यथित होते हैं और अपना प्रतिवेदन ब्रह्मा से करते हैं।[2] ब्रह्मा अखिल जगत नियन्त्रक क्षीरशायी विष्णु की स्तुति करते है। विष्णु जब उनकी कुशलता के विषय में प्रश्न करते हैं, तब सभी देवतागण उनकी स्तुति करते हुए रावण के कुकृत्यों का वर्णन कर उसके नाश की प्रार्थना करते हैं। विष्णु यथावाञ्छित वर देकर अपने अंशों के साथ तत्कालीन सूर्यवंश के प्रतापी चक्रवर्ती राजा दशरथ के यहाँ जो पुत्र के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुसंधान कर रहे थे। पायस[3] के माध्यम से कौसल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा के गर्भ में प्रविष्ट होते हैं और चैत्र मास

1- यदा यदा हि धर्मस्यग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।। 7 ।।
"श्रीमद् भगवतगीता अध्याय 4 श्लोक 7 "

2- 'तदनुहविरहरणाय धरणौ कृतावतरणाः सर्वे गीर्वाणगणाः शतमखप्रभुखाश्चतुर्मखाय दशमुखप्रतापग्रीष्मोसंम्लोषणमावेद्य तेन सह शरणमिति शंगिधन्वानं मन्वाना नानाविधप्रस्तुतस्तुतयः क्षीराम्बुराशिमासेदुः' (पृष्ठ संख्या 15)

3- 'कौसल्यायै प्रथममदिशद्भूपतिः पायसार्धं प्रादादर्धं प्रणयमधुरं केकयेन्द्रसय पुत्र्यै।
एते देव्यौ तरलमनसः पत्युरालोच्य भावं स्वार्धांशाभ्यां स्वयमकुरुतां पूर्णकामां सुमित्राम्।।
(चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 23)

के नवमी तिथि को शुभ कर्कलग्न में जिस समय सूर्य आदि पाँच ग्रह अपने उच्च स्थान में थे, गुरू एवं चन्द्रमा लग्न में ही थे, सूर्य मेष राशि में थे ऐसे सुन्दर समय में श्रीराम का अवतार कौसल्या माता के गर्भ से हुआ।[1]

सुन्दर समय में उत्पन्न या सम्पन्न व्यक्ति या कार्य सर्वथा तेजस्वी तथा सुसम्पन्न होता है, क्योंकि सुन्दर शुभ ग्रहों के युक्त काल में जन्म लेने वाला व्यक्ति अनेक शुभ गुणों को धारण करता है और अपने सुकृत्यों के माध्यम से अखिल विश्व का कल्याण करता है। विष्णु ने जहाँ अपने जन्म के लिए उत्तम सूर्यवंश का चयन किया वहीं सुन्दर समय का भी चयन किया। अकाल में प्राप्त व्यक्ति वस्तु एवं कार्य अपने पराक्रम या स्वरूप का सही परिचय एवं अभिवृद्धिता नहीं दे पाते इसीलिए सुसमय की सभी को प्रतीक्षा रहती है।

इनका नाम 'राम' अखिल जगत को आनन्द प्रदान करने के कारण, सभी को प्रकाशित करने के कारण, तथा योगियों के हृदय में रमण करने के कारण हुआ। राम अपने कार्यो से समाज के प्रत्येक वर्ग को आनन्द प्रदान करते थे। जहाँ भाइयों के प्रति इनके सुन्दर व्यवहार थे, वहीं माता-पिता की आज्ञा पालन में सर्वदेव तत्पर रहते थे। पिता की आज्ञा प्राप्त कर लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए उनके संग वन में जाते हैं। जहाँ अपने देवोपम व्यवहार से सेवा-परायणता से महर्षि विश्वामित्र एवं अन्य ऋषियों को प्रसन्न करते हैं वहीं अतीव शक्तिशाली सुकेतु कन्या ताटका एवं मारीचि तथा सुबाहु का दमन करते हैं। उनके सुकृत्यों से प्रसन्न हो महर्षि विश्वामित्र अनेक प्रकार की विद्याओं से विभूषित करते हैं।[2] इस प्रवास में

1- 'उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरो सेन्दो नवम्यां तिथो लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषंगते पूषणि।
निर्दग्धुं निखिला: पलाशसमिधोमेध्यादयोध्यारणेराविर्भूतपूर्वमपरं यत्किंचिदेकं महः ।। 29 ।।

2- 'बलेन तपसां लब्धे बलेत्यतिबलेति च।
विद्येते मयि काकुत्स्थ विद्येतेक्तिरामिते"।।
(चम्पूरामायण, बालकाण्ड श्लोक संख्या, 37)

गुरू विश्वामित्र के निर्देशन में राम एवं लक्ष्मण का व्यक्तित्व निखर हो उठता है। प्राणि मात्र में इनके स्नेह का प्रभाव देखा जाता है। जनकपुर में विश्वामित्र के जाने पर राम और लक्ष्मण के रूप माधुर्य एवं स्नेहभाव का प्रभाव जनक वासियों पर भी पड़ता है।[1] श्रीराम का प्रभाव एवं पराक्रम विश्वामित्र जी को पूर्णतया ज्ञात है। इसीलिए वे धनुषभंग की आज्ञा उन्हें प्रदान करते हैं और वह उनके संकल्प को पूरा करते हुए शिव धनुष को पूरा कर सीता का वरण करते हैं।

विवाह आदि कृत्य के अनन्तर अयोध्या लौटते समय शिव धनुष भंग के रोष से उत्तेजित परशुराम जब दशरथ के जन समूह को रोकते हैं। उस समय राम उसके प्रभाव से अभिभूत परशुराम विष्णु से संम्प्राप्त शारंग धनुष को प्रत्यञ्चा चढ़ाने के लिए राम को प्रदान करते हैं और राम शीघ्र ही उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा देते हैं।[2] परशुराम अतीव प्रसन्न हो जाते हैं। इनका प्रभाव ऐसा था कि सबकी वक्रता सरलता में परिणित हो जाती है।[3]

1- "तदनु जनकराजधानीं रामलक्ष्मणनिरीक्षणकोतुकादनवरतपतितेन विकचकुवलयनिचयोपचीयमानमेचकमरीचिमलिम्लुचेन पोरनारीलोचनरोचिषा कवचितनरपतिपथ्यां विश्वामित्रः प्रविश्य दशरथतनयाविदमभाषत।"
(चम्पूरामायण, बालकाण्ड पृष्ठ – 87)

2- "आदाय तत्सगुणमाशु विधाय तत्र
संधाय बाणमवधार्य तपोधनत्वम्।
तज्जीवितस्य दयमानमना मनीषी
संभूतघोरसमराद्विरराम रामः "।।
(चम्पूरामायण, बालकाण्ड श्लोक – 112)

3- युगपत्प्राप्तगुणयोश्चापभार्गवरामयोः।
ऋजुता वक्रतां प्राप वक्रतापि तथार्जवम्।।
(चम्पूरामायण , बालकाण्ड श्लोक – 114)

श्रीराम अपने कर्तव्य के प्रति सदा सचेष्ट रहे। वे अपने व्यवहार से प्रत्येक वर्ग के लोगों का जहाँ हित चिन्तन करते थे वहीं सभी का ध्यान भी रखते थे। माता-पिता के प्रत्येक आज्ञा का यथासम्भव पालन करते थे। दशरथ के राज्य का यथोचित पालन करते रहने पर भी लोग राम को राजा के रूप में स्वीकार करना चाहते थे। यह बात मन्त्रियों के इस कथन से स्पष्ट होती है-

देवे स्थितेऽपि तनयं तव रामभद्रं[1]
लोकः स्वयं भजतु नाम किमत्र चित्रम्।
चन्द्रं बिना तदुपलम्भनहेतुभूतं
क्षीरोदमाश्रयति किं तृषितश्चकोरः।।

श्रीराम अतीव उदार हृदय हैं। जब माँ केकेयी के द्वारा अपने लिए चौदह वर्ष का वनवास तथा भरत के लिए राज्य का समाचार प्राप्त करते हैं तो अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं और पिता के शोक को उचित नहीं समझते। उन्हें वनवास की अपेक्षा राज्याभिषेक अधिक भार स्वरूप प्रतीत होता है और राम इस विषय में कैकेयी को राम के पक्षपात का दोष न लग जाये। इसकी आशंका व्यक्त करते हैं।[2] वे भरत के राज्याभिषेक से बहुत प्रसन्न होते हैं। यद्यपि राम के उदारतापूर्ण वचनों को सुनकर दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं किन्तु राम माँ कैकेयी के द्वारा प्रेरित हो पिता की आज्ञा पालन करने के लिए अपनी माता कौसल्या को समझा-बुझाकर तथा लक्ष्मण के आवेग को दूर कर पिता की आज्ञा पालन को अपना परम लक्ष्य मानते हैं[3]। पत्नी सीता को यद्यपि माता - पिता की सेवा में स्थापित करना चाहते तथा उनके अलौकिक स्नेह को देखकर वन जाने की सहमति प्रदान करते हैं। राम का वन गमन वल्कल आदि

1- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक - 9

2- "वनभुवि तनुमात्रत्राणमाज्ञापितं मे
सकलभुवनभारः स्थापितो वत्समूर्ध्नि।
तदिह सुकरतायामावयोस्तर्कितायां
मयि पतति गरीयानम्ब ते पक्षपातः"।।
(चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक - 25)

3- "तस्मादवश्यं वश्य एव पितुरवगाहे महनामिति"।
(चम्पूरामायण, अयोध्या काण्ड पृष्ठ 136)

धारण से सम्पूर्ण अयोध्या प्रदेश करुणा के सागर में डूब जाता है। यह इनके स्नेह एवं श्रेष्ठ कर्त्तव्यों से अभिभूत जनमानस की परम प्रीति प्रमाण है। मार्ग में भी निषाद-राज का स्नेह बन्धन में बँधना पिता की आज्ञा में तत्पर होने से सुमन्त्र को स्नेहपूर्वक विदा करना अतिशय कर्त्तव्य परायणता सिद्ध होती है।

गुरू वसिष्ठ के साथ शत्रुघ्न एवं सभी माताओं के सहित मन्त्रियों एवं श्रेष्ठ नागरिकों को साथ लेकर श्रीराम को राजपद देने के लिए भरत वन में जाते हैं। राम से यद्यपि सभी आग्रह करते हैं किन्तु राम पिता की आज्ञा परिपालन में भी अपनी दृढ़ता व्यक्त करते हैं।[1] इस विषय में राम किसी भी व्यक्ति के परामर्श को स्वीकार नहीं करते हैं। जाबालि ऋषि की भी प्रार्थना व्यर्थ जाती है। राम भरत को भी पिता के वचन पालन का सुझाव देते हैं जो इनके कर्त्तव्य पालन का प्रमाण है।

श्रीराम का अवतार वस्तुतः सज्जनों की सुरक्षा एवं दुष्टों का संहार करने के लिए ही हुआ था जिसकी शुरुआत इन्होंने यद्यपि महर्षि विश्वामित्र के सान्निद्ध से कर दी थी तथापि उसका पूर्णरूप से प्रारम्भ पिता की आज्ञा से प्राप्त वनवास से होता है। जहाँ भरतद्वाज अत्यप्रभृति ऋषियों से सत्संग एवं आर्शीवचन प्राप्त करते हैं, वहीं विराध जैसे बलशाली राक्षस का बध कर उनकी निर्मूलता का प्रारम्भ करते हैं। ऋषि सरभंग सुदीक्ष्ण को दर्शन देकरके उन्हें कृतार्थ करके महर्षि अगस्त का दर्शन कर अनेक अस्त्र-शस्त्र को उनसे आर्शीवाद के रूप में प्राप्त करते हैं।

1- " त्वया मया च कर्त्तव्यः सत्यवाचः पितुर्विधिः।
इति प्रत्यादिशद्रामो भारतीमपि भारतीम्।।
(चम्पू-रामायण, अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या- 81)

राम न केवल ऋषि मुनियों तथा अन्य श्रेष्ठ जनों का ही सम्मान करते हैं। तिर्यक्योनि प्राप्त जटायु जेसे गृद्ध जाति के पक्षी को भी राम ने दशरथ जेसा सम्मान दिया [1]

श्रीराम एक पत्नी व्रत रखते थे। वे सीता के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्त्री जाति को पत्नी के रूप में इच्छा तक नहीं की। शूपर्णखा जब प्रणय निवेदन करती है- तो श्रीराम उनका प्रत्याख्यान कर देते हैं। वे कहते हैं कि मेरी स्त्री जानकी विद्यमान है। इसलिए मुझे छोड़ दो ऐसा कहते हैं।

शूपर्णखा की गुप्तचर गतिविधि को श्रीराम जानते हैं और वे अंग-भंग करने के लिए प्रेरित करते हैं। भग्नाशात शूपर्णखा अपने भाई खर एवं दूषण के पास जाती है और वे राम के ऊपर आक्रमण करते हैं। अकेले राम उनका सेना के सहित संहार करते हैं। अकेले 14 हजार वीरों से युक्त 14 सेनापतियों से नियंत्रित राक्षस सेना के सहित खर दूषण का संहार करते हैं। यहीं से रावण पक्षीय राक्षसों के संहार का शुभारम्भ होता है जिसकी परिणित रावण वध में होती है।

श्रीराम सम्बन्धों के परिपालन एवं अत्यधिक कर्त्तव्यनिष्ठ दिखलायी पड़ते हैं। जहॉ सीता के साथ एक आदर्श पति का कर्त्तव्य वहन करते हैं और सम्बन्ध की पवित्रता को सुरक्षित रखते हैं, वहीं भरत एवं लक्ष्मण आदि सभी भाइयों के प्रति भी उनका कर्त्तव्य स्नेहिल एवं कृपापूर्ण रहा है। वे रावण के द्वारा सीता हरण हो जाने पर जहॉ सीता वियोग जन्य कष्ट से अतीव दुखित होते हैं वहीं सीता की रक्षा करते समय घायल जटायु को देखकर अत्यन्त दु:खित होते हैं और उसके मरने के बाद पुत्रवत्

1- "रामस्तु दशरथमिव तं पश्चन् काश्यमपसंभूतं संपातेरनुजम्"।
(चम्पू-रामायण आरण्यकाण्डम् पृष्ठ संख्या 215)।

जटायु का और्ध्वदैहिक कृत्य करते हैं।[1] मार्ग में श्रीराम प्रत्येक प्राणी का उचित सम्मान करते हैं। जहाँ वे असुर योनि कबन्ध का उद्धार करते हैं वहीं मतंग आश्रम वासिनी शबरी के भी भक्तिपूर्वक की गयी पूजा को स्वीकार करते हैं।

श्रीराम एक आदर्श मित्र रहे। मित्र अपने मित्र के कार्य की सिद्धि के लिए सब कुछ दाँव पर लगा देता है। श्रीराम जी अपने मित्रों के कार्य की सिद्धि के लिए सभी प्रकार की सहायता करने को तत्पर रहते हैं। हनूमान् के माध्यम से ऋष्यमूक पर्वत पर सम्प्राप्ति राम और लक्ष्मण के साथ जब सुग्रीव की मित्रता होती है तो सुग्रीव की व्यथा को सुनकर राम उनकी सहायता के लिए शीघ्र ही उद्यत हो जाते हैं[2] ओर बालि को मारने के लिए सुग्रीव द्वारा बताये गये माप दण्डों को पूरा कर सुग्रीव को विश्वास दिलाते हैं।

सुग्रीव और बालि के परस्पर युद्धावस्था में राम बाण द्वारा बालि का वध करते हैं और अपने मित्र के कार्य को इस तरह पूरा करते हैं।

वस्तुतः श्रीराम किसी भी व्यक्ति के प्रति शत्रु भाव न रखकर केवल कर्त्तव्य बुद्धि से कार्य सम्पादन करते हैं। इसीलिए तारा के विलाप करने पर जहाँ उसे सान्त्वना प्रदान करते हैं वहीं बालि के द्वारा सौंपे हुए पुत्र अंगद को न केवल अभय प्रदान करते हैं अपितु सुग्रीव को बालि का यथोचित अन्त्येष्टि करने का आदेश भी प्रदान करते हैं।

1- स्वयमपि शरभंगस्वीकृतां भंगहीनां
सपदि गतिमवाप्तः संहृदतायुर्जटायुः।
नयनसलिलमिश्रं रामहस्तेन दत्तं
दशरथदुरवापं प्राप नैवापमम्भः ।। (च0रा0 आरण्यकाण्ड श्लोक — 42)

2- "श्रुत्वाऽथ रामः शोकोदग्रां सुग्रीवगिरम्, यद्येवं महाभाग, मा भैषीः। मम शिलीमुख एव वलीमुखस्य तस्यासून्कालक्षेपमया . पास्यति"।
(चम्पू-रामायण किष्किन्धाकाण्ड पृष्ट — 269)

श्रीराम प्रत्येक कार्य के सम्पादन में बड़े ही युक्ति पूर्वक अपने अनुगामियों का सहयोग लेते हैं। जब सुग्रीव राज्यपद प्राप्त करके शरद् ऋतु में आपका कार्य करूँगा[1] ऐसा कहकर किष्किन्धापुर चला जाता है। यद्यपि राम से भी किष्किन्धापुर चलने का आग्रह करता है किन्तु पिता आज्ञा परिपालन में तत्पर राम नगर प्रवेश नहीं करते।

सुग्रीव राज्य सुख में लिप्त राम से सीतान्वेषण सम्बन्धी की गयी प्रतिज्ञा को भूल जाते हैं[2] तब राम लक्ष्मण के द्वारा कुछ राजनीति का सहारा लेकर उन्हें सचेष्ठ कर सीतान्वेषण सम्बधी कार्य के लिए उन्हें प्रेरित करते हैं क्योंकि कामादि दोषपहत व्यक्ति कार्य सम्पादन में सजग नहीं रह पाता। श्रीराम राजनीति के मर्मज्ञ जहाँ उन्होंने सामनीति से मैत्री की और दाम नीति से राज्यसुख प्रदान किया वहीं दण्ड नीति का किञ्चित उपयोग करके सुग्रीव को कर्तव्य बोध कराया।

फलतः सुग्रीव राम के प्रभाव को समझकर बड़ी सजगता से स्नेह पूर्वक सम्पादित करते हैं। चारों दिशाओं में वानरों को भेजकर विशेषतः अंगदादि हनूमान् प्रभृति को कार्य सम्पादन की प्रत्याशा से भेजते हैं और हनूमान सीता का पता लगाकर चिन्ह् के रूप में सीता द्वारा प्रदत्त चूड़ामणि को प्रदान करते हैं।

1- आर्यायान्वेषणा कार्या शरदीत्युक्तसंविदा।
कपीन्द्रणार्थितो रामः किष्किन्धावर्तनं प्रति ।। 2। ।।
(चम्पू-रामायण किष्किन्धाकाण्ड)

2- कामक्षिप्तपृषत्कभिन्नहृदयच्छिद्रप्रणालीगलन्मैत्रीसारलघौप्रतिश्रवभरं निर्वोढुमप्यक्षमे।
सुग्रीवे चिरसंस्थितां शमयितुं रागान्धतां तादृशीं किष्किन्धां द्रुतमाप कोपलुषो रामाज्ञया लक्ष्मणः।।
(चम्पू-रामायण किष्किन्धा काण्डम् श्लोक संख्या 34)

श्रीराम के प्रति श्रद्धा स्नेह और भक्ति सभी उनके अनुयायियों में रहती है। इसीलिए सुग्रीव श्रद्धायुत् स्नेह से प्रेरित होकर श्रीराम के कार्य को सम्पादित करते हैं और यही स्थिति हनूमान् अंगद जाम्बन्त आदि की होती है।

श्रीराम शरण में आये हुए प्रत्येक व्यक्ति को न केवल आश्रय प्रदान कर अभय दान देते हैं, अपितु उससे मैत्री कर अपना अभिन्न बना लेते हैं। यही व्यवहार उन्होंने सुग्रीव के साथ किया तथा अपने ज्येष्ठ बन्धु रावण से अपमानित शरण में आये हुए विभीषण से भी वही व्यवहार किया। विभीषण के प्रति समय प्राप्त सुग्रीव की शंका का समाधान करते हुए राम कहते हैं-

"अभयागतो मदपयाति चेन्मुधा[1]
रघवो भवन्ति लघवो न किं सखे।
अनुजोऽयमस्तु तनुजोऽथवा रिपोः
करुणापटं हि शरणागतो जनः"।।

शरण में आया हुआ व्यक्ति यदि व्यर्थ ही लौट जाये इससे रघुवंशियों की लघुता सिद्ध होगी। इसीलिए शरण में आया हुआ व्यक्ति चाहे शत्रु हो, शत्रु का भाई हो अथवा पुत्र हो सभी दया के पात्र हैं।

शरण में आया हुआ विभीषण जब श्रीराम को प्रणाम करता है, उस समय शरणागत वत्सल परम राजनीतिज्ञ श्रीराम विभीषण को न केवल अभय प्रदान करते हैं, अपितु शीघ्र ही उसे रावण के राज्य को भी प्रदान कर देते हैं।[2]

1- चम्पू रामायण युद्ध काण्ड श्लोक - 18

2- रामस्तमाह विनतं रजनीचरेन्द्रं
दत्तं मयाद्य भवते दशकण्ठराज्यम्।
अस्मिन्नुदाहरणमग्रजराज्यभोक्ता
सानुप्लवः प्लवगमण्डलसार्वभौमः ।। 19 ।।

श्रीराम सभी की सलाह मानते हैं और उसी के अनुसार व्यवहार भी करते हैं। किन्तु यदि जड़ व्यक्ति अनुनय की भाषा नहीं समझता तो उसे दण्ड देने के लिए भी उद्यत होते हैं। विभीषण के निर्देशानुसार समुद्र की तीन दिन तक मार्ग प्रदान करने के लिए प्रार्थना करते हैं। उनकी प्रार्थना पर समुद्र का ध्यान न देने पर उसे सुखाने हेतु दुर्धर्ष अग्नि वाण का भी प्रयोग करने में संकोच नहीं करते। जड़ व्यक्ति दण्ड की ही भाषा समझते हैं। फलतः समुद्र अस्त्र जन्य उत्ताप को न सहन करता हुआ अनेक रत्नादि उपहारों को लेकर प्रगट होता है और राम सेना में स्थित नल को सेतु निर्माण हेतु बतलाकर राम के कार्य को प्रशस्त करता है।

दृढ़ प्रतिज्ञ उच्च संकल्प वाले श्रीराम सागर में सेतु का निर्माण कर रावण आदि प्रचण्ड शत्रुओं का अनुज, पुत्र , सेना आदि के सहित संहार करके सीता को पुनः प्राप्त करते हैं।

अत्यधिक उदार विशुद्ध चरित्र सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति भी यदि लोकापवाद से ग्रस्त हो जाये तो अपकीर्ति से युक्त हो जाता है। दूसरे प्रदेश में शत्रु के अधिकार में सीता के रहने से समाज को सीता की शुद्धता को लेकर अनेक लोकापवाद उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसी कल्पना करके श्रीराम परम पवित्र अनिन्द्य सुन्दरी परम प्रिय जानकी को हठात् अग्नि में प्रवेश कराकर जन समुदाय में उनकी श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं जिससे न केवल सीता की पवित्रता प्रमाणित होती है , अपितु उनकी लोकोत्तरता भी सिद्ध होती है।[1]

1- क- प्राविक्षदर्चिषि परं निजशुद्धिहेतोर्देवी विशुद्धचरिता जनकस्य पुत्री।

अहंश्चिरं हि यदपावनवस्तुसंगात्यक्तः स्वयं तदमुना दमुना बभूव।। 97 ।।

(युद्ध काण्ड)

ख- विशुद्धशीला मनलेन संगाद्विदेहजां तत्र विलोक्य सीताम्।

प्रभां पुनः प्रत्युषसीव पूषा प्रत्यग्रहीत्सोऽग्रसरो रघूणाम्।। 98 ।।

(चम्पू- रामायण, युद्ध काण्ड)।

इस प्रकार अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण श्रीराम अपने एवं विश्व के प्रलयंकर शत्रु रावण का विनाश करके क्षत्रियोचित धर्म का पालन करते हुए विभीषण को लंका में अभिषिक्त करके[1] पुष्पक विमान से[2] अयोध्या पहुँचकर बन्धु भरत माताओं सहित सभी मिलते हैं और सब कोई श्रीराम का राजा के पद पर अभिषे कर चिरचिन्तित मनोरथ को पूर्ण करते हैं।

श्रीराम को कवि ने विष्णु अवतारी के रूप में चित्रित किया है जिसका विवरण प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया है । अन्यत्र भी कवि ने विष्णु के रूप में राम को सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है। बालकाण्ड[3] में जब विश्वामित्र के साथ राम जाते हैं वहाँ पर राम को कवि ने विष्णु के रूप में चित्रित किया है।

1- राजन्यधर्म विदुषोऽपि रघुद्वहस्य,हत्वा यथाग्रजमथानुजयदृबन्धः।
आरभ्य वालिनमसंशयमाविरासीद्विक्ष्वाकुवंशसहजः कथमेषधर्मः।।
(चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक 93)

2- देव्या यस्या वसनमुदधिः हाटकाद्रिहरिः सिन्धुः सगरतनयस्वर्ग मार्गैक बन्धुः।
क्रीडाशैलः प्रथमपुरुषक्रोडदष्ट्रा च तस्याः सीतामातुर्जगति मिथिलां सूतिकाग्रहमाहः ।। 100 ।।
(चम्पूरामायण युद्ध काण्ड)

3- योगेन लभ्यो यः पुसां संसारापेतचेतसाम्।
नियोगेन पितुः सोऽयं रामः कौशिकमन्वगात्।। 35 ।।
(चम्पूरामायण बालकाण्ड)

तथैव अयोध्याकाण्ड[1] में दशरथ पुत्र राम को जब देखते हैं, तथा निषादराज जब राम को देखते हैं, उस समय श्रीराम का विष्णु रूप में वर्णन है। तथेव जब भरत श्रीराम को सीता लक्ष्मण के सहित राम को वन में देखते हैं, उस समय भी विष्णु रूप में राम का कवि वर्णन करता है। सुन्दर काण्ड[2] में भी लंका दहन के समय कवि ने लक्ष्मी के रूप में सीता एवं विष्णु के रूप में श्रीराम का वर्णन किया है।

इस तरह श्रीराम का अप्रतिम चरित्र चम्पू-रामायण में कवि भोजराज ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है।

1- क- अथ दशरथः पुत्रं रामं स्वतास्त्रिजगत्पतिं
स्वविषयमहीमात्रे कर्तुं पतिं विदधे मतिम्।
भुवनभरणे कल्यं कल्याणभूधरमादरा
त्स्वगृहपटलीधुर्यस्तम्भं विधातुमना इव ।। 2 ।। श्लोक।

ख- दृष्टवा राममनेकजन्मरचितैर्दृश्यं शुभैः कर्मभिः
श्रुत्वा मातृवरद्वयादुपगतां वृत्तिं च वेखानसीम्।
अत्युज्जृम्भितहर्षशोकजनितेर्वाष्पर्निषादाधिपः
शीताशीतगुणान्वितैरविरलैः संपृक्तवक्रोऽभवत् ।। 48 ।।

ग- अथावासं शान्तेरकृतसुकृतानामसुलभं
नवाम्भोदश्यामं नलिननयनं वक्लकधरम्
जटाजूटापीडं भुजगपतिभोगोपमभुजं
ददर्श श्रीमन्तं विपिनभुवि सीतासहचरम् ।। 77 ।।
(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड)

2- सीताभिधानकमलां प्रभवे प्रदातुं
लंकार्णवं क्षुभितसैन्यतरंगभीमम्।
वेधा ममन्थ किल रज्जुभुजंगराज-
भोगावृतेन पवनात्मजमन्दरेण ।। 56 ।।
(चम्पू-रामायण सुन्दर काण्ड)

सीता:

काव्यादि में नायक के अनुसार ही नायिका की भी प्रधान भूमिका होती है। शास्त्रकारों ने जिस प्रकार नायक के त्यागी, कुलीन, सम्पत्तिवान्, सुन्दर, युवा, उत्साही, कुशल, लोकप्रिय, प्रतापी, चतुर, सच्चरित्र आदि गुण बतलाये गये हैं। वैसे ही नायिका में भी पूर्वोक्त यथा सम्भव सामान्य गुण होना चाहिए।[1] नायिका के स्वकीया, परकीया, साधारण ये तीन भेद माने जाते हैं जिनमें विनय सरलता आदि सुन्दर गुणों से युक्त गृहकर्म में तत्पर पतिव्रता स्त्री स्वकीया नायिका कही जाती है।[2] स्वकीया नायिका के भी मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा ये तीन भेद माने जाते हैं। उत्कृष्ट नायिका स्वकीया मुग्धा ही मानी जाती है। चम्पू-रामायण में जहाँ अनेक स्त्री पात्र हैं वहाँ नायिका के रूप में सीता जी ही का चरित्र सर्वगुण सम्पन्न परमसुन्दरी भगवती की अवतार रूपा परम पतिव्रता स्वभाव मधुर तथा सर्वप्रिय आदि अनेक गुणों से युक्त स्वकीया मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित हुआ है। बालकाण्ड में सीता के विवाह का वर्णन है साथ ही उनके तीन अन्य बहनों का लक्ष्मण आदि से विवाह सम्पन्न होता है। कवि ने सीता के स्वरूप एवं गुणों का कुछ भी वर्णन नहीं किया है। सान्यतया कथानक को वर्णनात्मक शैली में बढ़ाया गया है। अयोध्या काण्ड में रामवन गमन के समय सीता की मनोदशा का वर्णन है[3] परन्तु सीता के द्वारा कोई भी संवाद कवि ने प्रस्तुत नहीं किया। पतिप्रीति में बंधी सीता अपने आभूषणों को सुयज्ञ की पत्नी को सौंप कर श्रीराम के साथ वन गमन

1- अथ नायिका त्रिभेदा स्वऽन्या साधारणा स्त्रीति।
नायकासामान्यगुणैर्भवति यथासंभवेर्युक्ता ।। 56 ।।
साहित्य दर्पण तृतीय परिच्छेद

2- विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया।
साहित्य दर्पण द्वितीय परिच्छेद पृष्ठ 132

3- कल्याणवादसुखितां सहसैव कान्तां
कान्तारचारकथया कलुषीचकार।
अम्भोदनादमुदितां विपिने मयूरीं
संत्रासयन्निव धनुर्ध्वनिना पुलिन्दः ।। 31 ।।
चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड।

के लिए तैयार हो जाती हैं। सीता वन जाते समय अपने सास-ससुर, गुरू आदि सभी को प्रणाम करती हैं। कौशल्या सीता को देखकर अपने उद्गार नहीं रोक पाती और उनके कोमल स्वरूप को देखकर वन में प्राप्त होने वाले कष्टों का स्मरण करके कह उठती हैं कि तुम्हें वन में चलते हुए देखकर वन देवतागण अपने निर्निमेषता की अवश्य ही निन्दा करेंगे अर्थात् तुम्हारे कष्ट को नहीं देख पायेंगे।[1] इसी प्रकार अरण्य काण्ड, सुन्दर काण्ड में विशेष रूप से तथा युद्ध काण्ड में सीता का चरित्र चम्पू-रामायण में चित्रित हुआ है। सीता को लक्ष्मी के अवतार के रूप में चम्पू-रामायण में चित्रित किया है[2] सुन्दर काण्ड में भी सीता को सीता नामक कमला (लक्ष्मी) कहा गया है।[3]

सीता अयोनिजा है। यह जनक के द्वारा हल चलाते समय पृथ्वी से ही उत्पन्न हुई। इसलिए ये दिव्य हैं। राजा जनक ने पृथ्वी से ही सीता नाम की इस कन्या

1- धर्मे निदाधकिरणस्य करैः कठोरैः
कान्तारमध्यपदवीषु नखंपचासु।
त्वां वीक्ष्य संस्थुलपदां वनदेवताभि
र्निन्दिष्यते नियतमेव निमेषहानि· ।। 41 ।।

चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड।

2- अथ निशिचरमाथा द्वीतवैतानविघ्नो
मुनिरवभृथकृत्यं विश्वहृद्यं समाप्य।
अनुमत जयलक्ष्म्या राममाजौ समेतं
यजनजनितमूर्त्या योक्तुमव्याजलक्ष्म्या ।। 53 ।।

(चम्पू-रामायण बालकाण्ड)

3- सीताभिधानकमलां प्रभवे प्रदातुं
लंकार्णव क्षुभितसैन्यतरंगभीमम्।
वेधा ममन्थ किल रज्जुभुजंगराज-
भोगावृतेन पवनात्मजमन्दरेण ।। 56 ।।

(चम्पू-रामायण सुन्दर काण्ड)

को प्राप्त किया है[1]: कई स्थलों में सीता के प्रति पृथ्वी के वात्सल्य स्नेह दिग्दर्शन कलात्मक रीति से राजा भोज ने प्रस्तुत किया है। यात्रा में रुदन अमांगलिक होता है। बिछुड़ते हुए अयोध्यावासी परिजनों के आँखों में आये हुए आँसुओं को छिपाने के लिए रथ से उड़ी धूल को वात्सल्यमयी मंगलेच्छु पृथ्वी के द्वारा छिपाने का प्रयत्न हुआ है। ऐसा कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।[2]

इसी प्रकार समुद्र निर्देशानुसार जल जब वानरों के द्वारा ले आये गये पत्थरों से पुल का निर्माण करता है। उस समय कवि ने उन तैरते हुए पत्थरों से उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा यह कल्पना की है कि सम्भवतः पृथ्वी अपने पुत्री सीता को अभय प्रदान करने के लिए अपना भी योगदान दे रही है।[3] अन्य भी अनेक उदाहरण हैं। जहाँ पर सीता को पृथ्वी पुत्री के रूप में व्यवहृत किया गया है या उनकी अलौकिकता को प्रदर्शित किया गया है।

1- अस्यां खलु नगर्यामरब्धयज्ञस्य राज्ञो जनकस्य भागधेयात्सीतामधेय
भाजनमजीजनत्कन्यारत्नं रत्नगर्भा भगवती।

(चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ संख्या 88)

2- नृपसुखनृपेन स्वेन कान्तेन साकं
दुहितरि विधिपाकात्काननाय व्रजन्त्याम्।
अकुशलमिति मत्वा नूनमह्नाय धात्री
परिजनमुखवाष्पं पांसुभिः पर्यहार्षीत् ।। 45 ।।

(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड)

3- अलक्षित महीधरमग्रहणमस्फुटक्षेपणं
विचित्रघटनं ततो विरचितो नलेनामुना।
अबोधि हरियूथपैरधिपयोधि सेतुर्महान्
भुवोभुज इवा भयं नियतनृभुवो लम्भयन् ।। 28 ।।

(चम्पू-रामायण युद्ध काण्ड)

सीता का श्रीराम के प्रति अतिशय प्रेम है वे वनगमन के समय श्रीराम के समझाने पर भी उन्हीं के साथ वन के लिए चल देती हैं। वन का भयावह स्वरूप भी उन्हें नहीं रोक पाता राम के साथ उनकी सेवा में तत्पर रहती हुई ऋषि मुनियों के आश्रम में साथ-साथ विचरण करती हुई अपने पति सेवा धर्म में स्थित रहती हैं। उनका अपने पति के प्रति इतना प्रेम है कि जब विराध राम और लक्ष्मण को पकड़कर विन्ध्य पर्वत की ओर चल देता है तब रुदन करती हुई सीता कहती हैं कि अरे राक्षस मेरा भले ही भक्षण कर लो किन्तु मेरे पति राम एवं उनके अनुज लक्ष्मण को छोड़ दो।[1] इस कथन से इनकी अतिशय पतिभक्ति प्रमाणित होती है।

राम के बिना सीता अपने अस्तित्व को नहीं स्थापित कर सकती क्योंकि श्रीराम उनके सर्वस्व होते हैं। जब मारीच अपने बध के बाद राम के स्वर में हा लक्ष्मण ! हा सीता ! यह आर्तना करता है तो सीता लक्ष्मण से राम के पास उनके रक्षा के लिए जाने को कहती हैं। लक्ष्मण सीता को समझाते हैं कि श्रीराम पर विपत्ति नहीं आ सकती वे तो अद्वितीय धनुर्धर है तो लक्ष्मण के इस कथन पर सीता अनेक कठोर वचन लक्ष्मण से कहती हैं जिससे रुष्ट हो लक्ष्मण सीता को दुर्वचन कहने वाली कैकेयी से उपमा दे डालते हैं।[2] इससे राम के प्रति स्नेह की पराकाष्ठा द्योतित होती है।

1- "अयि कवलय माममू विमुञ्चेत्यतिकरुणं रुदतीमवेक्ष्य सीताम्।
अरमरचयतमुभावसिभ्यां पिशितभुजं भुजभारहीनमेनम्" ।। 5 ।।

(आरण्यकाण्ड, चम्पू-रामायण)

2- "सुमुखि ! मम सुमित्रा सत्यमम्बा यदासी-
स्तदभजमवितर्कं मातृसाम्पर्कसौख्यम् ।
अहह विधिविपाकाद्व्याहरन्ती दुरुक्ति
त्वमसि विपिनमध्ये मध्यमाम्बा हि जाता।। "

चम्पू-रामायण, आरण्यकाण्ड, श्लोक संख्या 27

श्रीराम के प्रति सीता की अनन्यता का उदाहरण सुन्दर काण्ड में जब हनूमान् के साथ लंका से जाना उचित न समझकर सीता हनूमान् का निवेदन स्वीकार नहीं करती है, तब हनूमान् सीता की पतिव्रत धर्म परायणता से प्रभावित होकर सीता की प्रशंसा करते हुए कह उठते हैं कि श्रीराम के पत्नी के लिए जो उचित है पतिव्रत धर्म के लिए जो आवश्यक है, रावण के अपराध की प्रतिक्रिया के लिए तथा कुलांगना के चरित्र के लिए जो उचित है उसी कर्त्तव्य का पालन आपने किया है तथा क्षत्रियाणी जो ओजस्वी वाणी होनी चाहिए वैसी ही वाणी का उच्चारण किया है।[1]

सीता का पातिवृत्य साधारण नहीं है उसमें इतना सामर्थ्य है कि वह सम्पूर्ण आततार्इयों का विनाश पातिव्रत धर्म के तेज से कर सकती है। रावणादि राक्षस क्षण मात्र में भस्म हो सकते हैं फिर भी वे उसका दुरुपयोग न कर श्रीराम के पराक्रम पर विश्वास करती हैं। राम के द्वारा ही रावण का वध चाहती हैं।[2] चम्पू-रामायण में सीता के संवाद वस्तुतः सुन्दर काण्ड में विशेष रूप से आये हैं।

1- मायामृगेण तव मैथिलि! वञ्चितायाः शाखामृगेण पुनरागतिरित्ययुक्तम्।
एषा कथापि भुवने वितता यदि स्यात्का नाम राम धनुषः प्रथिता प्रशस्तिः ।। 34 ।।
किं बहुना। इत्येतदेव चिन्तितम्। यदर्हं राघवगृहिव्यास्तदेव निश्चितम्। यत्सदृशमीदृशस्य समाचारस्य तदेव प्रकाशितम्। यदनुगुणं रावणापराधप्रतिक्रियायास्त-देवानुमोदितम्। यदनुकूलं कुलवधूशीलस्य तदेव कथितम्। यदुचितं क्षत्रियाणीवाणी प्रक्रमस्य तदेवोपक्रान्तमिति बहुशः प्रशस्य सर्वथा रामलक्ष्मणा लंकामिमां प्राप्ताविति जानकि, जानीहि। अनुजानीहीमं जनं प्रस्थातुम्।

(चम्पू-रामायण सुन्दर काण्ड श्लोक – 34 पृष्ठ 244)

2- पातिव्रत्यहुताशनेन यदि तं कुर्यामहं भस्मसात्सत्यं दाशरथेः शरस्य न भवेदात्मोचिता पारणा।
किं चैतस्य यशोनिशापतिरपि प्रक्लानकान्तिर्भवेद्भातः शासितरावणे रघुपतो यात्रा मम श्रेयसी ।। 33 ।।

(चम्पू-रामायण सुन्दर काण्ड श्लोक – 33)

राम का भी सीता के प्रति अतीव स्नेह है क्योंकि सीता के अनेक गुण एवं अलौकिक रूप से सर्वदा प्रभावित रहते हैं। सीता के बिना सम्पूर्ण संसार उन्हें दु:खमय दिखाई देता है। सीता को श्रीराम जंगल में मंगल मानते हैं। वे कहते हैं - सीता व्याधि होने पर औषधि रूप, क्रीड़ा में सखि, याग आदि कार्यों में पत्नी, युद्ध में क्षत्रियाणी, देवता ब्राह्मण माता-पिता आदि की सेवा में शिष्या, विपत्ति में बन्धु होने से वह जंगल में मंगल करने वाली है।[1]

राम का यह कथन सीता को एक आदर्श पत्नी कुशल सुगृहणी एवं सर्वथा अनुकूल पत्नी से सम्बन्धित सभी गुणों को समग्र रूप में चित्रित करता है।

श्रीराम को सीता का सान्निध्य इतना सुखद है कि उन्हें चित्रकूट का भयावह वन भी अयोध्या के समान लगता है।[2] न केवल श्रीराम का ही अतिशय प्रेम सीता के प्रति है अपितु लक्ष्मण भी ममतामय वात्सल्य स्नेह से सीता से इतना प्रभावित हैं कि उन्हें माँ सुमित्रा के निकट जैसा आनन्द प्राप्त होता है। [3] सीता के चरण कमल

1- आधौ सिद्धौषधिरिव हिता केलिकाले वयस्या

पत्नी त्रेतायजनसमये क्षत्रियाण्येव युद्धे।

शिष्या देवद्विजेपितृसमाराधने बन्धुरार्तो

सीता सा मे शिशिरितमहाकानने का न जाता ।। 4 ।।

(चम्पू-रामायण किष्किन्धाकाण्ड श्लोक – 4)

2- अनुजरचितपर्णागारहृद्यासु माद्यत्परभृतगलचञ्चत्पञ्चमैरञ्चितासु।

जनकदुहितृयोगाज्जातसाकेतसौख्यश्चिरमरमत रामश्चित्रकूटस्थलीषु ।। 52 ।।

(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक – 52)

3- "सुमुखि मम सुमित्रा सत्यमम्बा यदासीत्तदभजमवितर्कं मातृसंपर्कसौख्यम्।

अहह विधिविपाकाद्व्याहरन्ती दुरुक्तिं त्वमसि विपिनमध्ये मध्यमाम्बा हि जाता।। "

(चम्पू-रामायण अरण्यकाण्ड श्लोक – 26)

के पवित्र चिन्हों से युक्त राम का आश्रम ही अयोध्या के समान प्रतीत होता है।[1]

सीता अतीव धैर्यशालिनी हैं रावण के द्वारा हरण कर जब लंका में अशोक वाटिका में रखी जाती हैं तो अपने धर्म की रक्षा में हमेशा तत्पर रहती हैं। कभी भी भय आदि से वह विचलित नहीं होती हैं। यद्यपि रावण का मूकदृष्टि से युक्त हो बारम्बार अपने वचन बाणों से उनके हृदय को विदीर्ण करता है। उस समय वे मध्य में तृण रखकर अपने लज्जाशील एवं धर्म का परिचय देती हुई न केवल प्रत्युत्तर देती हैं, अपितु कटु शब्दों के द्वारा उसकी भर्त्सना कर राम के गुणों का वर्णन करती हैं, जो उनके अद्भुत साहस एवं अपूर्व धैर्य का द्योतक है। रावण के क्रूर कामुक दृष्टि का सामना करने का सामर्थ्य श्रीराम के प्रति उनकी उत्कृष्ट प्रीति एवं दृढ़ निश्चय ही प्रदान करता है।

सीता जब राम के साथ वन को जाती हैं उस समय कण्टक एवं कंकड़ों के मार्ग में होने से उनके चरणों में आलक्तक के बिना ही लालिमा हो जाती है किन्तु उनके मुख में उनकी प्रसन्नता उस समय भी विद्यमान रहती है जो उनके अपूर्व धैर्य की परिचायिका है।[2]

सीता का सौन्दर्य अनिन्द्य है, उनके अद्वितीय लावण्य का चित्रण करते हुए कवि ने उनकी तुलना नूतन चन्द्रमा[3] कलंक रहित मृगांक[4], देवांगना[5] आदि से

1- ततस्तस्योपान्ते जनकयजनाधीनजननां ववन्दे वैदेहीं रजनिकररेखामिव नवाम्।
अख्यानां पुण्यात्पदकमलमुद्रापरिचयादयोध्यासध्रीचीमविकलमवस्थां विदधतीम्।।

(चम्पू-रामाण अयोध्याकाण्ड श्लोक 78)

2- "तस्या विदेहदुहितुः पदयोर्नखेषु लाक्षां विनाप्यरुणिमा सहसा बभूव।
वन्ये पथि प्रियतमेन सह व्रजन्त्या वैवर्ण्यमाविरभवन्न कदापि वक्त्रे" ।। 55 ।।

(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक 55)

3- "ववन्दे वैदेहीं रजनिकररेखामिव नवाम्"

(चम्पू-रामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक 78)

4- "यद्यस्ति कौतजुकमपूर्वमृगे मृगाक्षि, चान्द्रं हरामि हरिणं मम सन्निधेहि।
यावन्न मुञ्चसि मया हृतमेणमेनं, तावद्दधातु तव वक्त्रतुलां मृगांकः" ।। 38 ।।

(चम्पू-रामायण अरण्यकाण्ड श्लोक संख्या 38)

5- "गीर्वाणतरुणीव"

(चम्पू-रामायण सुन्दरकाण्ड पृष्ठ- 332)

की है। श्रीराम ने अनेक स्थलों में सीता के सौन्दर्य को दृष्टि में रखकर कई सम्बोधनों से सम्बोधित किया है। जैसे- सरसीरुहाक्षि, तरुणि, बिम्बावरे, कम्बुकण्ठि, करभोरु, मत्तेभगामिनि, कुटिलायतः कबरि, कुम्भिकुम्भस्तनि, विधुमुखि एवं कज्जलोचने आदि इन सम्बोधनों से सीता के अंग प्रत्यंग के सौष्ठव एवं अलौकिक सौन्दर्य का ज्ञान होता है।

सामान्यतया यह देखा जाता है कि कोई स्त्री अन्य स्त्री के सौन्दर्य से प्रभावित नहीं होती किन्तु सीता के विषय में यह मान्यता भंग हो जाती है, जब शूर्पणखा सीता के अनुपम सौन्दर्य को देखती है तो इतना मुग्ध हो जाती हैं कि वह अपने लिए उस रूप की प्राप्ति की कामना करते हुए ब्रह्मा से यह मन ही मन कहने लगती हैं कि इस जन्म में मुझे भी सीता के समान सुन्दर क्यों नहीं बनाया।[1]

इस प्रकार चम्पू-रामायण में नायिका सीता न केवल अलौकिक सौन्दर्य से युक्त अनुपम गुणों से अलंकृत साध्वी गृहणी के रूप में चित्रित हुई हैं, अपितु स्नेह की साक्षात् मूर्ति अपूर्व धैर्यशाली परम पतिव्रता का रूप भी उनका चित्रित हुआ है।

रावणः

किसी भी सुन्दर गुणी नायक का चरित्र तब तक अपने उदात्त स्वरूप को नहीं प्राप्त कर सकता जब तक उसके उन उदात्त गुणों का प्रतिरोध करने वाला अन्य कोई व्यक्ति न हो क्योंकि अन्धकार ही न हो तो प्रकाश को उतना महत्व प्राप्त नहीं होता। नाटकों एवं काव्यों में नायक के चरित्र को उज्जवल बनाने के लिए प्रतिनायक की कल्पना साहित्यकारों की है। यह प्रतिनायक अपने क्रिया कलापों के द्वारा नायक

---

1 - लावण्याम्बुनिधेरमुख्य दयितामेनामिवैनं जनं
कस्मान्नासृजदस्मदन्वयगुरोरुत्पत्तिभूः पद्मभूः।
आस्तां तावदरण्यवासरसिके हा कष्ठमस्मिन्निमां
कान्तिं काननचन्द्रिकासमदशां किं निर्ममे ।निर्ममे ।। ।8 ।।

चम्पू-रामायण , आरण्य काण्ड

को बाध्य कर देता है कि वह अपने उदात्त गुणों का प्रकाशन करे और इसी परिप्रेक्ष्य में नायक का चरित्र जहाँ अपने उत्कृष्ट स्वरूप को धारण करता है वहीं प्रतिनायक का चरित्र अपने असामाजिक स्वरूप में चित्रित होता है और काव्य का आनन्द सहृदयों के लिए अनुपम हो उठता है।

संस्कृत काव्य शास्त्रों में प्रतिनायक का चरित्र नायक के प्रतिपक्षी के रूप में हुआ है।[1] प्रतिनायक लुब्ध, धीरोद्धत पापी, घमण्डी, दुर्व्यसनी तथा नायक का शत्रु होता है।[2] वह अभिमान एवं ईर्ष्या से युक्त होता है अपने कार्य की सिद्धि के लिए अनेक छल, क्षद्मों तथा कपट का सहारा लेता है तथा अत्यधिक क्रोधी होता है। दूसरे की निन्दा और अपनी बड़ाई करना उसका स्वभाव होता है।[3]

रामायण पर आधारित साहित्य के जितने भी ग्रन्थ हैं सभी में प्रतिनायक के रूप में रावण को ही चित्रित किया गया है। रावण वस्तुतः राम चरित्र विषयक काव्यों में परम विद्वान् तपस्वी, तेजस्वी, अप्रतिम वीर नीतिज्ञ अनुष्ठानी आदि गुणों के साथ-साथ शास्त्र विरुद्ध आचरण करने वाला देवताओं का विरोधी मुनिजन संतापकारक परस्त्रियागामी कपटादि व्यवहार वाला तथा अत्यन्त अभिमानी के रूप में चित्रित हुआ है।

चम्पू-रामायण में भी रावण के लगभग इन्हीं चरित्रों का चित्रण राजा भोज ने यथा सम्भव करने का प्रयास किया है। रावण के चरित्रों का प्रथम उल्लेख बालकाण्ड के प्रारम्भ में ही प्राप्त होता है। इसमें रावण के अत्याचारों से पीड़ित देवतागण सम्मिलित रूप से भगवान् की स्तुति करते हुए उनसे रावण के द्वारा प्राप्त कष्ट का वर्णन करते हुए कहते हैं कि " हे देव यद्यपि कुशलता है फिर भी निवेदनीय यह है कि प्रभूत धन-सम्पदा से समन्वित , देवों से अजेय लंका नाम की राक्षसों की राजधानी

1- दशरूपक 2, 9

2- दशरूपक 2, 9

3- दशरूपक 2,5,6

है जिसमें मणिमय मन्दिरों से प्रदीप तेजः पुञ्ज से सूर्य चन्द्रमा तथा अग्नि तीनों के तेज प्रदीपवत् हो गये हैं। उस लंका नगरी को सर्ज वृक्ष के समान अपने सुन्दर बाहुओं से जिसने यक्षराज कुबेर पर विजय प्राप्त करके प्राप्त किया है। ऐसे समस्त भू-मण्डल को अनायास ही परास्त करने वाले राक्षसों का राजा रावण इस लंका नगरी में बहुत काल से शासन करता है जिसकी चहार दीवारी पर्वत के समान अलंघ्य है , जिस रावण ने दिक्पालों को अपने बस में किया अन्य शत्रुओं को यमलोक का रास्ता दिखाया ऐसा रावण जिसने नाना प्रकार की तपस्या के द्वारा ब्रह्मा जी से दुर्लभ वरों को प्राप्त किया समस्त भू-मण्डल पर अपना शासन चला रहा है। हम सब देवता भी उसी के अधीन हैं जिसके भय से सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र अनेक देवांगनाएँ अग्निदेव सेवा में तत्पर रहते हैं जो अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता उस रावण से हम सभी त्रस्त हैं।[1] इसी प्रकार देवताओं के द्वारा शिकायत के रूप में विष्णु के समक्ष जो प्रार्थना की गयी है। इससे रावण का तेजस्वी, तपस्वी, शक्तिशाली, अभिमानी, दुर्धर्ष, स्वरूप सिद्ध होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि रावण से सबसे ज्यादा कष्ट देवताओं को ही था। यद्यपि देवता लोग सम्पूर्ण सृष्टि के प्राणियों के तत्-तत् ऐश्वर्यो से सेवा करते हैं। इसलिए प्राणिमात्र के प्रतिनिधि बनते हैं जिससे उनका दुखित होना यह प्रभावित करता है कि सृष्टि का सम्पूर्ण क्रम रावण प्रभृति राक्षसों से आक्रान्त था तथापि ग्रन्थकार ने देवता विषयक व्यथा का ही चित्रण किया है।

बालकाण्ड के प्रारम्भिक अवस्था के बाद आरण्यकाण्ड में सीता हरण विषयक प्रसंग में रावण कपटी, चोर, तथा परस्त्रीगामी के रूप में चित्रित हुआ था। तदनन्तर रावण सुन्दर काण्ड में दृष्टिगोचर होता है। जहाँ वह अशोक वाटिका में बैठी हुई सीता जी से प्रणय निवेदन करने के लिए आता है। और अनेक प्रकार के सुमधुर शब्दों से अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास करता है, किन्तु सीता अपने

1- चम्पू-रामायण , बालकाण्ड, 18, 19, 20, 21, 23, 24, 25, 26, 27

सामने तृण का ओट रखकर[1] उसके वचनों का तिरस्कार करती हैं। राक्षस अपने उपदेश को भंग देखकर राक्षसियों को सीता को वश में करने का आदेश देकर लौट जाता है।

सुन्रद काण्ड में पुनः रावण एक राजा के रूप में चित्रित हुआ है। जब हनूमान् अशोक वाटिका को उजाड़ने लगते हैं जिसमें वे अनेक राक्षसों का संहार करते हैं। उस समय ललकारते हुए अक्षय कुमार को युद्ध के लिए प्रेरित करता है।[2] अक्षय के मारे जाने पर इन्द्रजीत को पुनः युद्ध के लिए आदेश देता है[3] जिससे इन्द्रजीत भयंकर युद्ध करके हनूमान् को दरबार में ले आता है।

1- "एतद्दर्शनेन वेपमानतनुलता मैथिली कापुरुषविषयपरुषवचनपारम्पर्येण विदीर्यमाण-हृदया हृदयदयिताशयप्रत्ययादमुमेव तृणमन्तरतः कृत्वा स्थिता पर्यभाषत।।"
अयि, सकलसमाचारप्रतिष्ठानिष्ठः परमेष्ठी ननु कुलगुरुर्भवतः परकलत्ररतिरपत्रपां जनयति हि गोत्रजातानाम्।।

(चम्पू-रामायण, सुन्दर काण्ड, पृष्ठ संख्या 328)

2- "रक्षः संघट्टचूर्णीकृतकनकमहाभित्तिचैत्योत्थधूल्या
नक्षत्राणामकाले सरणिमरुणयन्वीरलक्ष्म्या समेतः।
रक्षः शूराख्यशारान्क्षितितलफके क्षेपणीयां हनूमा-
नक्षक्रीडां विधातुं दशमुखनगरीचत्वरे तत्वरेऽक्षो"।। 38 ।।

(चम्पू-रामायण सुन्दर काण्ड 38)

3- अनिमिषभुवने वा व्योम्नि वा भूतले वा
समरमुपगतं त्वां वीक्षितुं कः समर्थः।
इति नुतिवचनेन श्लाघयन्मेघनादं
प्लवगमिह नयेति प्राहिणोद्राक्षसेन्द्रः ।। 39 ।।

(चम्पू-रामायण सुन्दरकाण्ड , 39)

हनूमान् जी ने रावण के स्वरूप को देखकर आश्चर्य चकित हो बड़ा ही परम ऐश्वरीय सम्पन्न विचित्र स्वरूप का वर्णन किया जो इस प्रकार है- "शिवजी के क्रीड़ा पर्वत कैलास के उत्तोलन में समर्थ बाहुबल वाले जिसे बन्दी बनाई गयी स्वर्ग की अप्सरायें चँवर डुला रही हैं, लाल वर्ण के अधरों के समीप चमकती हुई दन्त पक्तियाँ इस प्रकार अपने तेज से रक्ताकृष्णोज्वल स्वरूप को धारण कर रही थीं, मानों संध्या कालीन रक्ताभमेघ में जिसका मध्य भाग छिप गया है, ऐसे चन्द्रमा से सुशोभित नीलमणि पर्वत हो, युद्ध क्रीड़ा में जिसने दिग्गजों के दन्तों का प्रहार अपने वक्षस्थल में सहा है जो उसके चिन्ह से युक्त रावण छाया रूप में प्रत्येक तरंग पर वर्तमान चन्द्र मण्डल से शोभित समुद्र के समान लग रहा है। हनूमान् ने रावण को ऐसे देखा मानों मुक्ति मार्ग को रोकने के लिए सम्पूर्ण त्रैलोक्य का पाप आया हो अथवा सूर्य चन्द्रमा और अग्नि के तेज को अभिभूत करके अन्धकार स्वेच्छा से सिंहासनासीन हो गया हो।[1] हनूमान् के इस रूप वर्णन से रावण की उत्कट ऐश्वर्य सम्पन्नता प्रकट होती है। रावण राजनीति का पालन न करते हुए रामदूत हनूमान् का बध करना चाहता था। किन्तु विभीषण के रोकने पर वध न करके उसके पूँछ में आग लगवा देता है जो रावण के अधर्म परायणता का सूचक है। युद्ध काण्ड में रावण का चरित्र, उद्धत, दुराभिमानी, परमवीर आदि के रूप में चित्रित हुआ है। उसका वीर स्वरूप युद्ध काण्ड में चित्रित हुआ है जिसमें वह इन्द्रजीत के वध से बोखलाया हुआ क्रोधित हो लौह की गदा, तोमद, कुन्त, यष्टि, धनुष वाण, मुग्दर, शक्ति, कृपाण आदि अस्त्रों को लेकर रणभूमि में आया हुआ रावण यद्यपि अकेला ही था, उसके सभी सहायक मारे जा चुके थे फिर भी वह अपने अनेक मुख एवं बाहुओं से युक्त होने के कारण अन्य लोगों को अनेक बन्धुओं से युक्त व्यक्ति के समान दृष्टिगोचर होता था। वह वानरों के सिर पर बारम्बार तलवार का प्रहार करता हुआ ऐसे लग रहा था मानो युद्ध में देवबालाओं को एक- एक करके यह तुम्हारा

1- चम्पू-रामायण, सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 43, 44, 45, 46

वर है ऐसा निर्देश दे रहा हो।[1]

राम और रावण के युद्ध में रावण का वीरता सम्पन्न वर्णन कवि ने बडे ही मार्मिक ढंग से किया है।[2]

वस्तुतः रावण का विनाश उसके दुरभिमान के कारण हुआ। काम, क्रोध, मद्, लोभ ही उसका परमशत्रु रहा। जहाँ उसने काम के वश में होकर राम जैसे शक्तिशाली योद्धा की पत्नी सीता का हरण किया, वहीं क्रोध के वश में होकर विभीषण जैसे आज्ञाकारी भाई का तिरस्कार किया, दुराभिमानी होने से अपने सुभेच्छों की उचित सलाहों पर ध्यान नहीं दिया तथा सीता के लोभ में मोहित हो उसके प्राप्ति के लोभ का सम्वरण न करने के कारण अपने विनाश का कारण बना। जिससे उसका शौर्य, तेज, सौन्दर्य, आदि विशिष्ट गुण अपने प्रमुख स्थान को नहीं प्राप्त कर पाते, फलतः सुयश के स्थान में रावण अपयश को प्राप्त करता है।

1- क- "कोपादसौ परिघतोमरकुन्तयष्टि
चापाशुगद्रुघणशक्तिकृपाणपाणिः।
एकोऽप्यनेकमुखबाहुतया सबन्धु-
र्लोको यथा समिति लोचनगोचरोऽभूत्" ।। 78 ।।

ख- "अलक्षत स रक्षसामधिपतिः कृपाणं मुहुः
प्रसह्य विनिपातयन्प्लवगमण्डलीमौलिषु।
अयं तव तयायमित्यभिसमीकमेकेकशो
वरानिव विनिर्दिशन्नभरवारवामभ्रुवाम्" ।। 79 ।।

(चम्पू-रामायण युद्ध काण्ड श्लोक — 78, 79)

2- "दशाननशरक्षतिक्षरदसृग्झरीबुद्बुदै-
स्तरंगितमहेन्द्रकंकटसहस्त्रचक्षुःपथाः।
रणे रघुकुलोद्भवः क्षणममानि वैमानिकै-
र्यथा दशशतेक्षणो बलरुषा कषायेक्षण" ।। 86 ।।

चम्पू-रामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 86

भोजराज ने रावण के चरित्र में काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकारों के साथ-साथ शूरता, तेजस्विता और सौन्दर्य आदि के विशिष्ट गुणों का विचित्र समन्वय प्रदर्शित किया है। जहाँ कवि ने रावण के प्रशस्ति से सम्बन्धित उक्तियों से उसके पराक्रम आदि को द्योतित किया वहीं रावण के हन्ता राम के वीरत्व, सामर्थ्य, साहस आदि की चरमावस्था का भी द्योतन किया है और उनके द्वारा दुराचारी रावण के वध के औचित्य को सिद्ध किया है।

कवि ने काव्यशास्त्रों के प्रतिपादित प्रतिनायक के चरित्र को उद्धत सिद्ध करने के उद्देश्य का पूर्णतया सम्मान किया है।

दशरथः

राजा दशरथ अयोध्या नगरी के चक्रवर्ती सम्राट थे। चम्पू-रामायण में भोजराज ने इनके अप्रतिम स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा कि देवराज इन्द्र जिन्हें आदरपूर्वक अपना आधा आसन प्रदान करते हैं। दैत्यों के ऊपर विजय प्राप्त करने में सहायता करने के कारण देवगण द्वारा समर्पित पारिजात की माला से अधिवासित आवास देश वाले महाराजा दशरथ अयोध्यापुरी में वास करते थे।[1]

अन्यत्र भोज ने दशरथ के रथ का वर्णन करते हुए कहा है दशरथ का रथ अत्यन्त कपटपूर्ण होने के कारण भयंकर युद्ध करने वाले दैत्यों की सेना के आक्रमण से डरे हुए देवताओं के सैनिकों से सर्वदेव घिरा रहता है।[2] इससे दशरथ के अतिशय पराक्रमी रूप का परिचय प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रीराम के विवाह के लिए जनकपुरी

1- तामावसद्दशरथः सुरवन्दितेन
संक्रन्दनेन विहितासनसंविभागः।
वृन्दारकारिविजये सुरलोकलब्ध-
मन्दारमाल्यमधुवासितवासभूमिः ।। ।2 ।।

(चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या ।2)

2- "अपरिमेयमायाभयानकयुद्धसमुद्धतदैत्यबलावस्कन्दकांदिशीकवृन्दारकानीक-
परिवार्यमाणरथः पंक्तिरथः" ।।

(चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ- 32)

जाते समय कवि ने दशरथ के यश शौर्य पितृत्व योग्यता आदि को अभिव्यञ्जित करने की कामना से दशरथ के चरित्र की उदात्तता एवं महानीयता बतलाते हुए कहा है कि जिस चक्रवर्ती राजा दशरथ के यश को देव सुन्दरियाँ अपनी संगीत गोष्ठी में सर्वप्रमुख रूप से गाती है। जिसे पुराण पुरुष नारायण के पिता को पद प्राप्त है, जिससे पृथ्वी सुराज से और इन्द्र जिसके रथ के ध्वज को वायु द्वारा लहराते हैं और युद्ध स्थल में जिसकी सहायता से विजय प्राप्त करते हैं, वहीं दशरथ इस मिथिलापुर में आये। इस प्रकार दशरथ के अपूर्व तेजस्विता एवं शूरता का वर्णन किया है।[1]

दशरथ अपनी भुजाओं के बल से अन्य राजाओं के लिए दुर्लभ शान्ति की स्थापना करके अपने राज्य को सुखी बनाते हैं और स्वयं असाधारण सुख प्राप्त करते हैं।[2] यद्यपि उनके राज्य का विस्तार कितना था इसकी चर्चा चम्पू-रामायण में नहीं है अर्थात् वाल्मीकि रामायण में इसका स्पष्ट उल्लेख है जिसमें कहा गया है जितनी दूर तक चक्र घूमता है उतनी पृथ्वी दशरथ की है दशरथ के राज्य में द्रविड़, सिन्धु, सोवीर, सौराष्ट्र, दक्षिणापथ, अंग, मगध, मत्स, काशी और कौशल आते हैं।[3]

1- "यत्कीर्तिस्तिलकायते सुखधूसंगीतगोष्ठीमुखे
येनाद्यः पितृमान्पुमान्वसुमती येनैव राजन्वती।
इन्द्रः संगरसंकटेषु विजहौ वीरस्य यस्योन्मुख-
प्रेंखत्स्यन्दनकेतनाम्बरदशासंदर्शनाद्दुर्दशाम् ।। 106 ।।
(चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 106)

2- "गच्छता दशरथेन निर्वृत्तिं भूभुजामसुलभां भुजाबलात्।
मातुलस्य नगरे युधाजितः स्थापितौ भरतलक्ष्मणानुजौ ।। 1 ।।
(चम्पू-रामायण, अयोध्याकाण्ड श्लोक – 1)

3- क- "यावदावर्तते चक्रं तावती मे वसुन्धरा" ।। 36 ।।
ख- द्रविड़ाः सिन्धुसौवीराः सौराष्ट्रा दक्षिणापथाः।
वगांगमगधा मत्स्याः समृद्धाः काशिकोसलाः ।। 37 ।।
(वाल्मीकि-रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग 10/36-37)

दशरथ अपने सभी कार्यो के क्रियान्वयन के पूर्व स्वयं किसी का निर्णय नहीं लेते अपितु मन्त्रि परिषद बुलाकर उससे विमर्श करके सर्वसम्मति से निर्णय को लेकर उसे कार्यान्वित कर देते हैं। कभी-कभी प्रजा की सम्मति को भी सम्मान देकर उनके निर्णयानुसार उसे कार्य रूप प्रदान कर देते हैं जैसे- राम के राज्याभिषेक की बात जब दशरथ के मन में उठती है तो अपने मन्त्रियों तथा परम आचार्य गुरू वसिष्ठ जी के साथ-साथ वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध नागरिकों को आमन्त्रित कर सबके समक्ष अपनी बात रखते हैं जिसका सब समर्थन करते हैं।[1]

दशरथ की तीन रानियाँ थीं, कौसल्या, केकेयी एवं सुमित्रा इन तीनों रानियों में शारीरिक एवं बौद्धिक सौन्दर्य में केकेयी अधिक थी जिसे राजा विशेष स्नेह प्रदान करते थे, अन्य सभी रानियों के प्रति भी उनका सहज स्नेह था, ऐसा नहीं था कि कौसल्या एवं सुमित्रा की उपेक्षा करते रहे हों, पर केकेयी में अतिशय प्रीति थी। वे इसे स्वयं अनुभव करते थे। केकेयी के लिए पायस अर्पण करते समय प्रणय मधुरम् शब्दतापूर्ण उनके केकेयी के प्रति परवशता को प्रकट करता है।[2]

वस्तुतः दशरथ का सबसे अधिक प्रेम राम के प्रति था। इसलिए केकेयी के द्वारा रामवन गमन की याचना करने पर दशरथ केकेयी से अत्यधिक रुष्ट हो जाते हैं और उसकी भर्त्सना करते हैं। कहते हैं कि दुर्भाग्य से तुम्हारे साथ मेरा विवाह

1- "वत्सेऽस्मिन्विश्वंभराभारं चिरकालधार्यमाणमार्यैरनुमतः सन्नवतार्य विश्रान्ति सुखमनुभवितुमभिलषामीति।

(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड पृष्ठ-108)

2- "कौसल्यायै प्रथममदिशद्भूतिः पायसार्ध

प्रादादर्धं प्रणयमधुरं केकयेन्द्रस्य पुत्र्यै।

एते देव्यौ तरलमनसः पत्युरालोच्य भावं

स्वार्धांशाभ्यां स्वयमकुरुतां पूर्वकामां सुमित्राम्" ।। 23 ।।

(चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक – 23)

मुझे यम के समीप ले जा रहा है।[1]

वस्तुतः दशरथ के राम न केवल पुत्र थे, अपितु उनके प्राण के आधार थे। इसीलिए पुत्र विरह की व्यथा से आकुल होने के कारण से विश्वामित्र को भी राम लक्ष्मण को देने में अत्यधिक व्याकुलता अनुभव करते हैं।[2] रानी केकेयी के वरदान माँगने पर वे दोनों वरदान दशरथ को ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों आग में तपाये हुए ताम्र की बरछी उनके कानों से हृदय में छेद दी गयी हो।[3] वे छटपटाते हुए कह उठते हैं कि राम के बिना मेरा जीवन असम्भव है।[4]

1- "वत्सं कठोरहृदये नयनाभिरामं रामं बिना न खलुतिष्ठति जीवितं मे।
धातुर्बलादुपयमस्त्वयि जातपूर्वः केकेयि मामुपयमं नयतितिमन्ये।।
(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक 15)

2- "एतदाकर्ण्य कर्णपरुषं महर्षिभाषितमतिमात्रपुत्रवात्सल्यातकौसल्याजानिः
सशल्यान्तकरणोऽभूत्।"
(चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ 41)

3- क- तस्मिन्क्षणे वरयुग चिरतप्तताम्र नाराचवेधपरुषं श्रवसी विदार्य।
सत्यप्रहाणचकितस्य नृपस्य काममूरीचकार हृदयेपुटपाकरीतिम् ।। 12 ।।

ख- "तनयविरहवार्तामात्रसंतप्यमाना दथ दशरथचित्ताच्चेतना निर्जगाम।
दवहुतवहरोचिर्ज्वालया लेह्यमानाज्झटिति गहनगुल्मादुज्जिहाना मृगीव ।। 13 ।।
(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक 12, 13)

4- "वत्सं कठोरहृदये नयनाभिरामं रामं बिना न खलु तिष्ठति जीवितं मे।
धातुर्बलादुपयमस्त्वयि जातपूर्वः केकेयि मामुपयमं नयतीति मन्ये ।। 15 ।।
(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड)

इस प्रकार दशरथ का चरित्र कुशल प्रशासक लोकप्रिय, देव संरक्षक, अप्रतिम धर्नुधारी, प्रतापी अतिशय राम विषयक प्रीति वाले पिता के रूप में तथा जनप्रिय राजा के रूप में चित्रित हुए हैं।

भरतः

भरत राम साहित्य में श्रेष्ठ मानव के रूप में वर्णित हैं दशरथ की द्वितीय अतिशय प्रिय रानी कैकेयी के गर्भ से द्वितीय पुत्र के रूप में जन्मे भरत जिनका स्वरूप राम के ही सदृश है। सभी के न केवल प्रिय पात्र हैं अपितु श्रद्धास्पद भी हैं। भरत ने उत्कृष्ट भ्रातृप्रेम मातृ-पितृ भक्ति और त्याग के उत्कृष्ट भावना का परिचय अपने चरित्र के माध्यम से दिया है। चम्पू-रामायण में जहाँ जन्म एवं विवाह के रूप में भरत की चर्चा है, वहीं अयोध्याकाण्ड में अपने माता की भर्त्सना पिता के और्ध्वदैहिक संस्कार के सम्पादक के रूप में तथा श्रीराम जी के नगर परावर्तन के अथक प्रसंशनीय प्रयास के रूप में हुआ है। युद्ध काण्ड में राम के अयोध्या लौटने पर उनसे मिलकर राज्य के समर्पण तथा राम के राज्याभिषेक के समय तक का वर्णन भरत को लेकर हुआ है।

केवल इतने अंश में ही भरत ने अपनी अमिट छाप पाठकों पर छोड़ी है। बालकाण्ड में चम्पू-रामायण में भरत को विनयोज्ज्वल शब्द से सम्बोधित किया गया है।[1] भरत की ज्येष्ठ बन्धु राम के प्रति उत्कृष्ट स्नेह का चित्रण बड़े ही मार्मिक रीति से राजा भोज ने किया है। चित्रकूट के वन में स्थित आश्रम में भरत जब ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम को देखते हैं तो उनके चरणों में दौड़कर ऐसे गिर पड़ते हैं, जैसे ग्रीष्म ऋतु के प्रचण्ड ताप से संतप्त बालुकामय मार्ग में सौभाग्यवश अन्ततः शीतल जल से

1- "भरतस्तेषु कैकेय्यास्तनयो विनयोज्ज्वलः ।
अन्यौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायां कृतोदयौ ।। 32 ।।
(चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक 32)

पूर्ण सरोवर को देखकर प्यासा मृग दौड़ता है।[1]

भरत का चरित्र अद्वितीय है। उनके चरित्र का यथार्थ चित्रण करते हुए भोजराज ने कहा है कि राम के प्रति भरत की प्रार्थना सूर्य कुलानुरूप थी, उनके गुण एवं यश के अनुरूप थी, जिसका समन्वय भरत के समीचीन आकार से स्थित था जिसको भरत के पूर्व पुण्यों ने प्रभावित किया जो अनिन्द्यय और शास्त्रानुसार थी।[2]

भरत अतीव निष्क्रिय तथा दृढ़प्रतिज्ञ और भ्रातृ प्रेमी थे। अयोध्या जैसे महत्वपूर्ण देश का राजपद प्राप्त करने के बाद भी राम को समर्पित करने के लिए उनका अयोध्या जाना अत्यन्त विनय पूर्वक निवेदन करना गुरुजनों के द्वारा ही राज्यपद संभालने के लिए राम को प्रेरित करवाना उनके निस्पृहता एवं भ्रातृ प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है।

1- विकर्त्तनकुलस्य यदनुकूलं गुणगणस्य यदनुगणं यशोरूपस्य यदनुरूपं समाचारस्य यत्समुचितं प्राचीनभाग्यस्य यद्योग्यं लोकगर्हणाय यदनह श्रुतस्य यत्सदृशं तादृदशमाशयं प्रकाशयन्ती भरतोपज्ञा विज्ञापना

(चम्पू-रामायण अयोध्याकाण्ड पृष्ठ संख्या 192)

2- तत्क्षणम् क्षणप्रभाभंगुरलक्ष्मीसमावेशलक्ष्मणि क्षोणीपतिशतधृतोज्झिते मुकुटे विघटिताशं सादरं प्रणिपत्य, मां पादुकाभ्यां परिष्कुरुतं युवामिति रघुवर चरणौ स्वमेवप्रार्थ्य प्रतिश्रावयितुं स्थण्डिलशायिचरणमिव बभार भरतस्योत्तमांगम्

(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड 153)

सबके समझाने के बावजूद भी भरत के द्वारा प्रार्थना करने पर भी जब राम यह उत्तर देते हैं कि हमें और आपको पिता के आज्ञा का परिपालन करना चाहिए।[1] उनसे चरणों की पादुका स्वरूप दो मूल्यवान मुकुट को अपने सिर पर धारण करके[2] अग्रज श्रीराम की आज्ञा से अयोध्या को जाते हैं[3] तथा सम्पूर्ण राजा विषयक राजोचित वस्त्र आभूषणों को त्यागकर वल्कल वस्त्रों तथा जटा को धारण करके[4] नन्दिग्राम में निवास करते हैं [5] और वहीं से अयोध्या का राज्य कार्य की देख-रेख करते हुए एक राजर्षि का जीवन व्यतीत करते हैं।

इस प्रकार भरत का चरित्र एक आदर्श चरित्र के रूप में भोजराज ने चित्रित किया है जो मानवमात्र के लिए अनुकरणीय है।

1- "त्वया मया च कर्तव्यः सत्यवाचः पितुर्विधिः।
इति प्रत्यादिशद्रामो भारतीमपि भारतीम्" ।। 81 ।।
(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक - 81)

2- भरतस्तदनु प्रार्थ्य लेभे लाभविदां वरः।
काकुत्स्थपादुकाकारं महार्घं मुकुटद्वयम्" ।। 82 ।।

3- "स एष सानुजः प्रायादयोध्यां भ्रातृशासनात्।
अटवीं पितृसंदेशाद्ययौ रामः सलक्ष्मणः " ।। 83 ।।

4- "विलंघ्य विविधान्देशान्भरतो धृतवल्कलः।
विषयं स्वमुपाश्रित्य विषये विमुखोऽभवत" ।। 84 ।।

5- ततश्चायं यावदार्यस्य प्रत्यागमनं तावदयोध्यां नाध्यासे। तस्मिन्नवधिमतिक्रम्य चिरायति सद्य एवाग्याशमाश्रित्यापि प्राणान्नदयिष्यामीति नन्दिग्रामसंज्ञमाश्रम-मशिश्रयत्।
(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक - 83, 84 पृष्ठ संख्या 196)।

लक्ष्मण:

लक्ष्मण का चरित्र श्रीराम से सम्बन्धित सम्पूर्ण साहित्य में अतीव सुन्दर रीति से सर्वत्र चित्रित हुआ है। राम के प्रति उत्कृष्ट अनुराग वाले लक्ष्मण अन्य सम्बंधों के प्रति उतने संवेदनशील नहीं हैं। अतिशय बुद्धिमान वीर पराक्रमी किञ्चित उद्धत स्वभाव से युक्त लक्ष्मण राम के अतिशय स्नेह पात्र हैं। इनका चरित्र राम के चरित्र के साथ-साथ सर्वत्र चित्रित हुआ है।

लक्ष्मण महाराज दशरथ के कनिष्ठ रानी सुमित्रा के ज्येष्ठ पुत्र तथा अपने भाइयों में तृतीय पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए थे। इनके छोटे भाई का नाम शत्रुघ्न है।[1]

लक्ष्मण शुरू से श्रीराम के साथ ही रहते थे। यहाँ तक कि विश्वामित्र भी राम के साथ लक्ष्मण की ही याचना करते हैं।[2] वसिष्ठ भी लक्ष्मण के साथ ही राम को विश्वामित्र के साथ भेजने की सलाह देते हैं। इस तरह शुरू से ही राम लक्ष्मण सहचर्य रहता है। साथ-साथ ही विश्वामित्र उन्हें अनेक विद्याओं का उपदेश देते हैं और वे दोनों सुबाहु , मारीचि आदि मुनिजन त्रासकारक राक्षसों को साथ-साथ ही वध करते हैं। जनकपुर में जाने पर धनुष भंग एवं विवाह आदि कार्य के प्रसंग में भी लक्ष्मण सर्वत्र श्रीराम के सानिद्ध में रहते हैं। वन गमन के प्रसंग में भी लक्ष्मण की स्थिति देखी जाती है। अरण्यकाण्ड में सीता हरण के प्रसंग में सीता के प्रति मातृ के रूप में अतिशय स्नेह एवं सम्मान उसी के अनुसार उनकी सेवा लक्ष्मण की देखी जाती थी।

1- "भरतस्तेषु कैकेय्यास्तनयो विनयोज्ज्वलः ।
अन्यौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायां कृतोदयौ" ।। 32 ।।

(चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 32)

2- "राजन् भवतस्तनयेन विनयाभिरामेण रामेण शरासनमित्रेण सौमित्रिमात्रपरिजनेन क्रियमाणक्रतुरक्षो रक्षोदुरितमुत्तीर्य कृतावभृथो भवितुमभिलषामीति।

(चम्पू-रामायण बालकाण्ड पृष्ठ संख्या 40)

भोजराज के अनुसार लक्ष्मण वन में श्रीराम के प्रत्येक सेवा कार्य को बड़ी प्रसन्नता एवं श्रद्धा से करते हैं। वे पत्तों की शय्या तेयार करते हैं। पहरा देते थे श्रीराम का भजन करते थे। वन मार्ग में कभी भी लक्ष्मण ने निद्रा लाभ नहीं किया।[1]

लक्ष्मण का स्वभाव कभी-कभी उग्र भी हो जाता था/श्रीराम के प्रति किसी भी प्रकार की किसी के भी द्वारा की गयी अवहेलना को सहन नहीं कर पाते थे। वे पिता के द्वारा राम वन गमन आज्ञा को सुनकर क्रोध से भड़ककर राम से कहने लगते हैं कि निन्दनीय कैकेयी के कहने पर रजोगुण तथा बार्थक्य से क्षीण विचार शक्ति वाले राजा के अविचारपूर्ण आज्ञा को मानकर राज्य को त्याग एवं वनगमन अनुचित है। किञ्चपिता ने आपको राज्य पहले ही दिया था। इसलिए वह आपको न्यायतः प्राप्त है। ऐसा कहकर वह श्रीराम को पिता का आदेश भंग कर बलपूर्वक राज्य प्राप्त करने का परामर्श देते हैं।[2] राम लक्ष्मण के अपने स्नेह वश दी गयी इस सलाह को न मानकर पिता की आज्ञा का पालन में ही अपना कर्तव्य है ऐसा लक्ष्मण को समझाते हैं तो लक्ष्मण उसे स्वीकार कर लेते हैं। इसी प्रकार आरण्यकाण्ड में सीता के तिरस्कार के बदले के रूप में शूपर्णखा के नाक और कान को काटकर उसे उचित दण्ड देते हैं।[3]

1- "आर्य, अकार्यमिदं लोकगर्हणार्हायाः केकेय्या वचसा रजसा जरसा च समाक्रान्तस्वान्तया कृत्याकृत्यविवेकमूकस्य राज्ञः प्रज्ञाशैथिल्यान्निः सृतेन वचसा संत्यज्य राज्यमटवीपर्यटनं विधातुम।

(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड पृष्ठ संख्या 132)

2- "सीतापतेः किसलयै परिकल्प्य तल्पं संचार्य सत्वदमनाय निशासु दृष्टिम्।
धन्वी तदंघ्रिभजनादिव पुण्यलभ्यादस्न्न एव वनवर्त्मनि लक्ष्मणोऽभूत" ।। 56

(चम्पू-रामायण श्लोक संख्या 56)

3- सीतामाहर्तुकामामसुलभविषयप्रार्थनोद्दामकामां
सौमित्रिः शस्त्रपाणिर्दशमुखभगिनीं तामनार्या निवार्य।
कामक्रोधात्मिकानामहमहमिकया प्रेंखतामायतानां
तस्याः श्वासानिलानामकुरुत तरसा मार्गविस्तारकृत्यम् ।। 19 ।।

(चम्पू-रामायण आरण्यकाण्ड श्लोक 19)

लक्ष्मण श्रीराम की आज्ञा का विशेष ध्यान रखते थे। वे जब श्रीराम की आज्ञा से सीता के संरक्षण में सन्नद्ध रहते हैं उस समय राक्षस मारीच के मायापूर्ण हा लक्ष्मण ! हा सीते ! यह राम की वाणी सुनाई देती है तो भय विह्वल सीता लक्ष्मण को राम के पास जाने को कहती हैं। यद्यपि लक्ष्मण राम के अद्वितीय वीरता का परिचय सीता को कराते हुए उन्हें सुरक्षित बतलाना चाहते हैं, किन्तु सीता के कठोर वाक्य कहने पर उन्हें शिष्ट भाषा में सुमित्रा माता के स्वरूप में स्थित सीता परुष वचन उच्चारण करने पर केकेयी की उपमा दे देते हैं।[1]

इस कथन से उनके भ्रातृ प्रेम का तथा मर्यादित आचरण का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है।

सीता हरण के पश्चात् उनके शोक में व्याकुल श्रीराम को देखकर लक्ष्मण भी अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं।

किष्किन्धा काण्ड में श्रीराम के प्रत्येक कार्यो की पूर्ति लक्ष्मण के द्वारा ही देखी गयी है। चाहे वह सुग्रीव का राज्याभिषेक हो अथवा उसे राम कार्य के लिए जागरूक करने का कठोर प्रयास रहा है। सर्वत्र- लक्ष्मण की भूमिका समय-सापेक्ष रही है, और श्रीराम से अनुमोदित रही है।

श्रीराम का जब रावण के सेना पुत्र इन्द्रजीत आदि से तथा स्वयं रावण से युद्ध की स्थिति प्राप्त होती है उस समय लक्ष्मण अपने प्राणों की बाजी लगाते हुए, युद्ध करते हुए श्रीराम एवं सीता के प्रति अपनी उत्कृष्ट श्रद्धा भक्ति एवं सेवा भाव

1- सुमुखि मम सुमित्रा सत्यमम्बा यदासीस्तदभजभवितर्के मातृसंपर्कसौख्यम्।
अहह विधिविपाकाद्व्याहरन्ती दुरुक्तिं त्वमसि विपिनमध्ये मध्यमाम्बा हिजाता।।
(चम्पू-रामायण आरण्य काण्ड श्लोक 26)

को प्रमाणित करते हैं और अन्त में प्राप्त विजयश्री के एक अनुपम सहायक सिद्ध होते हैं।

इन्द्रजीत के वध के प्रसंग में लक्ष्मण के अद्‌भुत पराक्रम का चित्रण कवि ने बहुत ही श्रेष्ठ रीति से किया है।[1]

इस प्रकार लक्ष्मण का उत्कृष्ट चरित्र चम्पू-रामायण काव्य में चित्रित हुआ है।

हनूमान्:

रामचरित्र विषयक अखिल साहित्य में हनूमान् का नाम बड़े ही श्रद्धा भक्ति एवं आदर के साथ लिया गया है क्योंकि रावण के विनाश में तथा अन्य सेवा विषयक कार्यों में हनूमान् की प्रमुख भूमिका रही है। हनूमान् का ऐसा चरित्र सभी राम विषयक साहित्य में चित्रण हुआ है कि अन्य पात्र अपने आप हनूमान् की अपेक्षा अल्प हैं। हनूमान् का जहाँ सर्वविद्या सम्पन्नता द्योतित होती है वहीं बुद्धि की तीव्रता भी परिलक्षित होती है। असीम बलशाली वीरता एवं धीरता के प्रतिमूर्ति शत्रु पक्ष नाशक स्वपक्ष रक्षक श्रीराम के प्रति पूर्णतया समर्पित हनूमान् का चरित्र सर्वथा प्रशंसनीय है। किष्किन्धा काण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक हनूकान् की प्रमुख भूमिका न केवल चम्पू-रामायण में अपितु सभी रामायण अथवा राम विषयक साहित्य में प्राप्त होती है। सुन्दर काण्ड में तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस काण्ड के नायक हनूमान् ही हैं।

भोजराज ने हनूमान् का परिचय देते हुए कहा हनूमान् ने सूर्य से विद्या प्राप्त करके सूर्य पुत्रत्व का (सूर्य शिष्यत्व का) और जन्म के द्वारा पवन पुत्रत्व का

1- शतधारकठोरशिखैर्विशिखैः शतधा विरचय्य शरासगुणम्।
विदधे विबुधेशजितं समरे हतसारथिमप्यथ दाशरथिः ।। 74 ।।
(चम्पू-रामायण , युद्ध काण्ड, श्लोक 64)

लाभ प्राप्त किया। इन्द्र के द्वारा हनुभंग रूप चिन्ह से युक्त है। जो रावण के यश रूपी चन्द्रमा के साक्षात् कृष्णपक्ष है- अर्थात् उसे समाप्त करने वाले हैं ऐसे हनूमान् श्रीराम के पास आ गये।[1]

हनूमान् सुग्रीव के दूत बनकरके राम के पास आते हैं। उन्हें यह पता है कि दूत को किस प्रकार होना चाहिए। हनूमान् श्रीराम का जहाँ परिचय प्राप्त करते हैं वहीं अपने मधुर वार्ता से उन्हें प्रसन्न कर देते हैं। वे राम और लक्ष्मणे से वार्ता करने के लिए उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि आपके साथ वार्तालाप रूप अमृत के लालची इन कारणों से आनन्द को प्राप्त करने में नम्र हुई यह हमारी जिह्वा स्वयं प्रवृत्त हो रही है।[2]

इस प्रकार माधुर्य युक्त वाणी का प्रयोग करते हुए सुग्रीव का और अपना परिचय देते हैं तथा दोनों की मैत्री कराते हैं।

हनूमान् ने सुग्रीव की श्रीराम से मित्रता कराकर न केवल श्रीराम के द्वारा अभय एवं राज्यपद प्राप्त करने में सहायता की अपितु उन्हें राम के कार्य के सम्पादन के लिए बार-बार सजग भी किया जो मित्रता का सुन्दर आदर्श कहा जा सकता है। हनूमान श्रीराम तथा सुग्रीव की आज्ञा से सीता के अन्वेषण के लिए दक्षिण दिशा को

1- "तपनपवनयोर्यः प्राप्तवान् पुत्रभानं
शतमखकृत पालिर्विद्यया जन्मना च।
स तु दशमुखकीर्तिस्तोमसोमस्य पक्ष-
श्चरम इव तनूमान् प्राप रामं हनूमान् ।। 6 ।।
(चम्पू-रामायण किष्किन्धाकाण्ड श्लोक संख्या 6)

2- "युष्मद्वार्तासुधास्वादलुब्धयों श्रोत्रयोः सुखम्।
स्वयमेव ग्रहीतुं में जिह्वा प्रह्वा प्रवर्तते ।। 8 ।।
(चम्पू-रामायण, किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 8)

प्रयाण करते हैं। कार्य की सम्भावना जानकर हनूमान् को ही श्रीराम अभिज्ञान रूप में मुद्रिका प्रदान करते हैं। इससे हनूमान् के प्रति राम की विश्वास पात्रता सिद्ध होती है।

हनूमान् इतने धैर्यशाली हैं कि स्वयं किसी कार्य के लिए अचानक नहीं आते। जब उन्हें कोई इस कार्य विशेष के लिए प्रेरित करता है तो वे शीघ्र ही उसके सम्पादन में तत्पर हो जाते हैं। सभी जाम्बवान्, अंगद आदि वानरों के अपने बल का बखान करने के बाद समुद्र लंघन रूप कार्य में सभी की किसी न किसी रूप में असमर्थता दिखलाई पड़ती है उस समय हनूमान् जी जब जाम्बवन्त से प्रेरित होते हैं तभी समुद्र लंघन कार्य में तुरन्त तत्पर हो जाते हैं।[1] मार्ग में समुद्र लंघन करते समय मेनाक पर्वत अपनी सेवा देने के लिए आता है जिसे हनूमान् जी सम्मानपूर्वक मना कर देते हैं।[2]

सुरसा नामक सर्पमाता मिलती है जो उसे निगलने का प्रस्ताव रखती है। सर्वप्रथम अपना विशाल स्वरूप प्रगट करना और एकाएक अतीव लघु रूप बनाकर मुख में प्रवेश करके तथा शीघ्र निकलकर अपनी बुद्धि लाघव का यथेष्ट परिचय हनूमान् देते हैं। मार्ग में ही छायागृहणी सिंहिका नामक राक्षसी का बध कर वायुमार्ग में चलने वाले पक्षी आदि जीवों के विघ्नों को सदा के लिए समाप्त कर देते हैं। यद्यपि हनूमान् दिन के समय ही लंका के समीप पहुँच जाते हैं परन्तु रात्रि में ही गुप्तचर का काम आसान होता है ऐसा समझकर प्रदोष काल में शत्रु रावण की कीर्ति रूपी यवनिका

1- हे वीरा यूथनाथाः ! परिणतिपरुषः कार्य असीद्विषादः

कस्मादस्माकमेतज्जलनिधितरणे शक्तिरेतावतीति।

स्मृत्वा राज्ञः प्रतिज्ञामयमनिलसुतो लंघनायोन्मुखश्चेद्भेदः

प्रादुर्भवेत्किं कथयत पयसामास्पदे गोष्पदे वा ।। 46 ।।

(चम्पू-रामायण किष्किन्धाकाण्ड श्लोक संख्या 46)

2- सागरेण कृतज्ञेन तवाध्व श्रान्तिशान्तये।

मारुते! प्रेरितोऽस्म्यद्य सौम्य ! विश्रम्य गम्यताम् ।। 4 ।।

(चम्पू-रामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 4)

को हटाकर देवताओं को प्रसन्न करने के लिए लंका प्रवेश रूप नूतन नाटक के सूत्रधार के समान हनूमान् एकाएक लंका में प्रविष्ट हुए।[1]

इस कथन के द्वारा कवि ने सुन्दर काण्ड के प्रमुख पात्र के रूप में हनूमान की प्रस्तुति की है तथा लंका विजय में भी सूत्रधार के रूप में हनूमान् की सिद्धि होती है।

हनूमान् सर्वत्र अपना परिचय स्वयं भे दे देते हैं। जब राम लक्ष्मण के सामने किष्किन्धाकाण्ड में उपस्थित होते हैं तो उस समय श्रीराम के विषय में परिचय प्राप्त करते हुए अपना भी परिचय देते हुए कहते हैं कि सुग्रीव के द्वारा भेजा गया हनूमान् नाम का भिक्षुक को कपट वेश बनाये हुए उस व्यक्ति को अन्जन एवं वायु के पुत्र के रूप में जाने।[2]

अशोक वाटिका में यद्यपि हनूमान् सीता से परिचित नहीं हैं किन्तु सम्पाति के कथनानुसार सर्वत्र खोजते हुए अशोक वाटिका में बैठी हुई सीता को राम द्वारा बतलाये गये चिह्नों के आधार पर सीता साम्प्रति चिन्तातुर अवस्था को देखकर वे उसे न केवल पहचान लेते हैं अपितु स्वयं भी उनकी उस अवस्था को देखकर मन में कष्ट का अनुभव करते हैं।

1- "तस्मिन्प्रदोषसमये सहसा हनूमानन्कीर्तिच्छटाजवनिकामपनीय शत्रोः
आविर्बभूव सुमनःपरितोषणाय लंकाप्रवेशनवनाटकसूत्रधारः" ।। ।2 ।।

(चम्पू-रामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या ।2)

2- "प्रेषितं हनूमदभिधानं भिक्षुरूपच्छन्नं वानरमिमं जनमाञ्जनेयं प्रभञ्जनसंजातं जानीतमिति।। '

(चम्पू-रामायण किष्किन्धा काण्ड पृष्ठ 26।)

रावण के कटु वचन कहने के अनन्तर उसके चले जाने पर दुःख से व्याकुल सीता जब अपने प्राणों को त्यागना चाहती हैं तथा हनूमान् सीता के समक्ष प्रकट होते हैं और श्रीराम के वंश प्रशंसा के रूप में अनेक मधुर वाक्यों को कहते हैं जिसे सुनने के बाद सीता की व्यथा कुछ शान्त होती है किन्तु इनके वानर स्वरूप को देखकर सीता को रावण का ही भ्रम प्राप्त होता है जिसे अपने युक्तिपूर्ण विनयी सरल वचनों के द्वारा सीता को न केवल शान्त करके अपितु उनका विश्वास भी प्राप्त करते हैं और अपने द्वारा लाये गये अभिज्ञान को सीता को समर्पित करते हैं और उन्हें सान्त्वना प्रदान करके राम को बतलाने के लिए सीता का सन्देश तथा अभिज्ञान के रूप में चूड़ामणि को ग्रहण करते हैं।

हनूमान् की यहाँ पर दोहरी भूमिका का निर्वाह उनके बुद्धि कौशल को अप्रतिम स्वरूप प्रदान करता है। ये न केवल दूतकर्म का निर्वाह करते हुए सीता को सान्त्वना एवं अभिज्ञान प्रदान कर राम के लिए सन्देश तथा अभिज्ञान प्राप्त करते हैं अपितु गुप्तचर्य का यथा सम्भव निर्वाह करते हुए रावण के तथा उसके सेना के बल बुद्धि एवं पराक्रम को जानने की इच्छा से अशोक वाटिका को उजाड़ते हैं और प्रतिकार के रूप में आये हुए वन संरक्षकों, सैनिकों, मन्त्रिपुत्रों तथा अक्षय कुमार का संहार करते हैं। इन्द्रजीत के साथ युद्ध करते समय रावण से मिलने की इच्छा से ब्रह्मपाश का सम्मान करते हुए उसमें बंधकर रावण से अपनी बात कहकरके उसको भी आश्चर्य चकित कर देते हैं। हनूमान् के अप्रतिम स्वरूप को देखकर रावण सोचने लगता है यह कौन व्यक्ति है जो इस प्रकार दिखाई दे रहा है कहीं कैलाश पर्वत के उत्थान रूप अपराध से रुष्ट होकर साक्षात् नन्दीश्वर तो नहीं उपस्थित हो गये हैं।[1]

---

1 - 'सोऽपि पल्वंगमभिवीक्ष्य समीरपुत्रं
चित्रीयमाणहृदयः पिशिताशनेन्द्रः।
कैलासशैलचलनागसि शापदायी
नन्दीश्वरः स्वयमुपागत इत्यमंस्त' ।। 47 ।।

चम्पू-रामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 47

इस प्रकार हनूमान् का तेज अप्रतिम है जिससे शत्रु पक्ष भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। जिस समय रावण को अनेक युक्तियों से समझाते हुए उसे राम से अपनी रक्षा के लिए प्रेरित करते हैं, उस समय क्रुद्ध रावण हनूमान् की पूँछ में आग लगवा देता है। उस समय हनूमान् जी सम्पूर्ण लंका को जलाकर रावण को अपने प्रबल पराक्रम का परिचय देते हैं और लौटकर अपने साथी जाम्बवान् प्रभृति को आनन्द प्रदान करते हुए श्रीराम के पास पहुँचकर सीता का सन्देश सुना रावण वध के लिए प्रेरित करते हैं।

राम के साथ न केवल सुग्रीव ही अपितु विभीषण की मैत्री में भी हनूमान् की ही भूमिका है।[1]

चाहे बड़े-बड़े राक्षस योद्धाओं के संहार की बात हो या लक्ष्मण आदि के जीवन रक्षा के लिए संजीवनी आनयन रूप दुष्कर कार्य हनूमान् जी सभी जगह उपस्थित रहते हैं और अपने अद्‌भुत कार्यो से श्रीराम को प्रसन्न कर उनके परम कृपापात्र बनते हैं। इसीलिए हनूमान् का चरित्र सर्वत्र प्रशंसनीय रूप में चित्रित हुआ है। इसीलिए वे सभी के लिए सर्वदा श्रद्धास्पद रहे हैं।

सुग्रीवः

सुग्रीव सूर्य के पुत्र के रूप में चम्पू-रामायण काव्य में चित्रित हुए हैं। सुग्रीव बालि के छोटे भाई हैं। दुन्दुभि वध के समय अकारण गलत अशंका होने से बालि इन्हें अपना परम शत्रु समझने लगता है तथा इनका सम्पूर्ण ऐश्वर्य तथा पत्नी को इनसे छीन लेता है। फलतः यह उसके डर से बालि के लिए अभिशप्य ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करने लगते हैं वहीं पवन पुत्र हनूमान् तथा अन्य श्रेष्ठ वानरगण

1- तदनु हृदयविदा हनूमता सरयमानीतो विनीतोऽयमाशरपतिरवन्दत दाशरथिम्"

चम्पू-रामायण युद्ध काण्ड पृष्ठ 400

इनके साथ रहते हैं वहीं सीता की खोज में निकले हुए राम और लक्ष्मण को देखते हैं और हनूमान् के माध्यम से उनकी मित्रता होती है। जिस मित्रता के परिणाम स्वरूप बालिवध होने पर सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य प्राप्त होता है और सुग्रीव के वानर समूह की सहायता से श्रीराम को रावण पर विजय प्राप्त करके पत्नी सीता की प्राप्ति होती है।

राम को सुग्रीव के विषय में प्रथम जानकारी कबन्ध देता है और सुग्रीव की बड़ी ही प्रसंशा करता है वह कहता है कि सुग्रीव की मित्रता से ही आप सीता को प्राप्त करेंगे।[1]

सुग्रीव वीर मित्रवत्सल्य लोकप्रिय तथा कुशल राजनीतिज्ञ साथ ही मानव स्वभाव रूप भीरुता एवं भोगऐश्वर्यासक्त हैं।

राम के प्रेरित करने पर ये बालि से युद्ध करते हैं किन्तु बालि के प्रहार से व्याकुल हो जाते हैं फिर भी पुनः राम के भेजने पर बालि से युद्ध में तत्पर हो जाते हैं तथैव रावण के राक्षस सेना के साथ युद्ध में भी सुग्रीव न केवल बड़े-बड़े राक्षसों का संहार करते हैं अपितु कुम्भकर्ण के साथ युद्ध करते समय अपने नखादि से कुम्भकरण के नासिका एवं कानों को काटकर शूर्पणखा के समान बना देते हैं और कूदकर श्रीराम के पास आ जाते हैं[2] इससे सुग्रीव की वीरता धैर्यता परिलक्षित होती है।

1- तदनु दनुकबन्धेनादरादर्थितो तौ

गिरितटभुवि देहं देहतुस्तस्य भीमम्।

अकथयदथ शापापायतुष्टः स रामं

तपनतनयमैत्र्या मैथिलीं प्राप्नुहीति।। 43 ।।

चम्पू-रामायण आरण्यकाण्ड श्लोक – 43)

2- पृष्ठ संख्या 442 युद्धकाण्ड।

सुग्रीव मानव सुलभ कुछ कमियाँ भी हैं जैसे बालि से अतीव भयभीत रहना तथा राम जैसे मित्र के कार्य को उन्हीं की सहायता से प्राप्त राज्यपद एवं कामादि भोगों में आसक्त होकर के भुला देना। सुग्रीव की कमजोरी को द्योतित करती है। इसे सुग्रीव स्वयं समझकर लज्जित एवं भयभीत होते हैं और लक्ष्मण के क्रोध को शान्त करने के लिए हनूमान् के निर्देशानुसार अंगद की माता तारा को भेजते हैं।[1]

इस प्रकार सुग्रीव का चरित्र मानवीय दुर्बलताओं के साथ-साथ शौर्य सम्पन्न धैर्यशाली परम सुहृत के रूप में भोजराज ने चित्रित किया है।

कौसल्याः

राम की माता कौसल्या चक्रवर्ती सम्राट दशरथ की प्रथम पत्नी हैं जिन्हें विष्णु रूप श्रीराम के माता होने का सुन्दर गौरव प्राप्त है। कौसल्या की गर्भावस्था के चित्रण में इनके शारीरिक सौन्दर्य का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। इसमें योवनावस्था से लेकर गर्भावस्था तक के स्वरूप में वटपत्र सादृश्यता का सुन्दर वर्णन किया है। तथैव भोजराज ने विष्णु पद के साथ कौसल्या के मध्य भाग की संज्ञा का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। इसमें कौसल्या के गर्भ पूर्व एवं गर्भधारण तक की अवस्था की सुन्दरता का आलंकारिक वर्णन है।[2]

1- किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 35 एवं गद्य खण्ड।

2- क- न्यग्रोधपत्रसमतां क्रमशः प्रयाता-

मंगीचकार पुनरप्युदरं कृशांगया।

जीवातवे दशमुखोरगपीडितानां

गर्भच्छलेन वसता प्रथमेन पुंसा ।। 27 ।। बालकाण्ड

ख- मध्ये तनुत्वादविभाव्यमानमाकाशमासीदसितायताक्ष्याः।

गर्भोदये विष्णुपदापदेशात्कार्श्यं विहायापि विहाय एव ।। 28 ।।

(चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक 27, 28)

कौसल्या वात्सल्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। वे राम की वनगमन की वार्ता सुनकर अत्यन्त दुःखित हो उठती हैं और पृथ्वी पर गिरकर विलाप करते हुए कहती हैं कि चक्रवर्ती सम्राट के शंक, चक्र, कमल आदि की रेखाओं से अलंकृत तुम्हारे त्रैलोक्यकारी हाथ में परमाचार्य वशिष्ठ ने क्या कन्दमूल के खनने के लिए मंगलसूत्र पहनाया था।[1] इनका यह कथन अपने पुत्र प्रेम के पराकाष्ठा को दिखलाता है।

इसी प्रकार सीता के प्रति भी उनकी वात्सल्यमयी भावना अद्वितीय है। जब वल्कल वस्त्र धारणकर सीता वन गमन के समय कौसल्या को प्रणाम करती हैं तो कौसल्या उनको गले लगाकर अश्रुधारा बहाकर कहती हैं कि ग्रीष्म ऋतु में तप्तवन के मध्य मार्ग में चलती हुई, तुम्हें देखकर वन देवताओं के हृदय में भी यह भावना अवश्य उठेगी कि हमारी आँखें यदि अनिमेष न होती तो इस सुकुमारी सीता के कष्ट को देखने के संताप से अपनी रक्षा कर लेते हैं।[2]

इस प्रकार कौसल्या का न केवल राम एवं सीता के प्रति अपितु लक्ष्मण भरत एवं शत्रुघ्न के प्रति भी उनका वात्सल्य प्रेम सराहनीय है।

1- वासस्त्वचां भवतु किंचन तारवीणां
छायाद्रुमाश्च भवनानि भवन्तु धन्याः।
कैकेयि तस्य शयनानि कथं भवेयु-
स्त्वश्चेतसोऽपि कठिनानि शिलातलानि ।। 22 ।।

चम्पू-रामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक 22

2- धर्मे निदाघरिकणस्य करैः कठोरैः
कान्तारमध्यपदवीषु नखंपचासु।
त्वां वीक्ष्य संस्थुलपदां वनदेवताभि-
र्निन्दिष्यते नियतमेव निमेषहानिः ।। 41 ।।

चम्पू-रामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक 41)

कौसल्या एक आदर्श पत्नी भी हैं जो पति दशरथ के जहाँ यज्ञादि कार्यों में राज सम्बन्धी कार्यों में सहायता प्रदान करती हैं वहीं शोकाकुलावस्था में सान्त्वना प्रदान करती हैं और पातिव्रत्य धर्म में स्थित हो पति दशरथ के साथ सती होने का भी दृढ़ निश्चय रखती हैं, किन्तु श्रीराम दर्शन की लालसा का लोभ दिखाकर अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करके भरत इन्हें सती होने से रोक लेते हैं।[1]

इस प्रकार कौसल्या का चरित्र पवित्र प्रेममय एवं आदर्शमय कवि ने चित्रित किया है।

कैकेयी:

केकय देश में उत्पन्न केकयराज की पुत्री कैकेयी जिसका यही नाम सर्वत्र प्रसिद्ध है। राजा दशरथ की द्वितीय पत्नी हैं जो अपने सौन्दर्य एवं अनेक शुभ गुणों से युक्त होने के कारण राजा को अतिशय प्रिय हैं। चम्पू-रामाचण में सर्वप्रथम पायस वितरण के समय कैकेयी का नाम प्रदादर्धं प्रणयमधुरं केकयेन्द्रस्य पुत्र्यै।[2] इस रूप में आया है। इसके अनन्तर भरत के उत्पत्ति के समय 'भरस्तेषु कैकेय्याः तनयो विनयोज्वलः।[3] इसके अनन्तर विश्व प्रसिद्ध कैकेयी का चरित्र अयोध्या काण्ड में प्राप्त होता है।

कैकेयी न केवल अनेक सद्गुणों से युक्त शारीरिक सौन्दर्य ही श्रेष्ठ नारी अपितु अतीव उदार हृदया समदर्शनी तथा स्नेह एवं प्रेम की साक्षात् मूर्ति थी जिसका विशद् सौन्दर्य गुणों का वर्णन वाल्मीकि में स्पष्टतः प्राप्त होता है।

1- तत्र सामात्यः समुपेत्य पत्युश्चिताधिरोहणमभिलषन्ती कौसल्यां भरतः शपथशतैर्निवार्य वसिष्ठादिष्टेन पथा दशरथाय सदा यागशीलाय यायजूकाभिप्रेतं प्रेतकृत्यमकरोत्।

(चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड पृष्ठ संख्या 182)

2- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या- 23

3- चम्पू-रामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या- 32

चम्पू-रामायण में भोजराज ने कैकेयी के हृदय को कमल वन से सुरभित शरद कालीन स्वच्छ जल से युक्त सरोवर से तुलना की है। किन्तु जैसे उस सुन्दर सरोवर को मदोन्मतः कोई महिषी (भैंस) उसमें घुसकर निर्मल जल को मथ कर गन्दला बना देती है वैसे ही निर्मल हृदया कैकेयी के अन्तःकरण को दुष्ट मन्थरा अतीव निर्दयतापूर्वक भयंकर कपटपूर्ण सलाह देकर कठोर और निर्लज्ज बना दिया था।[1]

कैकेयी ने दशरथ एवं रामादि के साथ जो भी व्यवहार किया वह सब मन्थरा के द्वारा ही प्रेरित था जिससे वह अन्य किसी भी श्रेष्ठ व्यक्ति की बातों पर ध्यान न देकर केवल मन्थरा के कहे हुए वाक्यों पर ही अपने को ढालकर उसी तरह का आचरण उसने किया। कवि कहता है कि जिस प्रकार प्रचण्ड वेग वाले झन्झावात् के द्वारा किये गये संगठन के दोष से अतीव शीतल मेघ समूह में भी वज्र उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार लोगों के सुखशान्ति को हरण करने वाले मन्थरा के भेदपूर्ण वाक्यों से भरत की माता कैकेयी का हृदय भी कुटिलता से परिपूर्ण हो गया था।[2]

वस्तुतः कैकेयी एक साधारण राजनैतिक सूझ-बूझ से रहित सामान्य स्त्री गुणों से युक्त नारी है। मन्थरा के पूर्व रामादि सभी सौत पुत्रों में भी उसका भरत से कम स्नेह नहीं रहता, किन्तु मन्थरा की कुटिल मन्त्रणा को न समझकर वह अपने स्वार्थ धारणा को भरत तक ही सीमित कर देती है और इसीलिए उसका स्नेह का दायरा भरत तक ही सीमित हो जाता है।

1- यामेवाहुर्निशिचरकुलोन्मूलने मूलहेतुं
यस्याश्चितं प्रकृतिकुटिलं गात्रमित्रं बभूव।
अम्भोजिन्याः शिशिरसरसः कासरीवाच्छमम्भः
कैकेय्याः सा हृदयमदं मन्थरा निर्ममन्थ ।। 9 ।।
(चम्पू-रामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 9)

2- अलघुचलितझञ्झावातनिष्पेषदोषा-
दशनिरिव कठोरः शीतलाम्भोदपंक्तौ।
अपहृतजनसौख्यान्मन्थराभेदवाक्यादपि
भरतजनन्यां हन्त दोर्जयमासीत् ।। 10 ।।
चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 10

फलतः वह कौसल्या सुमित्रा तथा स्वयं राजा दशरथ से बदला लेने का कुटिल एवं कठोर भावना से युक्त हो राम के लिए वनवास और भरत के लिए राजपद की याचना दशरथ से करती है। वचनबद्ध राजा दशरथ न चाहते हुए भी क्षुभित हृदय हो उसे मूक सहमति देते हैं। अन्त में राम वियोग के दुःख से दशरथ के प्राण जाते हैं तथा भरत भी माता के द्वारा सम्प्राप्त राजपद को ठुकरा देते हैं।

इस प्रकार रानी कैकेयी को वैधव्य तथा अपने ज्येष्ठ सन्तान राम के त्याग का कलंक प्राप्त होता है और औरस पुत्र भरत की स्नेह भावना एवं सम्मान से भी वंचित होना पड़ता है जिससे कैकेयी को सर्वदा मानसिक अशान्ति बनी ही रहती है।

चम्पू-रामायण में संक्षेप में चित्रित कैकेयी का चरित्र एक सामान्य अविवेकपूर्ण नारी के रूप में चित्रित हुआ है।

चम्पू-रामायण में ऐसे पात्रों का भी उल्लेख है जो कथावस्तु की दृष्टि से बहुत उपयोगी तो नही हैं किन्तु कुछ न कुछ उनकी भूमिका अवश्य रही है जिनसे कहीं न कहीं पाठक अवश्य प्रभावित होता है। इसमें कुछ तो ऐसे पात्र हैं जो अयोध्या, जनकपुर वनमार्ग या वन में राम से सम्बद्ध होते हैं तो कुछ ऐसे अन्य जीव भी हैं जो राम के अप्रतिम स्नेह पात्र हुए जिनमें अंगद,जाम्बवान् , सुषेण आदि प्रमुख हैं। पक्षियों में जटायु एवं सम्पाति उल्लेखनीय हैं। राक्षसों का भी एक वर्ग है जिसका सम्बन्ध प्रति पक्षी के रूप में राम से दिखायी देता है जिसमें मारीच, सुबाहु, विराध , खरदूषण आदि का उल्लेख विशिष्ट रूप में चम्पू-रामायण में हुआ है जिनका सामान्य परिचय इस प्रकार है।

सुमन्त्रः

सुमन्त्र राजा दशरथ के मुख्य अमात्य हैं तथा सारथि का कार्य भी करते हैं। दशरथ के प्रत्येक कार्यों के सम्पादन में इनकी प्रमुख भूमिका है। पुत्रेष्टि यज्ञ में भी जहाँ इनकी प्रधान भूमिका रहती है वहीं दशरथ की आज्ञा से राम लक्ष्मण को वन भ्रमण कराकर पुनः लौटा लाने का कार्य इन्हें सौंपा जाता है। किन्तु राम पिता की पूर्ण आज्ञा का परिपालन करते हुए गंगा नदी के समीप पहुँचकर उनको विदा

कर देते हैं। सुमन्त्र लौटकर राम का समाचार दशरथ को बताते हैं और इनकी भूमिका रामायण में यहीं पर समाप्त हो जाती है। यह चम्पू-रामायण में एक स्वामिभक्त सुन्दर सलाह देने वाले चित्रित हुए हैं। राम के प्रति इनकी विशेष श्रद्धा है।

गुह राज निषादः

निषाद राज निम्न जाति का होने पर भी राम का प्रिय मित्र है। वह जटा वल्कल धारी राम को एकाएक अपने क्षेत्र में देखकर जहाँ उसे दुख होता है वहीं उनके साक्षात्कार जन्य आनन्द की भी प्राप्ति होती है।[1] वह अयोध्या से वन के लिए भेजे गये राम को उस अवस्था में देखकर अत्यन्त व्यथित होकर कहने लगता है कि आप मेरे राज्य को सनाथ कर इसमें ही अपने समय को बितायें।[2] इस प्रकार निषाद का राम के प्रति यह निवेदन उसकी स्नेह पराकाष्ठा को द्योतित करता है। किन्तु राम पिता की आज्ञा से बंधे हुए उसके इस निवेदन को अस्वीकार कर देते हैं। फिर भी निषादराज उन सभी का न केवल सत्कार करता है अपितु जानकी एवं लक्ष्मण के सहित श्रीराम जब तक वहाँ रहते हैं तब तक उनकी सेवा में तत्पर रहता है और नौकाओं के द्वारा राम को गंगा के उस पार पहुँचाता है।

इसी प्रकार जनक का चरित्र सीता के पिता के रूप में कुशध्वज जो जनक के छोटे भाई हैं सिद्धार्थक जो दशरथ के महामात्य हैं युद्धजित जो भरत के मामा हैं। इन सभी का नामोल्लेख तो है किन्तु इनमें किसी का भी चरित्रगत वैशिष्ठ का चित्रण ग्रन्थ में नहीं प्राप्त होता है।

1- दृष्ट्वा राममनेकजन्मरचितैर्दर्दशयं शुभैः कर्मभिः
श्रुत्वा मातृवरद्वयादुपगतां वृत्तिं च वैखानसीम्।
अत्युज्जृम्भितहर्षशोक जनितैर्बाष्पैर्निषादाधिपः
शीताशीतगुणान्वितैरविरलैः संपृक्तवक्त्रोऽभवत् ।। 48 ।।

चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 48

2- देव, पितृनियोगप्रवणान्तः करणमपि भवन्तं विज्ञापयितुमज्ञजानयदरीतिर्भारती मां मुखरयति।
अस्त्येतदनिवार्यवीर्योद्भटभटदुर्गवर्गयुक्तमनुषक्तभोग्यजातमन्थर मन्थराहृदयतोदावहमस्मदीयं राज्यम्।

चम्पू-रामायण-अयोध्याकाण्ड पृष्ठ संख्या 159

विश्वामित्र:

ऋषियों में विश्वामित्र का चरित्र तथा वशिष्ठ का चरित्र सर्वथा उल्लेखनीय है। विश्वामित्र जहाँ यज्ञ रक्षार्थ राम लक्ष्मण की याचना करके उन्हें अनेक प्रकार की विधाओं से विभूषित करके न केवल जन साधारण के सामने उनके विशिष्ठ गुणों को प्रकाशित करते हैं अपितु ताटका, मारीच, सुबाहु जेसे प्रचण्ड योद्धाओं का इनसे संहार कराकर राम लक्ष्मण को विश्रुत बनाते हैं। यही कारण है कि जनकपुरी में धनुष यज्ञ को देखते समय सीता के वर मे रूप में सभी की द्रृष्टि राम पर केन्द्रित होती है और राम विश्वामित्र की आज्ञा से धनुष तोड़कर सीता के तथा सीता की अन्य बहनों के साथ भाइयों के सहित विवाह सम्बन्ध में बंधते हैं। यहाँ सर्वत्र विश्वामित्र की ही प्रमुख भूमिका देखी जाती है।

विश्वामित्र राष्ट्र के प्रति समर्पित व्यक्ति है तथा दीनों एवं अभिशापों के उद्वार के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। जहाँ इन्होंने समाज के उद्दण्ड विध्वंसक तत्वों का वध राम से कराकर तथा सुन्दर यज्ञों को करके भय मुक्त धार्मिक समृद्ध समाज की संरचना करते हैं वहीं दण्डकारण्य तथा पाषाण भूत अहल्या को राम के द्वारा शाप मुक्त कराकर उनका उद्वार करते हैं।

विश्वामित्र का चरित्र उदार, स्नेहित शिष्य प्रिय, विद्वान, दयालु, तपस्वी के रूप में चित्रित हुआ है।

वसिष्ठ:

वसिष्ठ ब्रह्मर्षि माने जाते हैं ये सूर्यवंश के कुलपुरोहित हैं जिन्होंने सूर्यवंश के अभिवृद्धि के लिए सदेव सफल प्रयास किया , चाहे वह पुत्र के अभाव में याज्ञ सम्बंधी कार्य रहा हो चाहे विश्वामित्र को राम लक्ष्मण समर्पण की समस्या रही हो सभी समस्याओं का निदान गुरू वसिष्ठ के द्वारा देखे गये हैं।

राम के राज्याभिषेक के समय में शुभ मुहूर्त का चिन्तन करके मंगलसूत्र

बन्धन का कार्य भी वसिष्ठ के द्वारा ही सम्पन्न होता है[1] दशरथ के अन्त्येष्टि सम्बन्धी कार्य का भी सम्पादन वसिष्ठ ही करते हैं और चौदह वर्ष के बाद राम के लौटने पर उनके राज्याभिषेक सम्बन्धी कार्य का सम्पादन भी वसिष्ठ के द्वारा ही होता है।[2]

इस प्रकार वसिष्ठ का चरित्र तपस्वी परम नीतिज्ञ, दयालु तथा सूर्यवंश के शुभेच्छु के रूप में चित्रित हुआ है।

शतानन्दः

शतानन्द महर्षि गौतम के पुत्र हैं । महाराज जनक के पुरोहित ये श्रीराम से मिलकर उन्हें महर्षि विश्वामित्र के विशिष्ट गुणों का उनकी अनुपम तपस्या का वर्णन करते हैं। विश्वामित्र के प्रति राम की जिज्ञासा का समर्थन करते हैं तथा जनक के द्वारा आयोजित सीता के स्वयंवर में राम के द्वारा धनुष भंग करने के पश्चात् विवाहादि की सम्पन्नता इन्हें के द्वारा होती है।

इनका चरित्र चम्पू-रामायण में तपस्वी सत्कुलोत्पन्न ज्ञानी श्रेष्ठ जनों का समादर करने वाले कुलाचार्य विशेषज्ञ विद्वान् के रूप में चित्रित हुआ है।

इसी प्रकार महर्षि भरद्वाज, महर्षि अत्रि तथा महर्षि अगस्त्य का भी उल्लेख एवं उनकी तपस्या सदयता, सहृदयता, विश्वकल्याणेच्छु तथा परम विज्ञानी के रूप में चित्रित हुआ है।

1- क- तदनन्तरे तत्वरे तत्परस्तत्त्वविदां वरिष्ठस्य वसिष्ठस्य शासनादभिषेकोपकरणाहरणाय सामात्यः पौरवर्गः" चम्पू रामायण पृ० 112-13

ख- अथ दशरथमनोरथं कौशल्यायै निवेद्य स्वभवनमुपागतस्य रामस्य भगवान् वसिष्ठः संजातकौतुकः कौतुकमंगलं निर्वर्तयामास' पृष्ठ संख्या 113

2- अथाखिल जनेक्षणेक्षितरघूद्वहस्यादरा
द्विधातुमभिषेचनं विचलता गुरोराज्ञया।
अनीयत समन्ततो हरिगणेन तीर्थं पुनः
समाकुलितमन्थरं विजहता गतिं मन्थराम् ।। 107 ।। युद्ध काण्ड

स्त्री पात्रों में सुमित्रा एवं मन्थरा का तथा अनसूया, शबरी के साथ-साथ सीता की अनुजाओं माण्डवी, उर्मिला, श्रुतकीर्ति आदि का भी नामोल्लेख प्राप्त होता है।

सुमित्राः

सुमित्रा का तो केवल नामोल्लेख ही प्राप्त होता है। उनका चरित्र चित्रण कथोपकथन या अन्य किसी के माध्यम से कथानक में नहीं हुआ है।

मन्थराः

मन्थरा की कुटिलता , चपलता , ईर्ष्या एवं द्वेषभाव का चित्रण अयोध्या काण्ड में पूर्णतया हुआ है। कवि ने इसे पिशाची के रूप में चित्रित किया है।[1]

मन्थरा कथावस्तु के विस्तार की प्रमुख कड़ी है जिससे इस रूप में कथानक में इसका प्रमुख स्थान है।

अनुसूयाः

अत्रिप्रिया अनुसूया का चरित्र-चित्रण नाममात्र का ही है, जहाँ वे सीता को अनेक प्रकार से उद्बोधित करती हैं, किन्तु ग्रन्थ में उनके उद्बोधन आदि का संकेतमात्र है कोई भी कथोपकथन नहीं है।

शबरीः

यही स्थिति शबरी की भी है। जहाँ राम ने मतंग आश्रम में निवास करने वाली शबरी के द्वारा किये गये सम्मान को स्वीकार करते हैं और उससे अनुमति ग्रहण कर पम्पासर सरोवर को जाते हैं। इतना ही कथन शबरी के विषय में प्राप्त होता है। शबरी का कोई भी महत्वपूर्ण राम विषयक भक्ति को छोड़कर चरित्र का चित्रण नहीं हुआ।

बालिः

वानर पात्रों में इन्द्रपुत्र बालि का सुग्रीव के साथ युद्धावस्था से लेकर राम के द्वारा उसका बध तथा राम को अंगद के समर्पण तक का चरित्र चित्रित हुआ है

1- सैषा मन्थराभिधानपिशाचिकावेशपरवशनिजाशयापूर्वं दण्डके वैजयन्तपुरवास्तव्य-शम्बरासुरसंगरसंगतवेदनापनोदनार्थमात्मने वितीर्णं वराय दशरथाय वरद्वयं न्यवेदयत्।

चम्पू-रामायण अयोध्या काण्ड पृष्ठ- 115

जिसमें बालि प्रकृष्ट वीर, शंकालु, दुराभिमानी, कामी तथा राम के प्रति समर्पित भाव रखने वाला चरित्र चित्रित हुआ है।

बालि प्रतिपक्षी के आह्वान को कभी भी नहीं सह पाता था, चाहे वक कोई भी हो उस अवस्था में किसी की भी सलाह न मानना भी उसके स्वभाव में था। वह दुन्दुभि नामक राक्षस की ललकार सुनकर उसके पीछे दौड़ता है और उसके गुफा में छिप जाने पर सुग्रीव आदि के समझाने के बावजूद गुफा में उसके बध के लिए जाता है। प्रतीक्षा में महीनों व्यतीत करने के बाद किष्किन्धा लोटने पर जब सुग्रीव को राजपद दे दिया जाता है , तो वह सुग्रीव के प्रति शंकालु हो उसका सर्वस्व हरण कर उसे मारकर भगा देता है और वही बन्धु की निरादरता उसके मृत्यु का कारण बनती है।

राम की मित्रता से आबद्ध सुग्रीव के ललकारने पर दुराभिमानी बालि तारा के समझाने पर भी सुग्रीव से लड़ता है तथा श्रीराम के द्वारा मारा जाता है। अन्त में अंगद को श्रीराम को समर्पित कर अपने प्राणों को त्यागता है। इस तरह बालि का चरित्र दुर्बलताओं के साथ एक वीर के रूप में इसका चरित्र चित्रित हुआ है।

अंगद:

अंगद का भी चरित्र एक शूरवीर योद्धा के रूप में चित्रित हुआ है। युवराज अंगद ने राम रावण युद्ध में वज्रदंष्ट्र, नरान्तक, अकम्पन, प्रजंघ आदि राक्षसों का वध करता है तथा श्रीराम की सेवा में सर्वदेव उपस्थित रहता है।

इस प्रकार अंगद का चरित्र शूरवीर योद्धा तथा श्रीराम के प्रति समर्पित रूप में समर्पित हुआ है।

इसके अलावा जाम्बवान् , विनत, सुषेण शतबली नल, नील, शरद्, दधिमुख, कुमुद, ऋषभ, गन्धमादन, गवाक्ष उत्पल, द्विविध, मयन्द, प्रलक्ष्य आदि का केवल नामोल्लेख ही प्राप्त होता है।

तारा:

वानर स्त्रियों में केवल बालि की पत्नी तारा का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें तारा परम चतुर पतिभक्त व्यवहार कुशल के रूप में चित्रित होती हैं। वह जहाँ बालि के सुग्रीव से लड़ने से पूर्व उसे समझाती है और राम के द्वारा बालि के मारे जाने पर शोक करती हुई अपने को भी मारने के लिए राम से कहती है और बालि के वियोग में विलाप करती हुई अनेक प्रकार से उनकी भर्त्सना भी करती है।

राज्यपद पाने के बाद जब सुग्रीव राम कार्य को भुला देता है । उस समय क्रुद्ध लक्ष्मण के किष्किन्धा पहुँचने पर तारा ही आकर लक्ष्मण को शान्त करती है।[1]

इस प्रकार तारा का चरित्र पति परायण नीतिज्ञ चतुर नारी के रूप में चित्रित हुआ है।

विभीषण:

राक्षस पात्रों में विभीषण का चरित्र सर्वश्रेष्ठ चित्रित हुआ है। चम्पू-रामायण में विभीषण का चरित्र परम नीतिज्ञ उदार भ्रातृ हितैषी दूरदर्शी के रूप में चित्रित हुआ था। जहाँ वह रावण के सभा में हनूमान् के बध की रावण द्वारा आज्ञा होने पर उसे रोकने के लिए अपने राजनीतिज्ञ तथा धार्मिक व्याख्यान देते हुए दूत अबध्य होता है।[2] इसे प्रमाणित करते हैं, वहीं वध के अतिरिक्त कोई भी दण्ड देने का सुझाव देते हैं।

1- प्राचीनं व्यसनं सुरेन्द्रतनयाज्जातं वने भ्राम्यतः

सुग्रीवस्य निराकृतं खररिपोर्बाणेन सालच्छिता।

अद्यास्य व्यसनं तु पञ्चविशिखादासीदुपेन्द्रात्मजात

सौमित्रे। तदापि प्रशान्तम भवज्ज्याघोषमात्रेण ते ।। 37 ।।

चम्पू-रामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक — 37

2- प्राबोधयत्तदनु पंक्तिमुखः शयालुं

कालं विनापि च कथंचन कुम्भकर्णम्।

आदेशतः स च विभोर्पुनः प्रबोध-

संविशधाम समरांगणमाजगाम ।। 53 ।।

चम्पू-रामायण , युद्धकाण्ड

विभीषण राक्षस जाति एवं ज्येष्ठ बन्धु रावण के सर्वदा हित चिन्तन में तत्पर रहते हैं। जब वह देखते हैं कि रावण अपने धार्मिक स्वरूप से हटकर राक्षसी प्रवृत्ति में स्थिति हो पर स्त्री कामुकता के प्रति संलग्न है, तो वह सीता को लौटा देने के लिए और राम से प्राप्त राक्षस जाति के भय को दूर करने के लिए कहता है किन्तु रावण के द्वारा तिरस्कृत होने पर अपने मन्त्रियों सहित राम के शरण में जाता है।[1] इसके अनन्तर रावण के दुराभिमान के संरक्षक और उसके क्रूर कर्मो में सहायक मेघनाद, कुम्भकरण आदि से सम्बन्धित गुप्त सूचनायें रावण को देकर उसके प्रति अपनी कर्तव्यनिष्ठा एवं विश्वस्त स्वभाव का सुन्दर परिचय देता है।

विभीषण का रावण के कुकृत्यों से विरोध था न कि रावण से। वह भाई के रूप में रावण को सदा अत्यधिक स्नेह करता था। इसीलिए रावण के वध हो जाने के बाद न केवल शोक से युक्त हो उसके गुणों का स्मरण करता है, अपितु उससे अलग होने के लिए अपने को धिक्कारता भी है।

विभीषण का चरित्र भ्रातृ स्नेही नीतिज्ञ राम के प्रति सर्मपित मित्र के रूप में चित्रित हुआ है।

मेघनादः

रावणपुत्र मेघनाद का चरित्र भी अत्यन्त मायावी, कपटपूर्ण युद्ध करने वाले वीर, कपटी, अहंकारी एवं पितृभक्ति के रूप में चित्रित हुआ है। इसी प्रकार रावण के अनुज एवं विभीषण के अग्रज कुम्भकर्ण का चरित्र पर पराक्रमशाली पर्वताकार स्वरूप

1- क- अहह विधिनियोगादद्य नक्तचरेन्द्र

त्वमसि परकलत्रे दुर्निवारानुरागः।

अरुणदवशिखायामामिषग्रासमोहा-

दविरलकृतजिह्वाचापलः केसरीव ।। ।3 ।। चम्पू-रामायण युद्ध काण्ड

ख- पौलस्त्यमग्रजनुषं परुषं वदन्तं संत्यज्य बान्धवजनं च विभीषणोऽहम्।

रामं विराममिह विद्विषतामवापमापन्नदैन्यहरणं शरणं ममेति ।। ।7 ।।

चम्पू-रामायण युद्ध काण्ड

वाले कुम्भकर्ण का चरित्र भी संक्षेप में ही केवल युद्ध के समय चित्रित हुआ है। इनके चरित्र में सर्वजन ग्राह्य किसी उदात्त चरित्र की उद्भावना नहीं हुई है।

अन्य राक्षसों के विषय में सुन्द, मारीच, सुबाहु, विराध, खर, दूषण, त्रिशिरा, कबन्ध, दुन्दुभि, मायावी, जम्बुमाली, प्रहस्त, अक्षय कुमार, नरान्तक, देवान्तक, अतिकाय, त्रिशिर, कुम्भ, निकुम्भ, सुक, सारण, प्रहसन, शार्दूल, विद्वुज्वह, माल्यवान, अनल, महोदर महापार्श्व, विरूपाक्ष, धूम्राक्ष, प्रकम्पन्न, वज्रदंष्ट्र, सहोदर, अकम्पन, प्रजंघ, शोणिताक्ष, विरुपाक्ष, मकराक्ष एवं सुधन्वा आदि के नामों का कथन प्रसंगवश विशेषतः युद्ध की अवस्था में हुआ है। . ये सभी राक्षस आकृत्या, क्रूर, कुरूप, क्रोधी, कामी, लोभी, मायावी, ऋषि मुनियों के भक्षक, यज्ञ विध्वंसक, अभक्ष्य भक्षक, रक्त एवं मांस की वर्षा करने वाले नरमुण्ड धारण करने वाले, वनों में निवास करने वाले थे।

राक्षसियों में ताटका, शूपर्णखा, सुरसा, सिहिंका लंकिनी, त्रिजटा, सरमा, मन्दोदरी आदि का केवल नामोल्लेख है। इनका कोई विशिष्ट स्वरूप ग्रन्थ में चित्रित नहीं हुआ।

जटायुः

पक्षियों में जटायु का उल्लेख बड़े श्रद्धा से किया गया है। जटायु श्रीराम को अपना परिचय दशरथ के मित्र के रूप में देता हे और जटायु श्रीराम के संरक्षा में अपने को सदा तत्पर रखता है। सीता हरण के अवसर पर अपने जान की बाजी लगाकर सीता की रक्षा करने के प्रयत्न में रावण द्वारा मारा जाता है।

श्रीराम जटायु को पिता के बराबर का सम्मान देते थे। जटायु के मरने के बाद जैसे अपने पिता का और्ध्वदैहिक कृत्य करते हैं उसी प्रकार श्रीराम ने जटायु का अन्त्येष्टि संस्कार किया।

चम्पू-रामायण में जटायु का चरित्र श्रीराम के सुभेक्षु एवं परोपकार परायण पराक्रमी वीर के रूप में चित्रित हुआ है।

जटायु के अग्रज सम्पाति का उल्लेख सुन्दरकाण्ड में समुद्र के किनारे स्थित जाम्बवान्, हनूमान् प्रभृत सीता के अन्वेषण में तत्पर वानरों के उपस्थिति के समय होता है। जहाँ पर वह लंका के मार्ग का निर्देशन करके सीता अन्वेषण में तत्पर वानरों की सहायता करता है। इसकी भी राम के प्रति असीम श्रद्धा है।

समीक्षाः

चम्पू-रामायण काव्य वाल्मीकि रामायण का अनुकरण करके एक विशिष्ट शैली में लिखा गया चम्पू काव्य है। भोज राज यद्यपि वाल्मीकि के अनुसार घटनाओं का विस्तार तो नहीं कर पाये किन्तु इस बात का प्रयत्न अवश्य किया है कि रामायणीय कथा का कोई अंश सर्वांशतः न छूटने पाये और न ही इस कथा से सम्बन्धित कोई भी पात्र परित्यक्त हो पाये भले ही उसका उल्लेख मात्र ही क्यों न हो। भोजराज रामायणीय कथा वस्तु को बहुत विशद् न करके यथासम्भव सीमित स्वरूप में प्रस्तुत किया है। इसलिए चम्पू-रामायण में सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण विकसित नहीं हो पाया है। कुछ ही ऐसे पात्र हैं जिनका चरित्र चित्रण पूर्णतया किये बिना कथानक का विस्तार सम्भव नहीं था और न ही घटनाओं में चारुता आती ऐसे ही चरित्रों का चित्रण भोज ने यथा सम्भव विशद् किया है जिनमें नायक राम प्रतिनायक रावण नायिका सीता सह नायक लक्ष्मण आदि का नाम उल्लेखनीय है। कुछ तो ऐसे पात्र है जिनका नामोल्लेख से काम चलाना पड़ा किन्तु घटनाओं का संक्षेपतः वर्णन होने पर भी चम्पू-रामायण के कथानक का आकर्षण न्यून नहीं हुआ। आलंकारिक माधुर्य युक्त शब्द योजना वर्णन चम्पू-रामायण की चारुता को चेतुर्गुणित करता है जिससे पात्रों के चरित्र-चित्रण की न्यूनता उतनी नहीं अखरती, फिर भी किन्हीं-किन्हीं पात्रों की मूक स्थिति पाठकों को संतुष्ट करने में सफल नहीं हो पाती। यदि किसी-किसी पात्र के कथोपकथन का आधिक्य है वहीं पर किसी-किसी पात्र की मूक स्थिति कुछ मन को खटकती सी है। यदि कथोपकथन का स्वरूप उन पात्रों के लिए भी संयोजित होता तो ग्रन्थ की चारुता और अधिक बढ़ जाती यथा आरण्यकाण्ड में सीताहरण की अवस्था में मारीच के हा सीते! हा लक्ष्मण! इन शब्दों को सुनकर लक्ष्मण से सीता कहती हैं कि यह शब्द तुम्हारे भाई का है उनका पता लगाओ इसके अलावा सीता का कोई भी कथोपकथन

नहीं है। जबकि लक्ष्मण के कई गद्य खण्ड एवं श्लोक हैं। यदि सीता का भी कथोपकथन होता तो इसकी चारुता तथा चरित्र-चित्रण में उसकी उपयोगिता अत्यधिक होती। ऐसे कई प्रसंग हैं जहाँ पर कवि की यह अल्पता पाठकों को असन्तुष्ट करती है।

पात्रों के चरित्र से उदात्त शिक्षायें:

साहित्य पाठकों के न केवल मनोरंजन का विषय है अपितु समग्र जीवन दर्शन को प्रस्तुत करके सहृदय पाठक के जीवन को उदात्त बनाने में उसकी प्रमुख भूमिका होती है। काव्य प्रयोजनों में व्यावहारिक ज्ञान के लिए अकल्याण के नाश के लिए तथा सरल रीति से कठिन एवं कटु विषय को भी सरस रूप में ज्ञान कराने के लिए काव्य की महती उपयोगिता है।

राम को उद्देश्य करके वाल्मीकि रामायण से लेकर आधुनिक समय तक जितने भी महाकाव्यादि की संरचना हुई है, सभी में अनेक उदात्त शिक्षायें उनके पात्रों से प्राप्त होती हैं। चम्पू-रामायण का कथानक चूंकि वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही है। अतः पात्र संयोजना भी तद्वत् ही है। राम के चरित्र से न केवल व्यक्ति अपितु सम्पूर्ण विश्व प्रभावित है क्योंकि राम के जीवन में ऐसी किसी भी घटना का चित्रण नहीं हुआ है जो प्रशंसनीय न कही जा सके। बाल्यावस्था से लेकर श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन आदर्श जीवन है। इसीलिए इन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम इस संज्ञा से विभूषित किया गया है। पुत्र के रूप में जहाँ वे माता-पिता के सेवा भाव में स्थित हो उनके आज्ञा पालन में एक आदर्श माने जाते हैं वहीं शिष्य के रूप में आचार्य वसिश्ठ एवं विश्वामित्र को अपने व्यवहार से पूर्णतया सन्तुष्ट करते हैं। भ्राता के रूप में राम सभी के लिए अनुकरणीय हैं तो मैत्री का भी निर्वाह उनका आदर्श रहा। दीन दुखियों ब्राह्मणों ऋषियों का संरक्षण एवं सम्मान का व्यवहार अद्वितीय रहा, पत्नी सीता के प्रति भी स्नेहादि आधिक्य उनके अनुरूप कहा जा सकता है। वीरता, गम्भीरता, अद्भुत पराक्रम, सर्वदा प्रसन्नचित्त रहना श्रीराम का स्वभाव है।

अनेक संघर्षो विपत्तियों के रहते हुए भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति धैर्य की स्थिति निश्चिन्तता, प्रसन्नता प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को अवश्य प्रभावित

करती है। इसीलिए यह कहावत प्रसिद्ध है- 'रामवत् प्रवर्तितव्यम्"।

प्रतिनायक रावण यद्यपि शूरवीर विद्वान् होने से अपने उदात्त स्वरूप को प्रकट करता है। तथापि काम, क्रोध, लोभ, अहंकार आदि दुर्गुणों से प्रभावित हो अनेक पापाचरण में लिप्त होने से रावण का चरित्र अनुकरणीय नहीं रह जाता है। सीता जैसी परम साध्वी स्त्री का अपहरण उसके प्रति गलत भावना और उसी के माध्यम से अपने सम्पूर्ण कुल के संहार की स्थिति बनाना रावण के चरित्र को अनुकरणीय नहीं बनाती इसीलिए "रावणात् न प्रवर्तितव्यम्" यह उक्ति चरितार्थ होती है।

सीता के चरित्र से पतिप्रेम की प्रगाढ़ता पातिव्रत्य की उत्तमा तथा लक्ष्मण हनूमान् आदि अपने से छोटे जनों के प्रति वात्सल्य भावना समाज के लिए एक आदर्श है। स्वधर्म में स्थित सभी के प्रति स्नेह भावना से युक्त हो अत्यधिक विकट समस्या को प्राप्त होने पर भी लक्ष्य को अवश्य प्राप्त करता है। ऐसी शिक्षा हमें सीता के चरित्र से प्राप्त होती है।

लक्ष्मण और भरत का चरित्र आदर्श भ्रातृ प्रेम की स्थापना करता है। समाज को एक स्वस्थ्य शिक्षा देता हैं। वहीं हनुमान् का चरित्र बुद्धि पराक्रम और सेवा भाव से जीने की कला सिखाता है।

सुग्रीव और विभीषण के चरित्र से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि अपने प्राणों के लिए संकट उपस्थित करने वाले तथा मानवोचित जीवन जीने के मार्ग में विपत्ति को उपस्थित करने वाले उन सम्बन्ध जनों का राष्ट्र हित में विनाश आवश्यक है तथा जो राष्ट्र एवं अपने हित का चिन्तक धार्मिक सुयोग्य व्यक्ति शत्रु ही क्यों न हो उससे सम्बन्ध बनाना उचित है।

दशरथ एवं जनक के चरित्र से जहाँ दृढ़प्रतिज्ञता की शिक्षा प्राप्त होती है वहीं समस्त अंगदादि वानर समूहों तथा राक्षस समूहों से अपने-अपने राजाओं के प्रति भक्ति एवं कर्तव्य भावना की शिक्षा प्राप्त होती है।

कौसल्या कैकेयी तथा सुमित्रा का चरित्र प्रबल वात्सल्य प्रेम का अनुपम उदाहरण हैं। यद्यपि कैकेयी के चरित्र से कुटिलता का चरित्र चित्रित हुआ है जो अनुकरणीय नहीं है। फिर भी परिस्थितिवश अज्ञानवश किये गये अपराध के लिए यदि पश्चाताप कर लिया जाये और उस भूल को स्वीकार कर लिया जाये तो व्यक्ति अपने को सुधार सकता है तो ऐसी शिक्षा कैकेयी के चरित्र से प्राप्त होती है।

आचार्य महर्षि वसिष्ठ एवं विश्वामित्र का उदार चरित्र विश्व बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत है। इनके जीवन के प्रत्येक चरित्र लोगों को उदात्त बनाने के लिए सर्वथा अनुकरणीय है।

यद्यपि स्त्री पात्रों में शूपर्णखा मन्थरा आदि का चरित्र व्यक्ति को उनके द्वारा किये गये कार्यों के प्रति वितृष्णा की भावना पैदा करता है जिससे उनका चरित्र कदापि अनुकरणीय नहीं है, फिर भी उनके कुकृत्यों से जो उन्हें फल प्राप्त हुआ उससे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि गलत आचरण करने पर उसका कुफल ही प्राप्त होता है। इसलिए सर्वदा सदाचरण ही करना चाहिए।

जटायु व सम्पाति तथा निषादराज के चरित्र से त्याग एवं सेवा भावना की शिक्षा प्राप्त होती है।

वानरों में बालि का चरित्र जहाँ काम, क्रोध, लोभ आदि से विरत होने की शिक्षा देता है वहीं अल्प समय में ईश्वरार्पण बुद्धि का त्याग नहीं करना चाहिए इसकी शिक्षा देते हैं।

राक्षसों में मेघनाद , कुम्भकर्ण का आचरण यद्यपि वीरता एवं पिता और भाई के प्रति कर्त्तव्यपालन का उचित शिक्षा देता है तथापि राष्ट्र एवं अपना नाश करने वाले व्यक्ति के द्वारा आदिष्ट कार्यों का पालन करने से स्वयं एवं राष्ट्र का अहित ही होता है इसकी भी शिक्षा प्राप्त होती है।

इस प्रकार चम्पू-रामायण काव्य के इन कथा पात्रों के चरित्र से जो सन्देश प्राप्त होता है वह अनुकरण कर्ता के जीवन को आदर्श सुखमय सुन्दर पवित्र बनाने में पूर्णतया सक्षम है।

*****

रस (श्रृंगार)

'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' अर्थात् जो सहृदय रसिकों के द्वारा काव्यों के माध्यम से आस्वादन किया जाये उसे रस कहते हैं। रस को काव्य का प्रधान तत्व माना जाता है। बहुत से आचार्य इसे काव्य की आत्मा भी स्वीकार करते हैं।[1]

आचार्य विश्वनाथ तो रस का ही प्रामुख्य मानकर काव्य लक्षण को ही रस से मुम्फिल कर 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' इस काव्य लक्षण को स्वीकार किया है। वे कहते हैं - 'रस एवात्मा' साररूपतया जीवानाधा यकोयस्य। तेन विना तस्य काव्यत्वानंगीकारात् रिस्यते इति रसः' इति व्युत्पत्तियोगाद्भावतदाभासादयोऽपि गृह्यन्ते'।[2]

अग्नि पुराण में रस को ही काव्य का प्राण प्रतिपादित किया गया है। 'वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपिरसएवात्रजीवितम्'।[3] रस को तैत्तरीय उपनिषद साक्षात् ब्रह्म के रूप में रस को माना गया है।[4]

आचार्य विश्वनाथ ने भी रस को ब्रह्मास्वाद सहोदर कहा है।[5] रस किसी न किसी स्वरूप में सभी साहित्य शास्त्रकारों के द्वारा प्रमुख रूप में स्वीकार किया गया है।

रस ही सहृदय काव्य पाठकों एवं श्रोताओं को काव्य पठन एवं श्रवण के प्रति आकर्षित करता है या यों कहा जाये कि उन दोनों के सम्बन्ध का आधायक रस ही है। अनेक गुण अलंकार चमत्कार वैचित्र्य आदि के रहने पर भी रसशून्य काव्य मे सहृदय मनीषियों की प्रवृत्ति कथमऽपि सम्भव नहीं है। जैसे- विविध आभूषणों वस्त्रों आदि से चेतना शून्य किसी नायिका आदि का शरीर अस्पृश्य हो जाता है तथा

1- शब्दार्थौ ते शरीरं संस्कृतं मुखम् प्राकृतम् बाहु ......
रस आत्मा रोमाणि छन्दांसि अनुप्रासोपमादयस्य त्वामालंकुर्वन्ति।
काव्यमीमांसा पृष्ठ 13 - 14.

2- साहित्य दपर्ण प्रथम परिच्छेद पृष्ठ 24.

3- अग्नि पुराण।

4- तैत्तरीय उपनिषद 2-7.

5- वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः । स्वाकारवदभिन्नत्वे नायमास्वाद्यते रसः ।
साहित्यदर्पण 3/2-3.

उपेक्षणीय होता है तथैव रसशून्य काव्य भी उपेक्षा का विषय बनता है। इसलिए रस की प्रधानता सभी काव्यों में अवश्य रहती है।

आचार्य भरत ने रस के विषय में 'विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' इस सूत्र वाक्य को कहा जिसकी व्याख्या विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने अनुसार किया। भट्टोलल्लट रस की उत्पत्ति होती है मानते हैं - अर्थात रसनिष्पत्ति का अर्थ रस उत्पत्ति करते हैं। आचार्य शंकुक रस निष्पत्ति का अर्थ रस की अनुनित मानते हैं- अर्थात् रसनिष्पत्ति का अर्थ रस उत्पत्ति करते हैं। आचार्य शंकुक रस निष्पात्ति का अर्थ रस की अनुनित मानते हैं और आचार्य भट्टनायक रसनिष्पत्ति का अर्थ रस का भोग मानते हैं। आचार्य अभिनवगुप्त रस की अभिव्यक्ति मानते हैं। आचार्य मम्मट अभिनव गुप्त के ही मत का पोषण करके रस की अभिव्यक्तता को ही स्वीकार किया है।[1] ये रस के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहते हैं कि लोक में रति आदि स्थायी भावों के जो कारण कार्य और सहकारी हैं वही यदि नाटक या काव्य में होते हैं तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी कहलाते हैं और उन विभावादि के द्वारा अभिव्यक्त जो स्थायी भाव है, वहीं रस कहलाता है। रस का आस्वादन काव्य नाटकों में पाठक श्रोता एवं दर्शक को रस की अनुभूति साधारणीकरण के द्वारा होती है। जिस समय सहृदय व्यक्ति काव्य एवं नाटक आदि उसके पठन-श्रवण या दर्शन में प्रवृत्त होता है तो वह काव्य नाटक आदि के पात्रों के द्वारा या चित्रित या अभिनीत वर्णन या दर्शन से अपने को उन पात्रों के स्वरूप में समझने लगता है। फलतः वीर रस की अवस्था में वह वीर रस का आस्वादन करता है जिससे उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो वह स्वयं युद्ध के समय अपने शत्रुओं को ललकार रहा हो। करुण में तो निरन्तर अश्रुपात होने लगता है। हास्य रस की उद्भावना में गम्भीर व्यक्ति भी अपनी हंसी नहीं रोक पाता, यही रस का आस्वादन है जो सहृदयों को अलौकिक आनन्द प्रदान करता है। रस को भी अलौकिक माना जाता है क्योंकि यह न तो कार्य है क्योंकि कार्य कारण के नष्ट होने पर नष्ट हो जाते हैं, किन्तु रस अपने

---

1 - काव्य प्रकाश के चतुर्थ उल्लास से उद्धृत सभी आचार्यों का मत।

विभावादि कारणों के नष्ट होने पर भी रहता है और न ही यह ज्ञाप्य है क्योंकि ज्ञाप्य पदार्थ ज्ञान होने के पहले और बाद दोनों अवस्थाओं में रहता है। रस तो अपने अनुभव के पूर्व काल और न ही उत्तर काल में रहता है वह तो जब तक रस की अनुभूति है उसकी अनुभूति रहती है तभी तक रहता है। इसलिए कार्य एवं ज्ञाप्य दोनों प्रकार के लौकिक पदार्थों से भिन्न होने के कारण इसे अलौकिक कहा जाता है।

साहित्य शास्त्रकारों[1] ने प्रधानतया चार रसों को ही माना है। इस विषय में दश रूपककार[2] का कथन है कि काव्यादि के परिशीलन से आत्मानन्द अनुभूत आत्मानन्द चित्त के विकास विस्तार विक्षोभ तथा विक्षेप रूप से चार प्रकार का होता है और चित्त की यही चार अवस्थायें श्रृंगार, वीर, वीभत्स तथा रौद्र रस में परिणत होती है। अन्य हास्य, अद्‌भुत, भयानक तया करुण रस में भी वे ही चित्त की अवस्थायें मानी जाती हैं। इसीलिए श्रृंगार से हास्य रस की, रौद्र से करुण रस की, वीर से अद्‌भुत रस की तथा बीभत्स से भयानक रस की निष्पत्ति मानी जाती है। इसी आधार पर आचार्य मम्मट ने प्रथमतः आठ रसों की ही चर्चा की है।[3] पश्चात् इन्होंने नौवें रस शान्त को स्वीकार किया है।[4] प्राचीन लगभग सभी आचार्यों ने इन नौ रसों की ही चर्चा की है, किन्तु परवर्ती आचार्यगण रति के भेद करके अन्य दो रसों की परिकल्पना की फलतः सन्तान विषयक रति वात्सल्य रस में एवं इष्ट विषयक रस भक्ति रस में निष्पन्न हुई फलतः श्रृंगार, करुण, वीर, शान्त, भयानक, बीभत्स, रौद्र, अद्‌भुत, हास्य, वात्सल्य और भक्ति ने ग्यारह रसों का स्वरूप साहित्यशास्त्रविदों

1- 'श्रृंगाराद्धिभवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः ।
वीराच्चैवाद्‌भुतोत्पतिः बीभत्साच्च भयानकः' ।।
श्रृंगाररानु कृतिर्या तु सा हास्यस्तु प्रकीर्तितः ।
वीरस्यापि च यत् कर्म सोऽद्भुतः परिकीर्तितः ।। (भरत नाट्य शास्त्र 6/39-41)

2- वीकासविस्तरक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः ।।
श्रृंगारवीर बीभत्सरौद्रेषु मनसः क्रमात्।
हास्याद्‌भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि ।। दश रूपक चतुर्थ उल्लास सूत्र संख्या 52 श्लोक संख्या 43-44.

3- श्रृंगारहास्यकरुणरौद्रवरभयनकाः ।
बीभत्साद्‌भूतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ।। 29 ।।
(काव्य प्रकाश चतुर्थ उल्लास)

4- 'शान्तोऽपि नवमो रसः स्मृतः'। (काव्य प्रकाश पृष्ठ 142).

में स्वीकृत हुए परन्तु परम्परावादी साहित्यशास्त्राचार्य आज की पूर्वोक्त नौ रसों को ही मान्यता देते हैं और अतिरिक्त वात्सल्य एवं भक्ति रस को उन्हीं में समाहित करते हैं।

चम्पूरामायण भोजराज की ऐसी कमनीय काव्य कला एवं वक्रोक्ति सम्वलित अलंकृत शैली की ऐसी अनूठी कृति है जिसमें विविध परिस्थितजन्य मानवीय भावों का सुन्दर समावेश है। इसमें विदग्धता के साथ ही सहृदयता का भी मञ्जुल समाञ्जस्य सहृदयों को सदैव आनन्दानुभूति कराता है। इसमें प्रसंगानुसार रसों का सुन्दर समन्वय हुआ है। सभी काव्यगत रस सहृदयों के लिये हृदयावर्जक हैं।

चम्पूरामायण काव्य वाल्मीकि रामायण का उपजीवक काव्य है। फलतः चम्पू-रामायण में स्वीकृत मान्यताएं ही वाल्मीकि रामायण से प्रभावित होती है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि वाल्मीकि रामायण का प्रधान रस करुण को सभी साहित्यविदों ने स्वीकार किया है। ध्वन्यालोक कार[1] ने तो इसका उद्घोष ही कर दिया है कि रामायण में करुण रस स्वयं आदि कवि के द्वारा ही सूचित है। 'शोकः श्लोकत्वमागतः' इस कथन से करुण रस की रामायण में पुष्टि हाती है। वैसे वाल्मीकि रामायण का प्रारम्भ एवं अवसान दोनों करुण रस में होता है। मध्य में भी दशरथ के प्राण त्याग से कौसल्या आदि का शोक, बालि के वध से तारा का शोक, रावण मेघनाद के वध से उनके पत्नियों का शोक तथैव भ्राताओं के वध से पूर्व में सुग्रीव एवं पश्चात् विभीषण का शोक सभी करुण रस में सहृदयों के आस्वाद्य होते हैं। फलतः आदि मध्य अन्त तीनों अवस्थाओं में करुण रस की रसमयता से ओतप्रोत रामायण काव्य का प्रधान रस है।

चम्पूरामायण में स्थिति इससे भिन्न है। इसमें प्रारम्भ तो करुण रस के ही प्रस्फुटन से होता है किन्तु वह करुण रस का प्रस्फुटन भी श्रृंगार से अवगुम्फित है। जिस कौञ्च को व्याध ने मारा वह पहले से ही 'स्मरपञ्चसर[2] से विद्ध है।

1- रामायणेहि करुण रसः ।

2- 'तत्र कंचन कोञ्चमिथुनादेकं पञ्चशरवद्धपिव्याधेनानुविद्धं'। चम्पूरामायण पृष्ठ संख्या -5 बालकाण्ड

अतः यहाँ करुण श्रृंगार से बाधित सा प्रतीत होता है अन्यत्र भी करुण रस के प्रसग का वर्णन उतनी तन्मयता से नहीं हुआ जितना कि श्रृंगार रस की परिपुष्टता कवि के द्वारा की गई। श्रृंगार का प्रस्तुत उदाहरण अपने सौन्दर्य से सहृदयों को चमत्कृत करने वाला है।

'प्रिये जनकनन्दिनि प्रकृतिपेशलामीदृर्शी [1]

कथं ग्लपयितुं सहे तव शिरीषमृद्वीं तनूम् ।

गृहीतहरिणीगणत्रिकविसारिनानाशिरा -

क्षतक्षरितशोणितारुणवृकानने कानने' ।।

दशरथ के मरण के बाद भी कौसल्यादि के विलाप का एक भी पद्य भोजराज ने नहीं रचा, बालि के मारे जाने पर तारा के विलाप का एक भी ऐसा श्लोक नहीं है जिसमें अपने प्रियतम बालि के वियोग से व्याकुल तारा अपने पति के गुणों का स्मरण कर रुदन की हो यद्यपि छः श्लोकों में कारुण्य का स्वरूप वर्णित है तथापि सभी पद्य श्रीराम के भर्त्सना से ही परिपूर्ण है।

'नाहं सुकेतुतनया न च सप्तसाली [2]

वाली न च त्रिभुवनप्रथितप्रभावः ।

तारास्मि वज्रहृदया विशिखैरभेद्या

धन्वी कथं भवसि राघव ! मामविद्ध्वा' ।।

इसीलिए करुण रस की प्रगाढ़ता चम्पूरामायण में नहीं आ पायी तदपेक्षा श्रृंगार रस की परिपुष्टता अधिक है। चम्पू - रामायण काव्य का अवसान भी राम और सीता के मिलन तथा राम राज्याभिषेक की आनन्दर्या घटना से होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो भोजराज को करुण रस से उतना लगाव नहीं था, जितना कि श्रृंगार से इसीलिए सभी रसों की अपेक्षा चम्पूरामायण में श्रृंगार की ही प्रमुखता दिखलाई पड़ती है।

1- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक 32.

2- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक 16.

भोजराज ने श्रृंगार को ही सभी रसों में मुख्य माना है। इनके द्वारा लिखित दो काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ हैं - श्रृंगारप्रकाश, सरस्वतीकण्ठाभरण। श्रृंगार प्रकाश में जहाँ इन्होंने दस रसों को स्वीकार किया है वहीं श्रृंगार को सर्वश्रेष्ठ एवं उसी की प्रधानता स्वीकार की है।[1]

सरस्वतीकण्ठाभरण[2] में तो श्रृंगार को ही सभी रसों का मूल माना है और कहा है कि जिस काव्य में श्रृंगार नहीं होगा वह काव्य कमनीय नहीं हो सकता। सरस काव्य की रचना श्रृंगारिक कवि ही कर सकता है। यदि वह अश्रृंगारी है तो उसका काव्य भी नीरस रहेगा।

इस तरह भोज अपने सिद्धान्तानुसार चम्पू-रामायण में श्रृंगार रस की ही प्रधानता स्वीकार की और श्रृंगार के दोनों पक्षों के स्वरूपों को अपने काव्य में समाहित किया। वस्तुतः चम्पूरामायण में विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रमुखता अधिक दिखाई पड़ती है, क्योंकि वहीं अधिकतर प्रस्फुटित हुआ है। चाहे वात्सल्य रूप में अगर उसे स्वीकार किया जाये, तो विश्वामित्र के द्वारा राम लक्ष्मण को ले जाने के समय तथा कैकेयी के द्वारा राम वनगमन रूप वरदान के अनुसार राम के वन जाते समय या वन जाने के बाद का दशरथ का करुण क्रन्दन या करुणापूर्ण आक्रोश भी इसी के अन्तर्गत लाया जा सकता है। यद्यपि अयोध्याकाण्ड उक्त वर्णन कथमपि करुण रस के अन्तर्गत स्वीकार किया जा सकता है तथापि सुमन्त्र के परिवर्तन तक का वर्ण्य विषय मिलने की आशा से सापेक्ष है।

1- 'श्रृंगार-वीर-करुणाद्भुत-रौद्र-हास्य-बीभत्स-वत्सल-भयानक-शान्तनाम्नः
आम्नासिषुर्दशरसान् सुधियो वयं तु श्रृंगारमेव रसनाद् रसमामनामः' ।।
(राघवन कृत श्रृंगार प्रकाश पृष्ठ 50।)

2- 'रसोऽभिमानोऽहंकारः श्रृंगार इति गीयते ।
योऽर्थस्तस्यान्वयात् काव्यं कमनीयत्वमश्नुते ।।
श्रृंगारी चेत कविः काव्ये जातं रसमयं जगत् ।
स एव चेद श्रृंगारी नीरसं सर्वमेव तत्' ।। 1,3 ।।
(राघवन कृत श्रृंगार प्रकाश पृष्ठ 408).

फलतः विप्रलम्भ के अर्न्तगत ही वह आता है। राम वन गमन को सुनकर तथा पितृमरण को सुनकर दो प्रकार के शोक की स्थिति बनती है। प्रथम जिसमें पितृमरण ज्ञान से उत्थित शोक से करुण रस की निष्पत्ति होती है। किन्तु भ्राता राम के वनगमन जन्य शोक भ्रातृ रति प्रधान होने से विप्रलम्भ के अर्न्तगत ही मिलन आशा सापेक्ष होने से माना जायेगा।

इस प्रकार सीता का विरह भी इसी कोटि में आता है। उक्त वर्णनों से यह ज्ञात होता है कि चम्पू-रामायण का प्रधान रस विप्रलम्भ ही है।

भोजराज मूलतः यद्यपि श्रृंगारी कवि हैं फिर भी प्रसंगानुसार श्रृंगार के साथ-साथ करुण, वीर, भयानक एवं बीभत्स आदि रसों की भी समायोजना सफलता पूर्वक किये हैं। कोमल भावों के मार्मिक छवि को विकसित करने वाले कवि भोजराज ने श्रृंगार एवं करुण की रसमयी धारा जैसे प्रवाहित की है वैसे ही बीभत्स वीर एवं भयानक आदि रसों की कलात्मक चित्रण में अपनी कुशलता में कार्यपर्ण्य नहीं दिखलाया इनकी सूक्ष्म दृष्टि सभी रसों के परिपाक में सर्वथा समर्थ दिखलायी देती है। फिर भी श्रृंगार एवं करुण रस की उद्भावना में कवि का पक्षपात अवश्य ही दृष्टि गोचर होता है।

श्रृंगार रस की स्थिति काव्यों में तीन प्रकार से होती है। पूर्वानुराग की स्थिति, संयोग की स्थिति एवं वियोग की स्थिति। पूर्वानुराग में नायक एवं नायिका परस्पर गुणों एवं स्वरूप के प्रति आकृष्ट होकर स्नेह पाश से आबद्ध हो एक-एक की अभिलाषा रखते हैं जिसका उदाहरण अभिज्ञान शाकुन्तलम् में दुष्यन्त का शकुन्तला के प्रति[1] और शकुन्तला का दुष्यन्त के प्रति[2] यह अनुराग दृष्टिगोचर होता है। ऐसी स्थिति न तो वाल्मीकि रामायण में और न ही चम्पूरामायण में पूर्वानुराग की दिखाई पड़ती है। यहाँ ऐसा अवसर ही नहीं प्राप्त होता है कि श्रीराम और सीता का परस्पर आकर्षण

1- इदं किलाव्याजमनोहरंस्तपः क्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ।। 18 ।।
प्रथमोअंकः ।

2क- शकुन्तला - (आत्मगतम्) किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयाऽस्मि संवृत्ता। पृष्ठ 65.

ख- शकुन्तला - (आत्मगतम्) हृदय मोत्ताम्य। एषा त्वया चिन्तितान्यनसूयामन्त्रते। अभिज्ञान शाकुन्तलम् पृष्ठ 67-68.

का प्राकट्य कहीं बन सके। यहाँ तो धनुष को दिखलाते समय ही जनक की अपने प्रतिज्ञा की स्थिति बतालाने पर विश्वामित्र की आज्ञा से धनुषभंग के पश्चात् विवाह होता है जिससे सर्वप्रथम संयोग श्रृंगार की ही स्थिति प्राप्त होती है संयोग श्रृंगार का ही प्रस्फुटन न्यून मात्रा में दिखलायी देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भोजराज किसी वर्णन विशेष पर ध्यान केन्द्रित न कर कथा को शीघ्र आगे बढ़ाने में अधिक तत्परता दिखलाते हैं। इसीलिए नववधू एवं वरों के सम्प्राप्त होने पर उनके केलि एवं अनुराग का मनोरम वर्णन न कर केवल संकेत मात्र देते हैं जिसमें केवल राम और सीता के संयोग श्रृंगार की एक क्षीण छटा प्रकट होती है।

'विद्ययेव त्रयीदृष्टया दर्भपत्राग्रधी सुधीः ।[1]
राजपुत्र्या तया रामः प्रपेदे प्रीतिमुत्तमाम्' ।।

संयोग श्रृंगार का एक ऐसी अवस्था में कुछ वर्णन भोजराज के प्राप्त होते हैं। जिस समय श्रीराम और सीता की स्थिति तपस्वी वेष की होती है वहाँ भूमि में कुश आदि के आसन में सोकर तथा प्राकृतिक वातावरण में कोयल के स्वर से गुञ्जित चित्रकूट के वन में सीता के सहित श्रीराम ने अयोध्या के समान सुख को प्राप्त करते हुए चिरकाल तक विहार किया।

'अनुजरचितपर्णागारहृद्यासु माद्य[2]
त्परभृत गलचञ्चत्पञ्चमैरञ्चितासु ।
जनकदुहितृयोगाज्जातसाकेतसौख्य -
श्चिरमरमत रामश्चित्रकूटस्थलीषु' ।।

इस पद्य में संयोग श्रृंगार का समुचित चित्रण कवि ने किया है।

संयोग श्रृंगार की अपेक्षा वियोग श्रृंगार का परिपाक ग्रन्थकार ने अधिक पुष्ट किया है। सीता के बिना राम की विरह वेदना का जो चित्रण भोजराज ने किया

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 117.

2- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 52 .

है वह पाषाण हृदय को भी द्रवित करने में समर्थ प्राप्त होता है।

'हा कष्टमत्र न हि सा किमिदं प्रवृत्त -[1]

मालोकयामि चटुलामिह पादमुद्राम् ।

मां वीक्ष्य नूनमगृहीतमृगं मुहुर्त -

मन्तर्हिता तरुषु रोषवतीव सीता' ।।

राम इतने अधीर हो जाते हैं कि सीता के बिना सब कुछ उन्हें भूल जाता है। वे यह जान करके भी कि सीता नहीं है अनजाने से हो जात हैं और वे सीता को प्रसन्न करने की मुद्रा में व्याकुल हो अनेक प्रकार के प्रलोभन सीता के समक्ष प्रस्तुत करने लगते हैं।

'यद्यस्ति कौतुकमपूर्वमृगे मृगाक्षि ।[2]

चान्द्रं हरामि हरिणं मम सन्निधेहि ।

यावन्न मुञ्चसि मया हृतमेणमेनं

तावद्दधातु तव वक्त्रतुलां मृगांकः' ।।

राम को यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अब सीता संसार में नहीं है। उन्हें यह बात स्पष्ट होती है कि राक्षसों ने ही सीता का भक्षण किया होगा अनेक तर्कों से युक्त करुणापूर्ण उद्‌गार अतीव मार्मिक हैं।

'सप्राणा चेज्जनकतनया किं न तिष्ठेत मह्यं[3]

हिस्रैः सत्वैर्न खलु निहता रक्तसिक्ता न पृथ्वी ।

गोदावर्या पुलिनविहृतिं रामशून्या न कुर्या -

द्युक्तं नक्तञ्चरकवलनात् संस्थिता सर्वथा सा' ।।

1- चम्पूरामायण आरण्यकाण्ड श्लोक संख्या 36.

2- चम्पूरामायण आरण्यकाण्ड श्लोक संख्या 38.

3- चम्पूरामायण आरण्यकाण्ड श्लोक संख्या 39.

सीता वियोग जन्य करुणोद्गार श्रीराम के वियोग श्रृंगार की मीत जैसे प्रतीत होते हैं।

सीता के द्वारा किये गये सद्व्यवहार सेवा एवं स्नेह समर्पण श्रीराम को विरहावस्था में अत्यधिक उद्वेलित कर देते हैं। वे सीता को सर्वस्व समझते हैं। कहते हैं कि -

'आधौ सिद्धौषधिरिव हिता केलिकाले वयस्या[1]

पत्नी त्रेतायजनसमये क्षत्रियाण्येव युद्धे ।

शिष्या देवद्विजपितृसमाराधने बन्धुरार्तौ

सीता सा में शिशिरितमहाकानने का न जाता।

विरह अवस्था में अनुकूल वेदनीय भी प्रतिकूल वेदनीय हो जाता है। उसे मनोरम वन्य प्रदेश सुगन्धित वायु अन्य सुन्दर वस्तुएं वियोग जन्य व्यथा वर्धक होते हैं।

किष्किन्धा काण्ड में राम के वियोग श्रृंगार का वर्णन सहृदयों के हृदयों को उद्वेलित कर देता है।

वर्षा ऋतु का आगमन जहाँ संयोगी जनों को अतीव आनन्द प्रदान करता है वहीं वियोगी जनों के लिए निष्करुण निदाघ से भी अधिक तीव्रतर तापदायी होता है। प्रिया वियोग को सम्प्राप्त श्रीराम को यह सुन्दर समय भी अप्रिय प्रतीत होता है।

'अयं कालः कालप्रमथनगलाभैरभिनवै -[2]

रहंयूनां यूनामपहरित धैर्य जलधरैः ।

स्मराधारा धारा परिचितजडा वान्ति सहसा

नभस्वन्तः स्वन्तः कथमिव वियोगः परिणमेत्' ।।

1- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 4.

2- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 26.

मयूर की केकाध्वनि जो अपने कोमलता से माधुर्य से परिपूरित रहती है, वही ऐसी प्रतीत होती है मानो वह बरसात से पूछ रही हो कि मनुष्यों में और स्त्रियों में कौन ऐसे हैं जो विरह वेदना से व्यथित हैं। केका शब्द में 'के' शब्द पुरुषों के लिए और 'का' शब्द नारियों के लिए प्रयुक्त है।

'महासमरसूचकः प्रतिदिशं मनोजन्मनो [1]

मयूरगलकाहलीकलकलः समुज्जृम्भते।

पयोदमलिने दिने परुषविप्रयोगव्यथां

नरेषु वनितासुवा दधति हन्त के का इति' ।

सीता के विरह वेदना से संतप्त स्वरूप इतना स्पष्ट हो गया है कि बिना परिचय दिये ही आकृत्या वह सबको सीता के विरह व्यथा का परिचय दे देता है।

'ज्योत्सनां विनापि निवसेन्निशि शीतभानु -[2]

श्छायां विनापि विलसेद्दिवसेश्वरोऽपि।

एनां विना रघुपतिः परिगृह्य धैर्यं

सप्राण एव वसतीति विचित्रमेतत्' ।।

सीता की विरह अवस्था अत्यधिक कारुणिक है। निरन्तर राम का स्मरण करती हुई, राक्षसियों के कटु वचनों को सहन करती हुई, सीता सोंचने लगती हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे प्राणेश श्रीराम को जटायु के मर जाने के कारण मेरे अपहरण की सूचना न मिली हो इसलिए उन्हें विलम्ब हो रहा हो -

'नूनं विदितवृत्तान्ते जटायुषि गतायुषि ।[3]

मामिहस्थामार्यपुत्र. किं नाधिगतवान्प्रभुः' ।।

1- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 27.

2- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 18.

3- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 22.

वे अत्यधिक दुखी अवस्था में ऐसे भी सोचने के लिए बाध्य हो जाती है कि लगता है कि इस रावण ने मेरे साथ-साथ राम की कृपालुता का भी हरण कर लिया है। अन्यथा राम कैसे इतने दिनों तक शान्त बैठ सकते हैं।

'न केवलं मामहरद्दुरात्मा कृपां च रामस्य निसर्गसिद्धाम् ।[1]
इदं न चेत्संश्रितवत्सलः किं भवेत्स तूष्णीं जगदेकवीरः' ।।

सीता की विरह वेदना इतना उत्कट हैं कि वे अपने को संभाल नहीं पाती उनकी दुसह्य स्थिति है। प्रथम तो प्रियतम का वियोग दूसरे राक्षसियों के त्रस्त कर देने वाले कठोर वाक्य और क्षण-क्षण में सतीत्व को चुनौती देने वाले रावण के अविवेकपूर्ण कामुक कथन उन्हें दुःसह्य जीवन की स्थिति में रहने के लिए बाध्य कर देते हैं। वे अपने जीवन से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या[2] तक का भी विचार करने लगती हैं। किन्तु उनके वे प्राण हनूमान् के द्वारा मुद्रिका प्राप्त करने से बच जाते हैं। इस तरह सीता की विरह व्यथा अतीव सोचनीय है। सीता के उसी विरह व्यथा का चित्रण हनूमान् श्रीराम के सामने भी करते हैं। वे कहते हैं कि सीता के प्राणों की रक्षा आपके द्वारा दी गई मुद्रिका से ही सम्भव हुई अन्यथा उनके प्राण निकल गये होते -

'देव ! तस्याः प्रतिष्ठासून सूनाशैकपालितान् ।[3]
मुद्रयित्वा प्रपन्नोऽहं तवाभिज्ञानमुद्रया' ।।

इस प्रकार भोजराज ने वियोग श्रृंगार का मार्मिक चित्रण अनेक स्थलों में किया है जिनका वर्णन सर्वथा अलंकारपूर्ण एवं हृदयावर्जक है। उनकी रस परिपाक दृष्टि संयोग की अपेक्षा वियोग चित्रण में अधिक समर्थ हुई है।

1- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 23.

2- तदनन्तरमात्मत्यागम्य स्पृहवन्त्यां मैथिल्यां मारुतिरियमनुपेक्षणीया तपस्विनी नीतिमुञ्चतीति चिन्तां परिगृह्य नेदीयानस्या बभूव। (चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड पृष्ठ संख्या 335).

3- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 66.

करुण रस -

करुण रस प्रिय वियोग की वह स्थिति है जहाँ अपने प्रिय के मिलन की आशा समाप्त रहती है। भोजराज ने अनेक स्थलों में करुणा के प्रवाह को प्रवाहित किया है। इनका सर्वप्रथम करुण रस का स्वरूप दशरथ के चित्रण में हुआ है। दशरथ वृद्धावस्था को प्राप्त है। सुन्दर वीर सर्वगुणोपेत नयनाभिराम श्रीराम के राज्याभिषेक का संकल्प लिए हुए हैं, जो राम न केवल उनके पुत्र हैं, अपितु जीवन की वह महत्वपूर्ण कड़ी हैं, जिसके टूटने से उनकी जीवन के ही टूटने का भय प्राप्त होता है। श्रीराम के वनवास का वरदान कैकेयी के माँगने पर ही श्रीराम के पूर्वमिलन की आशा के भंग की प्रतीत होती है। फलतः समापन्न राम वियोग उन्हें करुणा के अथाह सागर में निमज्जित कर देता है। कैकेयी के वाग्वाण उस करुणा सागर के गहराइयों में बारम्बार अग्रसाख्य का कार्य कर रहे हैं। अत्यन्त विचलित हो दशरथ की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है।

> 'तनयविरहवार्तामात्रसंतप्यमाना -[1]
>
> दथ दशरथचित्ताच्चेतना निर्जगाम ।
>
> दवहुतवहरोचिर्ज्वालया लेह्यमाना -
>
> ज्झटिति गहनगुल्माद्धुज्जिहाना मृगीव' ।।

वे कहने लगते हैं कि राम वन को तो चले जायेंगे, किन्तु प्रजाजन अपनी उत्कण्ठा कैसे छोड़ पायेंगे। मेरा यह शरीर जीवन बिना राम के नहीं रह सकता। इसलिए कैकेयी तुम्हारा जिद्दीपन उचित नहीं है।

> 'वत्सं कठोरहृदये नयनाभिरामं [2]
>
> रामं विना न खलु तिष्ठति जीवितं मे।
>
> धातुर्बलादुपयमस्त्वयि जातपूर्वः
>
> कैकेयि मामुपयमं नयतीति मन्ये' ।।

1- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 13.

2- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 15.

दशरथ का जीवन श्रीराम के संयोग में ही है। वे श्रीराम के बिना अपने जीवन की कल्पना भी नहीं करते उनका न केवल श्रीराम पर प्रगाढ़ स्नेह है अपितु जीवन भी उन्हीं से बँधा है। श्रीराम के बिना सुमन्त्र के लौटने पर लक्ष्मण एवं सीता के सहित श्रीराम के समाचार को सुनकर दशरथ अपने अन्तिम अवस्था का ज्ञान कर लेते हैं और पूर्व घटित श्रवण कुमार के कथा का स्मरण कर राम के वियोग में करुणा के चरम स्थिति मृत्यु का वरण कर लेते हैं -

'नाक्रान्तस्त्रिदिवः परैः सुमनसां कान्ता न वदीकृता[1]
नाकीर्णं पुरुहुतशासनधरैः साकेतबाह्यांगणम् ।
नादिष्टाः सचिवाश्च भूतलपरित्राणाय यद्यप्यसौ
नाकं शोकवशादगाद्दशरथो नास्थां वहन्वाहने' ।।

यह एक ऐसा वर्णन है जो न केवल दशरथ के मनः स्थिति को उद्वेलित करता है अपितु साधारणीकरण क्रिया के माध्यम से सहृदय जन भी मर्माहत हुए बिना नहीं रहते।

तारा के कारुणिक स्वरूप का चित्रण कवि की लेखनी ने इतना मार्मिक किया है कि सहज ही प्रत्येक पाठक एवं श्रोता उद्वेलित हुए बिना नहीं रहता। तारा पति के वियोग से इतनी दुःखी हो जाती है कि वह अपने पति के उस मृतावस्था को देखकर श्रीराम के प्रति आदरभाव को खो देती है। वह अपने पति के सिर को अपनी गोद में रखकर कहने लगती है कि आपकी करुणा आपकी कीर्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है। आप दूसरे के कष्ट हरने में प्रसिद्ध हैं फिर आपने हमारे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया। मैं कितनी दुर्भागिनी हूँ कि प्रियतम की इस अवस्था को देखकर भी मेरे प्राण नहीं निकल रहे हैं, क्यों नहीं आप मुझे राक्षसी मानकर मेरे ऊपर बाण को छोड़ देते और मुझे अपने प्रियतम के पास पहुँचा देते। इसमें आपका भी कल्याण होगा।

1- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 60.

'करुव्यं निरवधि यत्तव प्रसिद्धं [1]

शीतांशोः सहजमिवातिहारि शैत्यम् ।

तत्सर्वं मनुकुलनाथ ! रम्यकीर्ते !

मत्पापात्कथय कथं त्वया निरस्तम् ।।

एवंविधे प्रियतमेऽप्यनपेतजीवां

मां राक्षसीति रघुपुंगव ! साधु बुद्ध्वा ।

बाणं विमुञ्च मयि सम्प्रति ताटकारे !

श्रेयो भवेद्दयितसंगमकारिणस्ते' ।।

वह अपने पति की प्रशंसा करती हुई कहती है - कि यह सुग्रीव बालि के डर से इधर-उधर भागता हुआ ऋष्यमूक पर्वत पर रहता था जहां उसे कोई नहीं मार सकता था। वैसे ही मेरे स्वामी मेरे हृदय रूपी पर्वत दुर्ग में पहुँच गये हैं। श्रीराम वहाँ उन्हें आपके बाणों का भय नहीं हे राघव ! मुझे आपके बाणों का भय नहीं क्योंकि न मैं सुकेतु पुत्री ताटका हूँ और न ही सप्त सालवृक्षों का समुदाय हूँ और न ही तीनों भुवनों में विख्यात प्रभाव वाला बालि हूँ जिसका हृदय वज्र के समान है। श्रेष्ठ बाणों से अभेद्य है। ऐसी मैं तारा हूँ मुझको तुम बिना मारे हे राघव ! तुम धनुषधारी नहीं बन सकते। इस तरह बालि वियोग जन्य दुःख से कातर एवं आक्रोशित तारा के उद्गार करुणा से भरे हुए हैं। उसके इस प्रकार के विलाप को सुनकर सम्पूर्ण किष्किन्धावासी भी विलाप करने लग जाते हैं।

'संत्रस्य पूर्वममुतस्तव बन्धुरेष[2]

भेजे यथाद्रिमकुतोभयमृष्यमूकम् ।

भर्ता ममायमपि रामशरैरभेद्यं

प्राप्तो मदीयहृदयच्छलमाद्रिदुर्गम्' ।।

1- चम्पूरामायण किष्किन्धाकाण्ड श्लोक संख्या 14, 15.

2- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 17-18.

नाहं सुकेतुतनया न च सप्तसाली

वाली न च त्रिभुवनप्रथितप्रभावः ।

तारास्मि वज्रहृदया विशिखैरभेद्या

धन्वी कथं भवसि राघव । मामविद्ध्वा ।।

उसके तर्कों के सामने श्रीराम स्वयं निरुत्तर हो जाते हैं। उसका आक्रोश ही राम को बाण मारने के लिए ललकारने लगता है। इसे करुण रस का अद्वितीय चित्रण कहा जा सकता है। यह अवश्य है कि इस विलाप में पति के साथ व्यतीत किये गये सुखमय जीवन का स्मरण कर, पति के पराक्रम को स्मरण कर विलाप का स्वरूप प्रकट नहीं हुआ फिर भी प्रतिकारकारक के प्रति आक्रोश की उद्गाम व्यंग्योक्ति करुणा को उद्दीप्त करते हैं।

ऐसे ही अपने ज्येष्ठ बन्धु रावण के वियोग से व्यथित विभीषण के उद्गार भी करुण रस का सुन्दर उदाहरण हैं। विभीषण सम्पूर्ण राक्षस जाति के संहार का अपने को ही कारण मान कलंकित समझ भ्रातृ वियोग से अत्यन्त दुःखी हो जाता है। वह रावण का साथ देने के लिए कुम्भकर्ण की प्रशंसा करता है और अपनी निन्दा करता है।

'रक्षःपतौ पतितलब्धमनोरथाना -[1]

मातन्वतां द्विविषदामथ पुष्पवर्षम् ।

श्लाघापदं समजनिष्ट परं न रामः

कामोऽपि चाकलितशूर्पणखाविकारः' ।।

अपि समसुखदुःखैरन्वितं बन्धुवर्गं

सहजमपि भवन्तं मुञ्चतः साहसेन ।

कुलविशसनहेतोः कूटधर्मानुवृत्ते -

र्दशमुख । मम यावज्जीवमासीत्कलंकः ।।

1- चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 88-89.

ऐसे ही मन्दोदरी के विलाप का अतीव करुणापूर्ण चित्रण है। वह कहती है - वह वही यमपुरी थी जिसके लिए आप दिग्विजय यात्रा में गये थे। आज वही यमपुरी है; जिसमें आप साधारण मनुष्य की भाँति जा रहे हैं। मैं अपने को समझती थी कि दानव वंश श्रेष्ठ मयदानव मेरे पिता हैं, त्रैलोक्य विजयी मेरा पति है, इन्द्रविजयी मेघनाद जैसा मेरा पुत्र है, किन्तु हाय ! भाग्य के विपरीत होने से आप सबका संहार होने से मुझे यह विडम्बना प्राप्त हुई है। इतने आप नीतिज्ञ थे फिर भी आपको यह बात समझ में नहीं आई कि क्षत्रियधर्म के ज्ञाता श्रीराम आपको मारकर आपके छोटे भाई को गद्दी पर बैठाना चाहते हैं क्योंकि ऐसा ही इन्होंने बालि सुग्रीव के साथ भी किया है।[1]

मन्दोदरी विलाप करती हुई इतनी सन्तप्त हो जाती है कि स्वयं ही प्राण त्याग के लिए तथा सती होने के लिए तैयार हो जाती है, वह कहती है कि जैसे - मेघ का अनुसरण बिजली करती है वैसे मैं आपका अनुसरण करके विरह वेदना से सन्तप्त आत्मा को शीतल करुँगी[2] इस तरह कवि द्वारा चित्रित ये करुणा के प्रसंग सहृदयों के भावों को रससिक्त कर हृदय में अपनी स्पष्ट छाप छोड़ती है।

वीररस -

वीररस काव्यों में सर्वथा प्रभावकारी होता है। वीर रस के वर्णन से श्रोता एवं पाठक स्वतः अपने को स्फूर्ति समझने लगता है। सभी महाकाव्यों में वीररस का चित्रण किसी न किसी रूप में अवश्य होता है। चम्पू-रामायण काव्य भी वीररस के चित्रण में अपना एक स्थान रखता है। राम के विश्वामित्र के साथ जाते समय ताटका वध के लिए उद्यत स्वरूप वीररस की रेखा खींचता है।

'आश्रुत. श्रुतवृत्तेन तेन सुन्दप्रियावध. ।[3]
तमेवान्ववदत्तस्य चापः शिञ्जाखच्छलात्' ।।

1- चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 91 से 93 तक।

2- प्रविश्य जात वेदसं चन्द्रिकेव चन्द्रमसं तडिदिव ताडित्वन्तं भवन्तमनुसरन्ती निर्वापयामि निरन्तरविरहदहनदह्यमानमात्मानम्। (चम्पूरामायण पृष्ठ 476).

3- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 40.

श्रीराम यज्ञ की रक्षा के लिए तत्पर वे देख रहे हैं कि कहीं से किसी भी प्रकार की यज्ञ संहारक स्थिति तो नहीं आती जो मारीच सुबाहु अपने सेना के साथ यज्ञ भूमि में आते हैं। तो उस नीच मति मारीच को अपने बाणों के द्वारा समुद्र में फेंक देते हैं और युद्ध मदोन्मत्त सुबाहु को यमलोक का रास्ता दिखा देते हैं।

'मारीचनीचमतिराहवमारचटय[1]

क्षिप्तः क्षणेन रघुनायकसायकेन ।

मध्येपयोनिधि भयेन निमग्नमूर्ति -

र्वेषं पुपोष जलमानुषनिर्विशेषम्' ।।

'सुबाहुराहवोन्मतः कृतः काकुत्स्थ पत्त्रिणा ।

मुनीनामनभिप्रेतः प्रेतनाथातिथिः कृतः' ।।

श्रीराम सर्वत्र सम्पूर्ण सद्गुणों के साथ-साथ वीरता के भी प्रतिमूर्ति हैं। जब वे शिव धनुष के उत्तोलन की आज्ञा गुरू विश्वामित्र से प्राप्त करते हैं; उस समय बड़ा ही सुन्दर वीरता पूर्ण चित्रण श्रीराम का कवि ने किया है।

'रामे बाहुबलं विवृण्वति धनुर्यज्ञे गुणारोपणं[2]

मा भूत्केवलमात्मना तिलकिते वंशेऽपि वैकर्तने ।

आकृष्टं नितरां तदेव न परं सीतामनोऽपि द्रुतं

भंगस्तस्य न केवलं क्षितिभुजां दोःस्तम्भदम्भस्य च'।।

इसी प्रकार अयोध्या काण्ड में लक्ष्मण का वीरोचित कथन भी वीर रस को पुष्ट करता है।

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 50-51.

2- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 103.

'नियतं नियतिबलमतिलङ्घ्य पौरुषमेव धीरस्य पुरुषार्थान्समर्थयेत्' ।[1]

मा भूत्वत्पदपद्मयोररुणिमा कान्तारसंचारतः[2]

पौणो पाटलिमा मनाक्प्रसरतु ज्याकर्षणादेव मे ।

कैकेयीपरिभूततातवचने नम्रो भवान्मा स्म भू-

त्किञ्चन्मामकमार्य शौर्यजलधे नम्रं धनुर्वर्तताम्' ।।

अरण्य काण्ड का प्रथम श्लोक[3] ही वीररस के स्वरूप को प्रकट करता है। इसमें कई प्रसंग वीररस से सम्बन्धित है जिसमें विराधवध, कबन्ध वध का प्रसंग तथैव जटायु एवं रावण का प्रसंग उल्लेखनीय हैं। खरदूषण के साथ राम के युद्ध के प्रसंग भी वीररस के स्थल हैं।

किष्किन्धा काण्ड में वीररस का प्रकृति के माध्यम से एक सामान्य सा परन्तु मनोरम परिचय कवि ने चित्रित किया है जिसमें मेघ माला के समुचित घोष को श्रीराम के धनुष टंकार की समानता दिखलाते हुए केतकी कदम्ब से परिचित पवन का पराक्रम राम के निःश्वासों से परास्त वर्णित किया गया है।

'रघुपतिचापघोषसमयो भवितेति किल[4]

व्युपरतमुद्भटं घनघटाजनितं स्तनितम् ।

श्वसितमरुद्भिरस्य विजितः किल शान्तिमगात्

परिचितकेतकीकुटजनीपवनः पवनः' ।।

1- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड पृष्ठ 134.

2- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 29.

3- 'प्रविश्य विपिनं महत्तदनु मैथलीवल्लभौ

महाबलसमन्वितश्चलितनीलशैलच्छविः ।

निशाचरदवानलप्रशमनं विधातुं शरै-

श्चचार सशरासनः सुरपथे तडित्वानिव' ।।

(चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 1).

4- चम्पूरामायण किष्किन्धाकाण्ड श्लोक संख्या 32.

जाम्बवान् के द्वारा हनूमान् जी के पराक्रम का वर्णन भी वीररस का उद्भावक है जिसमें उनके प्रबल पराक्रम का उल्लेख है।

'हे वीरा यूथनाथाः । परिणतिपरुषः कार्य आसीद्विषादः[1]

कस्मादस्माकमेतज्जलनिधितरणे शक्तिरेतावतीति ।

स्मृत्वा राज्ञः प्रतिज्ञामयमनिलसुतो लङ्घनायोन्मुखश्चे-

भेद्दः प्रादुर्भवेत्कि कथयत पयसामास्पदे गोष्पदे वा' ।।

सुन्दर काण्ड में वीर हनूमान् साक्षात् वीरता के स्वरूप है। जहाँ उन्होंने समुद्र लंघन जैसे असम्भव कार्य को सम्भव करके दिखाया है वहीं सुरसा को अपने बुद्धिबल से प्रसन्न कर सिंहिका एवं लंका को अपने पराक्रम से सन्तुष्ट किया है। तथा अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर शत्रुपुञ्ज का विनाश किया है। हनूमान् के पराक्रम युद्ध के वर्णन का एक मनोरम दृश्य वीर रस का इस प्रकार है -

'वक्षः संघट्टचूर्णीकृतकनकमहाभित्तिचैत्योत्थधूल्या[2]

नक्षत्रणामकाले सरणिभरुणयन्वीरलक्ष्म्या समेतः ।

रक्षःशूराख्यशारां क्षितितलफलके क्षेपणीयां हनूमा-

नक्षक्रीडां विधातुं दशमुखनगरीचत्वरे तत्वरेऽसौ' ।।

इसी प्रकार इस काण्ड में रावण की सभा में निडर होकर अपने पक्ष को स्थापित करना ललकारते हुए सम्पूर्ण लंका को जलाना हनूमान् की वीरता का प्रतीक है।

वीर रस का समुचित प्रस्फुटन एवं परिपाक युद्ध काण्ड में दृष्टिगोचर होता है। जहाँ युद्ध भूमि का वीर रसोचित ओजस्वी चित्रण प्रस्तुत है। जहाँ धनुष की टंकारों से प्रलयंकालीन दावानल की ज्वालाओं के समान लंकापुरी को चारो ओर से घेर लेने वाले दरपोद्यत वानरों के कोलाहल से सम्पूर्ण वातावरण ढक जाता है और मेघ गर्जन

1- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 46.

2- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 38.

के सदृश्य दुन्दुभि घोष त्रैलोक को भर देता है।

'ततो मदपरिप्लवप्लवगवीरसांराविण -[1]

क्षणक्षुभितकोणपप्रकरकपाणिकोणाहत: ।

रवैरधिकभैरवेरुपरुरोध रोदोन्तरं

तरंगितघनाघनस्तनितबन्धुभिदुन्दुभि:' ।।

वीर रस के अखिल स्वरूप का संस्थापक ग्रन्थाकार का यह गद्यखण्ड सर्वथा स्वीकरणीय है।

'तेन समन्तत: कन्दलयता दलयतेव जगन्ति दुन्दुभिनिर्घोषेण रोषेण च प्रेर्यमाणा बुद्धा: केसरिण इव गिरिकन्दरान्मन्दिरान्निर्गत्य गत्यन्तरायसंधायकान्यपत्यानीवानिमित्तान्यविलोक-माना विमानाधिगतविबुधसीमन्तिनीभि: सह विजिहीर्षयेव प्रस्थानसमयपरिम्लानमुखी: सुमुखीरप्यगण-यन्ता निरन्तरज्वलितकोपानलनयनकोणारुणालातशतनिपातवित्रासचलितनिजवारणनिवारणावेशपरवशा दिशामुखमुखशिवखाम्रेडितक्ष्वेलिता कुलकुलमहीध्रा गृध्रायतपक्षविक्षपाकुलपताकानीकसमुत्तुंगशतांग-संघ:तपरिगता नितान्त निशितकूतान्तदंष्ट्रापटलस्वरतरनखरपट्टसप्रासपरशुगदामुसल परिघद्रुघणधारिणो दारुणाजगरसंतानसंवीता इव विन्ध्यकूटा, व्यूढातिकरालकालयसककंटा विकल्पा इव कल्पाम्बुदानां व्यक्तय इव कालरात्रेविवर्ता इव कालिकालस्य कालस्यापि भयंकरा: संमरांगणमवतरन्त:, समीरयन्तो वीरवादानादाय शरासनमासारैरिव गिरिमम्भोधरा दूरापातिभि: शिलीमुखैर्वलीमुखबलमखि-लमक्षोभयन्त रक्षोभटा:' ।[2]

वीररस के वर्णन के प्रसंग में मेघनाद का वर्णन अप्रतिम है। उसके बाण वर्षा का वर्षा ऋतु से कवि की तुलना अतीव सुन्दर है -

'आसरधारां विकिरञ्शराणामाश्वासयन्मानसमाशराणाम ।[3]

वीरो हरीन्संयति मेघनादो विव्याध हंसानिव मेघनाद:' ।।

1- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 40

2- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड पृष्ठ 425 से 426 तक.

3- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 42.

जिस समय अंगद इन्द्रजीत के ऊपर प्रबल वेग से वृक्षादि का प्रहार करता है उसके प्रहार से न केवल मेघनाद का रथ भंग होता है अपितु राक्षसों की विजय अभिलाषा भी नष्ट हो जाती है।

'रणे तदनु दारुणे रभसमंगदो रावणे -

द्रमेण महताहताखिलधुरीणयानवज्र: ।[1]

शितेन शतकोटिना शिखरिकूटमिन्द्रो यथा

ममन्थ च रथं मनोरथमपि क्षणाद्रक्षसाम्' ।।

जिस समय राम और रावण की युद्ध की अवस्था बनती है, उस समय उस रावण की प्रशंसा में श्रीराम का न केवल मस्तक आन्दोलित होता है अपितु हाथ भी लक्ष्य प्राप्ति की ओर चल पड़ते हैं।

'जेतारमाहवमुखे दशदिक्पतीनां[2]

दृष्ट्वा पुरो दशमुखं रघुनन्दनस्य ।

श्लाघावशेन न चचाल शिर:परं त -

त्सव्येतरं भुजशिरोऽपि समीक्ष्य लक्ष्यम्' ।।

लक्ष्मण की मूर्च्छा अवस्था में भी शत्रु संहारक श्रीराम ने रावण को बाणों से अभिभूत कर प्राण मात्र अवशेष कर दिया।

'आधूय माहमहितोन्मथनाय याव -[3]

त्सौमित्रिरुन्मिषाति संयति तावदेव ।

पौलस्त्यमेष परिभूय परं तदीयान्

प्राणान्मुमोच दयया न मुमोच बाणान्' ।।

1- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 43.

2- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 48.

3- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 51.

ऐसे ही अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनमें वीरों के उत्कृष्ट स्वरूप एवं युद्ध कौशल का सुन्दर वर्णन है। जो वीरता के सुन्दर स्वरूप को चित्रित करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में महान् शत्रु संहारक महावीर कुम्भकर्ण का युद्ध भूमि की क्रीड़ा सबको आश्चर्य चकित कर देने वाली थी। सभी तरह के अस्त्र-शस्त्र एवं पर्वतों तथा शिलाखण्डों का प्रहार जब उसके वक्ष स्थल में टूटकर बिखर जाते थे तो अवीर से चर्चित जैसी शोभा होती थी उसके अग्नि सदृश त्रिशूल चक्र के दग्ध अनेक वीर यमलोक का रास्ता देख रहे थे।

'क्षिप्ताः संयति पुष्पिताः क्षिति रुहस्ते रक्षसो वक्षसि[1]

प्रस्विन्ने पटवासपांसव इवालीयन्त चूर्णीकृताः ।

मुक्ता ये धरणीधरा मुहुरमी तद्बाहुसंघट्टना -

त्प्रत्यावृत्य पुनः प्रहर्तुरभवन् खेदाय भेदाय च' ।।

'ज्वलदलनं त्रिशूलमुपरिभ्रमयन्नमय -

न्नयमवनीमनीकमदखेलनदुर्ललितः ।

सपदि बभञ्च नीलमृषभं शरभं च बला

दहरत गन्धमादनमरून्ध गवाक्षमपि' ।।

उसी वीरता में राम द्वारा उसके वध का वर्णन वीर रस का उत्तम उदाहरण है।

इसी प्रकार लक्ष्मण और मेघनाद का युद्ध अत्यन्त रोचक है जिसमें मेघनाद का वर्णन वीररस की दृष्टि से अतीव सुन्दर है।

'यदुचितमहो मायाशीलस्य यद्भुजशालिनः[2]

सदृशमथ वा युक्तं नक्तंचरेन्द्रसुतस्य यत् ।

शतमखविजितः शौर्य यद्वानुरूपमथात्मन -

स्तदकृत रुषामन्दो मन्दोदरीतनयो रणे' ।।

1- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 55-56.

2- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 75.

राम रावण का युद्ध तो अप्रतिम है ही जिसके लिए वाल्मीकि रामायण में यहाँ तक कह दिया गया कि "राम रावणयोर्युद्धम् राम रावणयोरिव" इनके युद्ध की छटा चम्पू-रामायण में इस प्रकार है -

'अन्योन्यस्य सद्‌दक्षलक्ष्यमिलनादालक्ष्यशौण्डीर्ययोः[1]
शस्त्राशस्त्रि समुन्मिषत्पुलकयोः सश्लाघयोः साहसे।
जाते जीवितसंकटे विहरतोर्मूच्छासु विश्रातम्यतो -
रश्रान्तं रघुवीरपंकिमुखयोरासीदसीमा रणः' ।।

राम रावण का युद्ध एक अप्रतिम युद्ध था जिसमें कोई भी एक-एक से अपने को न्यून नहीं समझता था। जहाँ वरुण, आग्नेय, गरुण, नाग, वायव्य, मेघ, प्रभाकर, तामिश्र, दानव, माहेश्वर, वैष्णव आदि अस्त्रों का परस्पर भयानक प्रहार हुआ। इस युद्ध का अवसान श्रीराम के ब्रह्मास्त्र के प्रहार के द्वारा रावण के वध से होता है।

वीर रस के वर्णन में राम और रावण का युद्ध एक अनुपम उदाहरण है। जिसमें वीर रस के उद्‌भावक सभी कारणों को विद्यमानता एवं स्वरूप अपने आप उपस्थित रहते हैं। जिन्हें पढ़कर या सुनकर सामान्य व्यक्ति भी उत्साह से युक्त हो अपने को वीर अनुभव करने लगता है।

शान्त रस -

शान्त रस का स्थायी भाव लगभग सभी साहित्यशास्त्रकार निर्वेद को ही मानते हैं। किन्तु काव्यप्रकाश के प्रदीप व्याख्याकार शान्त रस का स्थायी भाव शम को स्वीकार करते हैं। उनके मतानुसार राम ही निरीहावस्था में आनन्द स्वरूप हैं क्योंकि वह अपनी आत्मा को विश्राम देता है।[2] आचार्य भरत ने भी 'क्वचित्‌क्षमः' इस कथन से शम के स्थायी भावत्व को स्वीकार किया है। वस्तुतः 'शम्यते यस्मात् इति शमः' इस व्युत्पत्ति के आधार पर शम शब्द का अर्थ निर्वेद ही सिद्ध होता है।

1- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 83.

2- शच शमः निरीहावस्थायामानन्दः स्वात्मविश्रामात्।
(काव्य प्रकाश प्रदीप सूत्र संख्या 47 श्लोक संख्या 35)।

इसीलिए परवर्ती एवं पूर्ववर्ती अन्य आचार्य गण निर्वेद को ही शान्त रस का स्थायी भाव स्वीकार करते हैं।

चम्पू-रामायण में शान्त रस के अनेक स्थल प्राप्त होते हैं जिनमें शान्त रस का परिपाक पूर्णतया होता है। चम्पूरामायण में निर्मल अन्तःकरण वाले सांसारिक बन्धनों से मुक्त ब्रह्मचिन्तनसम्पन्न ऋषि मुनियों के माहात्म्य आदि के वर्णन में उन श्रेष्ठ महात्माओं से सुसेवित पवित्र आश्रमों एवं वनों, उपवनों के चित्रण में शान्त रस की सर्वथा अभिव्यक्ति हुई है।

'प्रतिदिनमवदातैर्ब्रह्मभिर्ब्रह्मनिष्ठैः[1]

प्रशमितभवखेदैः सादरं सेव्यमाने ।

बलिनियमनहेतोर्वामनः काननेऽस्मिन्

बलिनियमपरः सन् ब्रह्मचारी चचार' ।।

वनवासी राम का चित्रण जिस प्रकार कवि ने किया है वस्तुतः वह अतीव सुन्दर है। उस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् शान्त रस ही राम रूप में अवतीर्ण हो गया है। जिस समय भरत राम के उस स्वरूप को देखते हैं तो राम उन्हें शान्ति के निकेतन पापियों के लिए दुर्लभ नये मेघ के समान कान्ति वाले वल्कलयुक्त जटाजूट बाँधे आजानुबाहु नित्य शोभा सम्पन्न सीता से युक्त राम को देखकर भाव विभोर हो जाते हैं -

'अथावासं शान्तेरकृतसुकृतानामसुलभं[2]

नवाम्भोदश्यामं नलिननयनं वल्कलधरम् ।

जटाजूटापीडं भुजगपतिभोगोपमभुज

ददर्श श्रीमन्तं विपिनभुवि सीतासहचरम्' ।।

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 45.

2- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 66.

इसी प्रकार भगवान् श्रीराम वन में विचरण करते हुए अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाते हैं तो वहाँ की शोभा को देखकर उनके अज्ञान अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य प्रभा के समान ब्रह्मतेज की समृद्धि को अनुष्ठान के द्वारा धारण करने वाले परम तपस्वी महर्षि अगस्त्य को भगवान् श्रीराम् अपने नाम का उल्लेख करते हुए प्रणाम करते हैं। इस प्रकार यह वर्णन भी शान्त रस का सुन्दर उदाहरण है -

'प्रभामिवार्कीं तमसां निहन्त्रीं ब्राह्मीं दधानं नियमेन लक्ष्मीम् ।[1]
तपोनिधिं शौर्यनिधिः प्रसन्नः स्वनाम संकीर्त्य ननाम राम·' ।।

इस प्रकार जहाँ-जहाँ ऋषियों के आश्रम आदि स्थलों में राम का गमन होता है वहाँ का प्रत्येक वर्णन चम्पूरामायण काव्य में शान्त रस का सुन्दर उदाहरण है। कवि ने शान्त रस का प्रयोग यद्यपि संक्षेप में कुछ स्थलों पर ही किया है तथापि वे सभी वर्णन अतीव हृदयग्राही हुए हैं।

भयानक रस -

भयानक रस का स्थायी भाव भय होता है। सभी के द्वारा यह रस अनुमन्य है। जितने भी भय उत्पादक हैं वे सभी वस्तु इनके आलम्बन तथा घोरतर चेष्टाएँ उद्दीपन हैं। चम्पूरामायण में भयानक जैसे गम्भीर रस का परिपाक अतीव कलात्मक सजीव एवं अहलादकारी हुआ है। रावण के प्रचण्ड एवं उग्रतर पराक्रम से भयाक्रान्त त्रैलोक्य का वर्णन करते हुए कवि भोजराज ने सूर्य चन्द्रमा अग्नि वायु आदि देवताओं की जिस अत्यधिक कष्टपूर्ण भयभीत अवस्था का हृदयावर्जक चमत्कारपूर्ण चित्रण किया है वह वस्तुतः किसी दुर्धर्ष पराक्रमी एवं क्रूर प्राकृति के राजा के आतंक से निरन्तर काँपती जनता के हृदयगत भावों एवं क्रियाओं को जिस मनोवैज्ञानिक पद्धति से प्रस्तुत किया गया है। वह अनुपम है -

---

1- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 12.

'एनां पुराणनगरीं नगरीतिसालां[1]

सालाभिरामभुजनिर्जितयक्षराजः ।

हेलाभिभूतजगतां रजनीचराणां

राजा चिरादवति रावणनामधेयः' ।।

'यद्बाहुराहुरसनायितशस्त्रधारा

दिक्पालकीर्तिमयचन्द्रमसं ग्रसन्ति।

यद्वैरिणां रणमुखे शरणप्रदायी

नैवास्ति कश्चिदमुमन्तकमन्तरेण' ।।

रावण का इतना आतंक था कि रावण के द्वारा नन्दन वन से जो पारिज के वृक्ष लाकर अपने गृहोद्यान में लगाये गये थे उन वृक्षों के खिले हुए फूल न गि पावें इस डर से वायु देवता थोड़ा भी नहीं अपना प्रभाव दिखा पाते थे। इस भाव वर्णन कवि ने बहुत ही सुन्दर रीति से किया है -

'तेन पुलस्त्यनन्दनेन सङ्क्रन्दननन्दनात्स्वमन्दिरोद्यानमानीतस्य मन्दारप्रमुख वृन्दारकतरुवृन्दस्य बन्दीकृतसुरसुन्दरीनयनेन्दीवरद्वन्द्वाञ्च करारविन्दकलितकनककलशाच मन्दोष्णं स्यन्दमानैरम्बुभिर्जम्बालितालवालस्य पचेलिमानामपि कुसुमानां पतनभयमाशंकमान पवमानाःपरिस्पन्दितुमपि प्रभवो न भवन्ति' ।[2]

स्वयं अग्नि की इतनी दुर्दशा थी कि वह रावण के घर में रसोई के का में अधिकृत होने के कारण इसकी संज्ञा ही 'हुतवह' हो गयी।

'एतेऽपि पावका रूढिशंकावहां हुतवहाख्यां वहन्तस्तद्गृहे गार्हपत्यपुरोगाःपौरोगव दधते' ।[3]

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 19-20.

2- चम्पूरामायण बालकाण्ड पृष्ठ संख्या 25-26.

3- चम्पूरामायण बालकाण्ड पृष्ठ संख्या 27.

इसी प्रकार विश्वामित्र के यज्ञ में जिस समय राम और लक्ष्मण उपस्थित रहते हैं उस समय यमराज की सेना के समान भयंकर राक्षसों को आकाश के बीच में आते हुए देखकर सामान्य भोले-भाले मुनिगणों के हाथ से डर के कारण समिधायें और कुश गिर जाते हैं। वे इधर-उधर भागने लगते हैं। युद्ध के लिए उद्यत् राम से वे सब सम्पूर्ण स्थिति को कहते हैं।

'तदनन्तरमन्तरिक्षान्तरालादापतन्तमन्तकानीकभयानकं तं पलाशगणमवलोक्य पलायमानाः करगलितसमित्कुशाः कुशिकनन्दनान्तेवा सिनः ससम्भ्रममभिलषिताहवाय राघवाय न्यवेदयन्'।[1]

किष्किन्धा काण्ड में जिस समय वर्षा काल के व्यतीत होने पर शरद् ऋतु के आ जाने पर भी जब सुग्रीव सीता के खोज के लिए कोई उपक्रम नहीं करता उस समय इस विषय की जब श्रीराम लक्ष्मण से वार्ता करते हैं तो लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध होकर जब धनुष में बाण को चढ़ाये हुए किष्किन्धापुर मे जाते हैं तो किष्किन्धापुर के निवासी वानरगण भय से अत्यन्त विह्वल हो जाते हैं। उनके भयंकर कोलाहल से सुग्रीव की नींद टूट जाती है और लक्ष्मण के धनुष के भयंकर धनुष टंकार से त्रस्त सुग्रीव अपने आसन को छोंड़कर भयाक्रान्त हो लक्ष्मण के सामने नतमस्तक हो जाता है।

'ततः सौमित्रि रतिरुष्टः प्रविष्ट इत्यंगदेव विज्ञापितोऽप्यनंगसगरसंगतपरिश्रमादजात-जागरः सुग्रीवस्तद्दर्शन त्राससंचलितसकलप्लवंगबलकिलकिलायितेन प्रबुद्धः सचिवयो प्लक्षप्रभाव-नाम्नोः प्रभावेण प्रकृति प्रपेदे' ।[2]

'तस्मिन्सुग्रीवे राघवरोषस्य कारण निरूपयति सति सद्य एव मुखरित हरिन्मुखोऽभूल्मणस्य ज्याघोषः' ।[3]

रावण का जहाँ भी उल्लेख होता है भयानक रस की अवधारणा लगभग किसी न किसी रूप में सामान्य मनुष्यों के सामने बन जाती है। जिस समय राक्षसियाँ

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड पृष्ठ संख्या 51.

2- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड पृष्ठ संख्या 290-291.

3- चम्पूरामायण पृष्ठ संख्या 291.

रावण के द्वारा अपहरण की गयी सीता को रावण के आदेश से कठोर वचनों एवं भयकारी हावभाव तथा कटाक्षों से भयभीत करती है। उनके इस व्यवहार से त्रस्त एवं संकुचित जानकी की भयाक्रान्त दशा का वर्णन कवि ने उपमा अलंकार के साथ बड़ा ही मार्मिक किया है जिसमें बताया गया है कि उन भयानक आकृतियों वाली राक्षसियों से घिरी हुई जानकी ऐसी प्रतीत हो रही है जैसे - शापवश पृथ्वी पर घिरी हुई कोई देवबाला हो अथवा व्याघ्र समूह से घिरी हुई कोई मृगी हो -

'तदनु क्षणदाचरीणा भीषणवीक्षवाग्दोषोन्मेषेण मुकुलितहृदयपुण्डरीका पुण्डरीकयूथ-परिवृतसारंगांगनाभंगीकुर्वाणा गीर्वाणतरूणीव शापबाला द्वसुधां प्रपन्ना जनकनन्दिनी चिन्तामेवमकरोत'।[1]

इस प्रकार भयानक रस की उद्भावना कवि भोजराज ने अतीव रोचक एवं वैज्ञानिक रीति से किया है जो सहृदय पाठकों के लिए अवश्य ही प्रभावकारी है।

बीभत्स रस -

बीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है। दुर्गन्ध, माँस, रूधिर, मेदा आदि इसका आलम्बन है। यह रस सहृदयों के अन्दर उक्त काव्यों के वर्ण्य विषय के द्वारा रस परिपाक कराता है। भोजराज ने बीभत्स रस की भी अवधारणा करते हुए अपे विचित्र शब्द सन्निवेश के द्वारा सहृदय पाठकों को बीभत्स रस क वर्णन के माध्यम से चमत्कृत करने का तथा आह्लादित करे का पूर्ण प्रयास किया है। इसका चित्रण अतीव हृदयावर्जक हुआ है। बालकाण्ड में जिस समय ताःटका का वध श्रीराम के द्वारा होता है उस समय ताटका की अति भयंकर रक्त देख प्राणियों को नष्ट कारक रूप दारुण कृत्य एवं उसके बीभत्स रूप का वर्णन भी सहृदयों के लिए अतीव आहलादकारी है।

---

1 - चम्पूरामायण पृष्ठ संख्या 332.

'तत्काले पिशिताशाशपिशुना सन्ध्येव काचिन्मुने -[1]

रध्वानं तरसा रुरोध रुधिरक्षोदारुणा दारुणा ।

स्वाधीने हने पुरीं विदधती मृत्योः स्वकृत्यात्यय -

क्रीडत्किंकरसंघसंकटमहाश्रृंगाटका ताटका' ।।

यद्यपि इस वर्णन में बीभत्स का स्वरूप स्फुट नहीं है। फिर भी चमत्कारपूर्ण वर्णन सर्वथा ग्राह्य है। इसीप्रकार अरण्य काण्ड में त्रिशिरा वध का स्वरूप भी बन पड़ा है।

'ततो निकृत्तशिरसि त्रिशिरसि विस्तगन्धिना शरीरस्तुतवसास्तोतसा प्रेत्यापि क्रियमाणाश्रमदूषणे दूषणे च रोषभीषणवीक्षणखरः खरो राघवमाहवायाहृयत' ।[2]

उसी समय जब राक्षसों के साथ श्रीराम का भयंकर युद्ध होता है उस समय का वर्णन भी इस प्रकार का है कि बीभत्स रस की पुष्टि स्वतः बनती है। राम के बाणों से बिद्ध होकर जिस समय राक्षसगण पृथ्वी पर गिरते है तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानों तपोधनों के मार्ग की शुद्धि करने के लिए गृद्धराज जटायु के द्वारा आज्ञा को प्राप्त कर काक एवं गृद्ध आदि पक्षीगण श्रीराम के द्वारा तीक्ष्ण बाणों के द्वारा काटे गये राक्षसों के हाथ पैर एवं अवयवों को ला-लाकर अपने कुटीरों में प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि ऋषियों की हत्या करने वाले ये हाथ हैं। कठोर वाणी बोलने वाले ये तालु हैं। दूसरे की स्त्री की कुदृष्टि से देखने वाले ये नेत्र हैं और तपस्वियों के आश्रमों की अपवित्र करने वाले ये पैर हैं -

'यथा तपोधननिधनकरकरनिकुरुम्बमिदं परुषभाषणस्पृहयालुतालुजातमिदं परदार-निरीक्षणनिरपत्रपनेत्रवृन्दमिदं तापसावसथचारणा चतुरं चरणयुग्लमिदमिति निशिततरनिजशरशकली-कृतनिशिचरशरीरावयबाहृत्याहृत्य प्रत्युटजं प्रदर्शयद्भिस्तपोधनाध्वशुद्धिं विधद्ध्वमिति गृध्रराजनिदेशादिव देशान्तरादापतद्भिः कंकका कप्राचीकप्रायैः पतिद्भिरनवकाशमभूदाकाशम्'।[3]

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 41.

2- चम्पूरामायण पृष्ठ 228.

3- चम्पूरामायण पृष्ठ 227.

इस प्रकार वीभत्स रस की योजना महाकवि भोज ने बडे ही सुन्दर ढंग से की है।

रौद्र रस -

रौद्र रस मुख्य रसों में एक है। क्रोध इसका स्थायी भाव है। सामने स्थित शत्रु आदि उसके आलम्बन हैं। रौद्र रस से सम्बन्धित वर्णन चम्पूरामायण में अनेक स्थलों में प्राप्त होते हैं। बालकाण्ड में रौद्ररस का सुन्दर उदाहरण धनुष भंग के पश्चात् प्रलय काल के समान बढ़ने वाले अग्नि के सदृश क्रोध से युक्त परशुराम का वर्णन जिस प्रकार हुआ है। उससे ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वयं रौद्र रस ही शरीर धारण कर आ रहा हो। परशुराम के क्रोध के साथ-साथ उनके भयंकर दुर्वार पराक्रम का भी चित्रण है जो उनकी क्रोधाग्नि को और प्रज्ज्वलित तथा स्वभावतः उग्र रूप को अत्यधिक भयंकर कर देता है।

'अथ दशरथः तनयैः सह कृतविवाहैर्विदेहेभ्यः प्रतिनिवर्तमानः संवर्तसमयसमुज्जम्भित-हुतवहदुः सहरोषं भीषणदुर्वारपराक्रमं क्षत्रवर्गगर्वसर्वंकषपरशवधधाराधीनरुधिरधारा कल्पितपितृतर्पणं दर्पवतामग्रेसरमुग्रप्रतापिनं तपःसमुचितवल्कलवसनमपि वासनावशादनतिपरिमुषितयुद्धश्रद्धं मध्यमार्गं भार्गवं मुनि राममद्राक्षीत्' ।[1]

सुन्दर काण्ड में सीता को रावण अपने बस में करना चाहता है। सीता जब उसके प्रणय निवेदन को तिरस्कार पूर्वक अस्वीकार कर देती हैं तो रावण अत्यन्त क्रुद्ध होकर सीता की रक्षा में नियुक्त उन राक्षसियों से कहता है कि इस सीता को तुम लोग साम, दाम, दण्ड, भेद इन चारों उपायों से इसे वश में करने का प्रयास करो यदि इस पर भी वह अपने वश में नहीं होती तो इसे प्रातः काल के आहार के लिए पाकशाला में पहुँचा दो -

'एवं जनकदुहितुरवधीरणाफणितिमाकर्ण्य कोपपराङमुखो दशमुखस्तामभितो निवसन्तीरारक्षिकराक्षसीरुद्दश्य भवत्यः, चतुर्भिरप्युपायैरेनामवश्यं वश्यां कुरुध्वम्। इममननुकूला

1- चम्पूरामायण पृष्ठ 97.

चेदिमां हताशां प्रातरशनाय महानसं नयत इत्यादिश्य निशान्ते प्रत्यासन्ने निशान्तमेव प्रविवेश'।[1]

इस तरह रौद्ररस के उदाहरण चम्पूरामायण काव्य में प्राप्त होते हैं।

अद्‌भुत रस -

अद्‌भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। यह रस चम्पूरामायण काव्य में न्यून रूप में ही उलपब्ध होता है परन्तु जो भी इनका स्वरूप काव्य में प्राप्त होता है वह बहुत ही हृदयग्राही एवं मनोहर है।

जिस समय रावण के कठोर वचनों से अत्यधिक दुखी सीता शिंशपा वृक्ष के नीचे बैठी रहती है उसी शिंशपा वृक्ष में छिपकर हनूमान् बैठे हैं वे सीता के दुख को कम करने की इच्छा से राम की प्रशंसापूर्ण मधुर अमृतमयी वाणी सीता को सुनाते हैं। उसे सुनकर सीता जब आश्चर्य से चारों ओर देखने लगती हैं तभी शिंशपा वृक्ष की शाखा में बैठे हुए विशालकाय वानर को देखकर आश्चर्य चकित हो जाती हैं और वह विचारने लगती हैं कि क्या मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ।

'तदनन्तरं समन्तात्प्रसारितनयना जनकतनया तस्यां शाखायां शाखामृगमुद्वीक्ष्य दु:स्वप्नबुद्ध्या चकितहृदया सलक्ष्मणाय रामायभर्त्रे भद्रमाशंसमाना जनमिमं दुरापस्वापंस्वप्नः कथमाप्नुयादिति विचिन्त्य मायया समायतिनैर्ऋत एतिबुद्ध्या तस्मान्मारुतपुत्रात्तत्रास'।[2]

इसी तरह का अद्‌भुत रस का परिपाक रावण की सभा में हनूमान् जी को देखकर जो रावण के हृदय में अनेक भाव उठते हैं उनका जो चारु चित्रण कवि ने किया है उससे अद्‌भुत रस की अवधारणा बनती है।

'सोऽपि प्लवंगमभिवीक्ष्य समीर पुत्रं[3]
चित्तीयमाणहृदयः पिशिताशनेन्द्रः।
कैलासशैलचलनागसि शापदायी
नन्दीश्वरः स्वयमुपागत इत्यमंस्त'॥

1- चम्पूरामायण पृष्ठ 331 - 332.

2- चम्पूरामायण पृष्ठ 337.

3- चम्पूरामायण श्लोक संख्या 47 सुन्दर काण्ड.

इस प्रकार अद्‌भुत रस से युक्त वर्णन अल्प रूप में इस काव्य में प्राप्त होता है।

हास्य रस -

हास्य रस का स्थायी भाव हास माना जाता है। विकृत आकार, वाणी, वेश, चेष्टा आदि इससे हास्य रस प्रकट होता है। यह रस वस्तुतः उन्हीं काव्यों में दृष्टिगोचर होते हैं जिनका वर्ण्य विषय गम्भीर न हो। यह काव्य वस्तुतः गम्भीर रस प्रधान है। फलतः एक सामान्य परिहास को छोड़कर और कोई भी उदाहरण इस रस के प्राप्त नहीं होते हैं।

जिस समय जानकी एवं लक्ष्मण के सहित गोदावरी के किनारे निर्मित पञ्चवटी के आश्रम में श्रीराम बैठे रहते हैं उसी समय उनके अत्यन्त सुन्दर. स्वरूप को देखकर काम पीड़ित हो रावण की बहन शूर्पणखा श्रीराम के पास पहुँचकर प्रणय निवेदन करती है। उस समय श्रीराम कहते हैं कि मेरी पत्नी जानकी वर्तमान है। अतः मुझे छोड़कर बलवान् स्त्री रहित सुयोग्य लक्ष्मण का वरण करो[1] ऐसे ही लक्ष्मण भी उस मदोन्मत शूर्पणखा से उपहास करते हुए कहते हैं जो कि हास्य रस का व्यञ्जक है। हे सुन्दरी! मैं तो उनका दास हूँ तुम श्रेष्ठ एवं उच्च कुल में उत्पन्न हो इसलिए दासी पद तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है। अतः तुम मुझे छोड़ राम का ही वरण करो। श्रीराम कोमल हृदय वन भ्रमण में अचतुर सीता को छोड़कर तुम्हें ही स्वीकार करेंगे।

भद्रे! तस्य दासोऽहं दासभार्यापदमनार्यं नन्वार्यायाः कुलजातायास्तस्मात्तमेव भजेथाः ।

अक्रूरसत्तवां भयानककाननसञ्चाराचतुरां विहाय वैदेहीं तत्रभवतीमेवासौ परिग्रहीष्यतीति।[2]

1- 'ततस्तेन जानकीजानिरिति जानीहि जनमिमं मामनुजमतिमनुजबलमबालमबलावियुक्तं युक्तमाश्रयितुं तवेति' । (चम्पू-रामायण पृष्ठ 222).

2- चम्पूरामायण पृष्ठ 222-223.

इन स्थलों में कुछ हास्य का स्वरूप स्पष्ट होता है। अन्यत्र हास्य के उदाहरण नहीं प्राप्त होते हैं।

वात्सल्य रस -

इन नौ रसों के अतिरिक्त कुछ आचार्यगण पुत्र विषयक रति को वात्सल्य एवं इष्ट विषयक रस को भक्ति रस के रूप में स्वीकार करते हैं। अन्य मम्मट प्रकृति आचार्य इन्हें भाव के अर्न्तगत मानते हैं। वात्सल्य रस का स्वरूप यद्यपि बहुत प्रगाढ़ रूप में विशेष करके बाल्यावस्था के समय का प्राप्त नहीं होता तथापि अयोध्याकाण्ड में कौसल्या का श्रीराम के प्रति सुन्दर भाव जो वात्सल्य रस का स्फुट होता है वह कुछ अवश्य प्राप्त होता है। माँ कौसल्या जब यह श्रीराम के मुख से ही उनके वनवास की बात सुनती हैं तो अत्यन्त शोक युक्त हो जाती है। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वन गमन रूप वरदान उसके कानों में विष बुझे बाण के समान प्रवेश कर गया है। वह एकाएक पृथ्वी पर गिर पड़ती है और विलाप करने लगती हैं कि तुम्हारे हाथ में चक्र, शंख, कमल की जो रेखायें हैं उस हाथ में क्या भगवान् वसिष्ठ ने जो मंगलसूत्र पहनाया था वह कन्दमूल खनने के लिए था।

'रेखारथांगसरसीरुहशंखचिह्ने[1]
क्षेमकरे तव करे जगतां त्रयाणाम् ।
कान्तारकन्दखननं रचयेति नून-
माबद्धवान्प्रतिसरं भगवान्वसिष्ठः' ।।

कौसल्या पुत्र कें प्रेम में इतना विह्वल हो जाती है कि उन्हें अपने कैकेयी के वचनों से आक्रान्त वृद्ध पति की भी सुधि नहीं रहती वे श्रीराम के साथ वन जाने के लिए तैयार हो जाती है जिसे श्रीराम विनय पूर्वक ही रोक पाते हैं।

'तत्र विस्तृतपुत्रवात्सल्या कौसल्या तेन सह गन्तुमभिलषन्ती कृत प्रणामेन रामेण सविनयमेवमभिहिता' ।[2]

1- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 28.

2- चम्पूरामायण पृष्ठ 136.

यद्यपि कैकेयी भरत के लिए राज्य माँगना और भरत के राज्य की निष्कण्टता के लिए श्रीराम का वनवास माँगना, वात्सल्य के अर्न्तगत कहा जा सकता है, तथापि रस वहीं प्रस्फुटित होता है जहाँ वह स्वतः उद्‌भूत हो रहा हो। कैकेयी का स्नेह स्वतः भरत एवं राम दोनों के प्रति समान रूप से था। किन्तु मन्थरा के कुटिल प्रेरणा से स्वार्थ प्रेरित कृत्य भरत रूप पुत्र विषयक रति से सम्प्रेरित नहीं माना जा सकता। फलतः उक्त स्थल में रस मानना अनुचित ही है। पुत्र राम के प्रति पिता दशरथ का स्नेह अप्रतिम है। वे राम को अपने आँखों से ओझल नहीं करना चाहते। वे चाहते हैं कि श्रीराम का मनोहर विग्रह उनके आँखों के सामने ही विद्यमान रहे। इसीलिए जब राम एवं लक्ष्मण को माँगने के लिए आते हैं तो उन दोनों को विश्वामित्र को देने में दशरथ को महान् आत्मिक कष्ट होता है वे देना नहीं चाहते हैं तथापि वसिष्ठ जी के द्वारा समझाये जाने पर प्रदान करते हैं।

'एवं वसिष्ठेन प्रतिष्ठापितधृतिर्दशरथः सुतप्रदानेन कुशिकसुतमनोरथमेव पूरयामास'।[1]

दशरथ की चारों पुत्रों के प्रति अतिशय स्नेह तथापि राम के प्रति उनका वात्सल्य भाव कुछ अलौकिक ही था। वे कहते थे कि जहाँ राम हैं, वहीं मेरा जीवन है। राम के बिना मेरा जीवन सम्भव नहीं है। उन्होंने कैकेयी को दो वरदान देने का वचन दिया था। मन्थरा के प्रेरित किये जाने पर जब राम के राज्यारोहण के समय कैकेयी भरत के लिए राज्य एवं राम के लिए चौदह वर्ष के लिए वनवास माँग लेती हैं। उस समय राम के प्रीति में पगे दशरथ के प्राण सूखने लगते हैं, वे अत्यन्त विह्वल हो कैकेयी को हर प्रकार से समझाते हैं कि -

'वत्स कठोरहृदये नयनाभिरामं[2]
राम बिना न खलु तिष्ठति जीवितं मे।
धातुर्बलादुपयमस्त्वयि जातपूर्वः
कैकेयि मामुपयमं नयतीति मन्ये' ।।

1- चम्पूरामायण पृष्ठ 42.

2- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 15.

दशरथ का यह कोरा कथन नहीं रहता वे अपने पुत्र प्रेम से ही प्रेरित हो जब राम वन को चल देते हैं। उस समय दशरथ उनके भावी कष्टों को स्मरण कर अत्यन्त दुखी हो, उन्हें रथ से पहुँचाने के लिए सुमन्त्र को आज्ञा देते हैं। जिस समय रथ पर आरूढ़ होकर नगर से बाहर श्रीराम जानकी और लक्ष्मण सहित निकलते हैं, उन्हें तब तक दशरथ देखते रहते हैं, जब तक वह रथ आँखों की दृष्टि से दूर नहीं चला जाता और उसके बाद मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं -

'अथ दशरथः सान्तःपुरजनः पुरान्निर्गत्य गत्यन्तराभावात्तमेव रामं सुचिरमालोकयन्नालोकपथमतिक्रान्ते सुमन्त्राक्रान्तस्यन्दने रघुनन्दने स्यन्दमानबाष्पप्रवाहो मोहमुपगम्य भूम्यां पपात'।[1]

सुमन्त्र श्रीराम को उनके मुख्य स्थल पर पहुँचाकर जब खाली हाथ लौटते हैं तो उनके द्वारा प्राप्त सन्देश से राम मिलन की आशा के भग्न हो जाने के कारसण दशरथ की जीवन आशा पूर्णतया क्षीण हो जाती है। फलतः मृत्यु का वरण कर लेते हैं। दशरथ का पुत्र विषयक प्रेम वात्सल्य रस का अनुपम उदाहरण कहा जा सकता है।

देव विषयक रति का स्वरूप यद्यपि कवि के स्वतः उक्ति में तो प्राप्त होता है, किन्तु किसी पात्र के कथन से श्रीराम का देवस्वरूप प्रकट नहीं होता। फलतः भक्ति रस का स्वरूप भी स्पष्ट प्राप्त नहीं होता है।

भाव -

साहित्यशास्त्रियों ने जैसे रसों का स्वरूप निर्धारण किया है वैसे ही भावों का भी निरूपण किया है। काव्य प्रकाशकार ने भावों का लक्षण करते हुए लिखा है - 'रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः भावः प्रोक्तः'[2] अर्थात् देवादिविषयिणी रति तथा प्राधान्येन व्यंग्य व्यभिचारी भाव भाव कहलाते हैं। देवादि में आदि पद

1- चम्पूरामायण पृष्ठ 154.

2- काव्य प्रकाश सूक्त 48 श्लोक 35.

से मुनि गुरु राजा पुत्र आदि विषयक रति का भी ग्रहण हेता है। चम्पूरामायण में कुछ ऐसे स्थल हैं जहाँ पर भावों का स्वरूप भी बन पड़ा है क्योंकि भोजराज स्वयंमेव न केवल कवि थे, अपितु काव्यशास्त्र मर्मज्ञ थे। उन अपने शास्त्रों के सिद्धान्तों को अपने काव्य के माध्यम से प्रायोगिक रूप में प्रदर्शित किया है। यह अवस्था विशेष में प्रार्दुभूत होने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को भी पहचानते हैं और उन भावों के अनुकूल अभिव्यञ्जक शब्दों के द्वारा उसे मानिक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। राम के दर्शन से गुहराज निषाद के हृदय में मित्र राम विषयक हर्ष एवं शोक के संघर्ष का जो हृदयावर्जक चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है उसकी मार्मिकता श्लाघ्नीय है।

'दृष्ट्वा रामनेकजन्मरचिर्तर्द्दर्दश्यं शुभैः कर्मभिः[1]

श्रुत्वा मातृवरद्वयाद्रुपगतां वृत्ति च बैखानसीम् ।

अत्युज्जृम्भितहर्षशोकजनितैर्वाष्पैर्निषादाधिपः

शीताशीतगुणान्वितैरविरलैः सम्पृक्तवक्त्रोऽभवत्' ।।

इसी प्रकार श्रीराम हृदय में भी गंगा के विषय में जो श्रद्धावनत रति का भाव उठता है उसका भी मार्मिक चित्रण सहृदयों के लिए अनुपेक्षणीय है। श्रीराम भगवती गंगा की आराधना कर कहते हैं -

'मेध्याश्वमार्गपरिमार्गण संभवस्य[2]

दिव्यौषधि कपिल कोपलकोपमहाज्वरस्य।

तातानुतर्पणपचोलमभागधेयां

भागीरथीं भगवती शरणं भजामः' ।।

इस प्रकार भावों का सुन्दर चित्रण चम्पूरामायण में प्राप्त होते हैं।

1- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड 48

2- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड 51

रसाभास -

जहाँ पर श्रृंगार आदि रसों का यथोथित प्रर्दशन न हो उनका वर्णन अनुचित रूप से हुआ हो तो वहाँ का वर्णन रसाभास कहलाता है।

यह अनौचित्य अनेक प्रकार का होता है जैसे मुनि या गुरु पत्नी में रति का वर्णन, केवल एक निष्ठ प्रेम का वर्णन, केवल पितृ विषयक वीर तथा रौद्र आदि का वर्णन रसाभास के अर्न्तगत आता है। चम्पूरामायण काव्य में रसाभास के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस विषय में रावण निष्ठ सीता विषय रति रूप रसाभास का सुन्दर उदाहरण हो सकता है। जिस समय चन्द्रमा अस्ताचल की ओर जाने के लिए उत्कष्ठित होने लगा, रात्रि व्यतीत होनने लगी, उस समय निद्रा के अपूर्ण रहने पर कामदेव कृत प्रहार से युक्त नेत्र रावण चन्दनानुलेप से युक्त हो जानकी के दर्शनेच्छा से युक्त वाटिका के लिए प्रस्थान करता है-

'निशीथसमये गते निशीथिनीनाथेऽपि चरमगिरिशिखरोपकण्ठ सेवार्थमुत्कण्ठमाने दशकण्ठस्तु निद्राशेषेण स्मरशरप्रहारेण चकलुषीकृताक्षः सरसहरिचन्दनचर्चया जानकीदर्शनेच्छया च प्रकटितरागः परिवतित वैकक्षकमालया मुकुटरत्नप्रभया च तिरस्कृतनक्षत्रमालः शनैः शनैरविशदशोकवीनकाम्' ।[1]

कवि उपमा विधान के माध्यम से भी सीता के प्रति एकाँगी रावण के मदोन्मत्तराग का सुन्दर वर्णन करता हो -

'सोऽयं मदान्धहृदयो रघुवीरपत्नीं[2]
सीमन्तिनीति छतनीतिरवाप पापः ।
आमूलपल्लीवतकोमलसल्लकीति
बैतानपावकशिखामिव बारणेन्द्रः' ।।

1- चम्पूरामायण पृष्ठ 326.

2- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 20.

ऐसे ही हेमन्त ऋतु में काम वेदना से पीड़ित राक्षसी शूर्पणखा का जो भाव है वह भी रसाभास के अन्तर्गत ही कहा जा सकता है जो इस प्रकार है -

'असौ जनकनन्दिनीं तत इतो विचिन्वन्क्षणा - [1]
दशोकवनिकामगादपगतान्यमार्गभ्रमः ।
परामभिलषन्गतिं शमधनो यथो निमर्म-
स्त्रयीमखिलाकल्वषप्रशमनैकदिव्यौषधिम्' ।।

ऐसे ही लक्ष्मण का क्रुद्ध भाव जो पिता दशरथ माता कैकेयी के माध्यम से होता है उनकी वीर रस पूर्ण जो उक्तियाँ हैं वे सब रसाभास के अन्तर्गत ही मानी जायेंगी। तात्पर्य यह है कि जो भी इस प्रकार के एकाँगी रूप में रस का स्वरूप आभासित होता है परन्तु वह रस नहीं बन पाता वह सब रसाभास के अन्तर्गत माना जाता है।

1- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 15.

सप्तम अध्याय

अलंकार

साहित्यशास्त्रकर्ताओं में शब्द जगत की सत्ता अर्थ को लेकरके स्वीकार की है। न केवल साहित्य शास्त्रीय आचार्यगण अपितु दार्शनिक आचार्यों ने भी पद् पदार्थ सम्बन्ध रूप वृत्ति को स्वीकार करके शब्द एवं अर्थ दोनों की महत्ता स्वीकार की है। आचार्य मम्मट ने तो शब्दार्थौ काव्यम् कहकर के दोनों के महत्व को स्वीकार किया। शब्दार्थों के साहित्य को काव्य मानने वाले आचार्य भामह, वामन, रुद्रट, हेमचन्द्र, वाग्भट्ट, विद्यानाथ, विद्याधर आदि आचार्य विशेष रूप से उल्लेखित है।

शब्दार्थ काव्य का शरीर है। शब्दों का सुन्दर चयन एवं अर्थ की मनोरमता जहाँ स्वाभाविक शरीरगत अंग सौष्ठव को मनोहारी बनाते हैं वहीं इनके शोभाधायक विशिष्ट प्रयोग इनकी शोभा के अभिवर्धक शब्द या अर्थ के विशिष्ट रूप को अलंकार शब्द से ग्रहण किया जाता है ।

'शब्दार्थयोरस्थिरा: ये धर्माश्शोभातिशायिन:[1] ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽगंदादिवत्' ।।

साहित्य दर्पणकार ने अलंकारों को काव्य का अस्थिर धर्म माना है। ऐसे ही मम्मट ने भी अलंकारों के लक्षण में अलंकारों को काव्य का अस्थिर धर्म ही स्वीकार किया है -

'उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽगंद्वारेण जातुचित्[2] ।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादय:' ।।

इस प्रकार काव्य में अलंकारों के अस्थैर्य के विषय में मम्मट के मत का ही अनुसरण साहित्य दर्पणकार ने किया है। आचार्य जयदेव इससे कुछ हट करके

1- साहित्य दर्पण 10/1.
(काव्य प्रकाश नवम उल्लास).

2- काव्य प्रकाश सूत्र संख्या 87.

हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार अग्निउष्णता से हीन नहीं हो सकती वैसे ही काव्य भी अलंकार से रहित नहीं हो सकता -

'अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती ।[1]
असौ न मन्यते कस्मात् अनुष्णमनलं कृती' ।।

अलंकार शब्द एवं अर्थ दोनों को अलंकृत करते हैं। अतः इसी आधार पर शब्द शोभाधायक अलंकार शब्दालंकार कहे जाते हैं तथा अर्थ शोभाधायक अलंकार अर्थालंकार कहे जाते हैं।

भोजराज न केवल उच्चकोटि के कवि थे, अपितु साहित्य शास्त्र के भी विशिष्ट पण्डित थे जिन्होंने सरस्वतीकण्ठाभरण एवं श्रृंगारप्रकाश नामक उत्तम रचनाएँ साहित्य शास्त्र की संस्कृत जगत को प्रदान की। इनके साहित्य में जहाँ रस प्रवाह अक्षुण्ण रूप में प्रवाहित होता है, वहीं अलंकारों की सुरम्य छटा सहृदयों को आकर्षित किये बिना नहीं रहती। चाहे शब्दालंकारों की मनमोहक छटा हो अथवा हृदयग्राही अर्थालंकारों का अनुपम प्रयोग। सभी की स्थिति हृदयग्राही तथा सहृदय के लिये मनोरंजक रहती है। शब्दालंकारों में श्लेष, यमक, अनुप्रास का सुन्दर प्रयोग जहाँ चम्पूरामायण में प्राप्त होता है वहीं अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, तद्गुण, एकावली, विषम, विभावना तथा विशेषोक्ति, विरोधाभास, सहोक्ति, तुल्ययोगिता, परिसंख्या, काव्यलिंग, निदर्शना, व्यतिरेक, स्वाभावोक्ति, कारणमाला, उदात्त, अर्थापति, समाधि, अधिक, प्रत्यनिक, संसृष्टि तथा संकर ये अलंकार प्राप्त होते हैं।

शब्दालंकार -

शब्दों के चित्रित चमत्कारयुक्त प्रयोग में भोजराज सिद्धहस्त कवि हैं। शब्दालंकारों का प्रयोग इनकी संरचनाओं में प्रर्याप्त स्थलों पर हुआ है। इनके चम्पूरामायण कृति में शब्दालंकारों का प्रयोग जिन-जिन स्थलों में हुआ है उनका परिचयपूर्वक सम्पूर्ण विचार इस प्रकार है -

---

1- चन्द्रा लोक जयदेव.

श्लेष[1]

भोजराज ने शब्दालंकारों के यथावत् प्रयोग में यद्यपि सर्वत्र सिद्धहस्तता दिखलाई है तथापि सभी अलंकारों की अपेक्षा श्लेष अलंकार का चमत्कार युक्त प्रयोग अतीव सुन्दर हुआ है। चम्पूरामायण काव्य में कवि भोजराज ने सभंग एवं अभंग दोनों प्रकार के श्लेषों का समायोजन कुशलता पूर्वक किया है।

प्रायः कवि श्लेष अलंकारों के प्रयोग में विलक्षण शब्द चातुरी का ऐसा प्रयोग करते हैं कि श्लेष जैसे अलंकारों के बोध में बुद्धि व्यायाम अधिक हो जाता है। फलतः रस का प्रवाह रूक जैसे जाता है। वहाँ अलंकार का प्रयोग तो बनता है, किन्तु उसकी हृदयग्राहिता नहीं बन पाती। भोजराज का श्लेषालंकार इसीलिए विशिष्ट स्थान रखता है क्योंकि वह स्पष्ट होता है। इनका श्लेष अलंकार न केवल रसिकों के हृदय में कौतूहल उत्पन्न करता है अपितु उनका हृदयावर्जक मनोहर वर्ण भी लौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है। यथा-

'तत्काले पिशिताशनाशपिशुना सन्ध्येव काचिन्मुने-[2]
रध्वानं तरसा रूरोध रूधिरक्षोदारुणा दारूणा।
स्वाधीने हनने पुरीं विदधती मृत्योः स्वकृत्यात्यय -
क्रीडत्किंकरसंघसंकटमहाश्रृंगाटका ताटका' ।।

प्रस्तुत स्थल में 'पिशिताशनाशपिशुना' एवं 'रुधिरक्षोदारूण' इन दो श्लेष युक्त विशेषणों के आधार पर ताटका का सन्ध्या के साथ उपमा विधान करके उसके राक्षसी स्वरूप एवं कृत्य की कवि व्यञ्जना कराता है। इसमें प्रथम विशेषण संभग श्लेष का तथा द्वितीय विशेषण अभंग श्लेष का है। पिशिताशनाशपिशुना का ताटका पक्ष में पिशिताशानाम् = राक्षसानाम् नाशस्य = वधस्य पिशुना = सूचिका अर्थात् "अपने वध के माध्यम से राक्षसों के वध की सूचना देने वाली" अर्थ है। सन्ध्या पक्ष में

1- श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।
वर्णप्रत्ययलिंगानां प्रकृत्योः पदयोरपि ।। ।। ।।
साहित्य दर्पण दसम परिच्छेद।

2- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 41.

पिशिताशनानां = रक्षसाम् आशस्य = भोजनस्य पिशुना = सूचिका अर्थात् राक्षसों के भोजन समय को बतलाने वाली यह अर्थ है।

रुधिरक्षोदारुणा में रुधिरस्य = रक्तस्य, क्षोदेन = पंकेन, अरुणा = चर्चित यह अर्थ ताटका पक्ष में तथा रुधिरस्य क्षोदस्य इव अरुणा = रक्तवर्णा यह संध्या पक्ष में अर्थ होता है। इसी प्रकार -

'आजानपावनक्षीरां वृषानन्दविधायिनीम् ।[1]
श्रुतिप्रणयिनीं सोऽयमापागामाप गामिव' ।।

प्रस्तुत पद्य में वृष में तथा क्षीर शब्द में श्लेष अलंकार है। यहाँ वृष शब्द से बैल एवं धर्म अर्थ का तथा क्षीर शब्द से दूध एवं जल अर्थ का ग्रहण किया गया है।

भोजराज पद्यों के साथ-साथ गद्यों में भी श्लेष युक्त शब्दों का सुन्दर प्रयोग करते हैं। इनके गद्य के कतिपय उदाहरण इस प्रकार है -

'पद्यप्रबन्धमिव दर्शितसर्गभेदं प्राकृतव्याकरणमिव प्रकटितवर्णव्यव्यासं बुधमिव सोमसुतं'[2]।

यहां पर दर्शितसर्गभेद तथा प्रकटितवर्णवृत्यास में श्लेष है। दर्शितसर्गभेद में 'प्रदर्शित है सर्गों का भेद जिसमें' पद्य प्रबन्ध पक्ष में यह अर्थ होगा विश्वामित्र पक्ष में प्रदर्शित है सृष्टि का भेद जिसके द्वारा यह अर्थ होता है। क्योंकि विश्वामित्र क्रोधित हो ब्रह्मा से अतिरिक्त दूसरी सृष्टि रचना में प्रवृत्त हो गये थे। इसी प्रकार प्रकटितवर्णवृत्यासम् में भी ग्रन्थ पक्ष में प्रकट किया गया है वर्ण अर्थात् अक्षरों को विपर्यय जिसमें यह अर्थ तथा ऋषि पक्ष में प्रदर्शित है जाति वर्ण अर्थात् जाति का भेद जिसमें यह अर्थ होता है।

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 54.

2- चम्पूरामायण बालकाण्ड पृष्ठ 39.

इसी तरह का श्लिष्ट विशेषणों द्वारा औपम्य विधान का एक सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है -

'प्राग्वारुणीभजननिह्नुतराजतेजो[1]
निष्क्रान्ततारमुपशान्ततमोविकुविकारम
पूर्वाशया विशति सत्पथभाजि मित्रे
सत्यं निशान्तसमयस्य निशान्तमासीत्' ।।

इस पद्य में निशान्त शब्द के भवन एवं रात्रि के अवसान ये दो अर्थ लिए गये हैं। श्लोक का तात्पर्य एवं शब्द संरचना मनोहारिणी है।

चम्पूरामायण के जिन पद्यों में श्लेष अलंकार की अनुपम छटा है उन पद्यों का विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 94, 96
आरण्य काण्ड - 1
किष्किन्धा काण्ड - 23, 25, 39
सुन्दर काण्ड - 5, 37, 41, 66
युद्धकाण्ड - 42, 45, 65 पृष्ठ 387, 430

यमक [2]

चम्पूरामायण में कवि ने इतने अधिक यमक अलंकार का प्रयोग किया है कि उससे ऐसा प्रतीत होता है, मानो शब्दालंकारों में यमक अलंकार कवि को अतिशय प्रिय था। जहाँ भी शब्दालंकारों के प्रयोग की बात होती है वहाँ यमक अलंकार का प्रयोग किसी न किसी रूप में कवि कर ही देता है। यमक अलंकार से सम्बन्धित कुछ उदाहरण इस प्रकार है -

---

1- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 36.

2- सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः ।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ।। 8 ।।
साहित्य दर्पण - दसम परिच्छेद.

'प्रतिदिनमवदातैर्ब्रह्मभिर्ब्रह्मनिष्ठैः[1]

प्रशमितभवरवेदैः सादरं सेव्यमाने।

बलिनियमनहेतोर्णामनः काननेऽस्मिन्

बलिनियमपरः सन् ब्रह्मचारी चचार' ।।

इस पद्य के प्रथम पाद में स्थित 'बलिनियम' शब्द की तृतीय पाद में आवृत्ति होने से यहाँ सन्देशं नामक यमक अलंकार होता है।

'या तु नः पदवी सैषा यातुनश्चास्य लक्ष्मण[2] ।

यातुकामं तयैवेदं यातु कामं न हन्यताम्' ।।

इस पद्य में यातु शब्द की द्वितीय तृतीय एवं चतुर्थ चरण में आवृत्ति होने से युग्म यमक अलंकार होता है। इसी अलंकार का एक उदाहरण और भी है -

'जननीतिविहीना में जननीति स धर्मवित्[3] ।

निरयान्निरयाद्वीरो निरयादिव सानुजः' ।।

इसमें जन नीति शब्द का पूर्वाद्ध में दो बार तथा निर्यात् शब्द का उत्तरार्ध में तीन बार प्रयोग है।

'पदावृत्ति संदष्टक' यमक का उदाहरण जिसमें द्वितीय चरण कौ चतुर्थ चरण के रूप में आवृत्ति है, वह इस प्रकार है -

'योंग वितन्वति हनूमति राघवस्य[4]

वैवस्वतेन हरिणा समवर्तिना च।

मेने विधिर्घटयितुं कपिमिन्द्रपुत्रं

वैवस्वतेन हरिणा समवर्तिना च' ।।

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 45.

2- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 4.

3- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 71.

4- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 9.

इस पद्य मै 'वैवस्ततेन हरिणा समवर्तिना च' की आवृत्ति हुई है। एक 'खर' शब्द का एक ही पद्य में भिन्न अर्थों में कैसे प्रयोग होता है इसकी छटा इस श्लोक में दर्शनीय है -

'खरपरुषि शरासने गृहीते खरकिरणान्वयशेखरेण तेन[1] ।
खररघुवरयो रणं समाप्तं खरनखरायुधयोरिव क्षणेन' ।।

इसमें खर शब्द का छ· बार प्रयोग हुआ है। अनियत पाद भागावृत्ति यमक के तो अनेक प्रयोग उपलब्ध होते हैं -

'एनां पुराणनगरीं नगरीतिसालां[2]
सालाभिरामभुजनिर्जितयक्षराजः ।
हेलाभिभूतजगतां रजनीचराणां
राजा चिरादवति रावणनाधेयः' ।।

'विपिनमवजगाहे राक्षसानां करोटी -[3]
रसकृदसकृदाविर्बाष्पमालोक्य शोचन् ।
कृतरूचिरिव वर्त्मन्युंकुशानां कुशानां
पथिकचरणलानिन्युंकुरे न्युंकुरेषः' ।।

'अयं कालः कालप्रमथनगलाभैरभिनवै -[4]
रहंयूनां यूनामपहरति धैर्यं जलधरैः ।
स्मराधारा धारापरिचितजडावान्ति सहसा
नभस्वन्तः स्वन्तः कथमिव वियोग. परिणमेत्' ।।

1- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 20.
2- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 19
3- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 24.
4- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 26.

गद्य खण्ड भी यमक अलंकार से अलंकृत हुए बिना नहीं रह सके उदाहरणार्थ कतिपय गद्यांश इस प्रकार हैं -

'कौ युवां युवानौ, कुतस्त्यौ, वामाचारवत्प्रतिभाति वामाचारः। चीरंवपुषि, जटा शिरसि, करे च चण्डकोदण्डः। क्वायमाकल्पः, क्वचकल्पलताकल्पेयमनल्पाभरणा तरुणीति'।

सकललोकवन्द्यमानचरणारविन्दमरविन्दसंभवमिव वृन्दारकैर्मुनिवृन्दारकैश्च परिवृतं कोपहुंकारनिरहंकाराय नहुषाय भुजंगभावदूषिताय दत्तभुजंगभावं खगगतिनिरोधकल्यवैपुल्ययोर्दुर-वगाहमहावनयोर्विन्ध्यशैलसिन्धुराजयोर्गाधितागाधतातस्करकरोदरमुदरजातवेदोविरचितवातापिदानवाव-लेपलोपं लोपामुद्रावल्लभं सकलसरिद्वल्लभनिनःशेषीकरणवाऽवंवाडवप्रशस्तमपास्तसमस्ताशमप्युपग-तदक्षिणाशं वृषैकतानजन्मानमपि कुम्भजन्मानं'।[1]

यमक अलंकार का जिन स्थलों में प्रयोग हुआ है। उनका विवरण इस प्रकार है -

युद्धकाण्ड - 8, 31

अनुप्रास[2]

अनुप्रास एक ऐसा अलंकार है, जो श्रुति माधुर्य की अभिवृद्धि करता है। रसों के अनुसार वर्णों की आवृत्ति जहाँ अनुप्रास अलंकार के स्वरूप को बतलाती हैं वहीं रस पोषिका भी होती है। काव्य के वाह्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि करके वास्तविक अलंकार संज्ञा को सार्थक करती है। स्वयं कविभोजराज कहते हैं कि जब किसी कवि का विशिष्ट पुण्य होता है तभी सरस्वती प्रतिभाशाली कवियों के चित्त में अनुप्रास अलंकार को निवेशित करती है -

'निवेशयति वाग्देवीप्रतिभानवतः कवेः[3] ।
पुण्यैरमुमनुप्रासं ससमाधिनि चेतसि' ।।

1- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड पृष्ठ संख्या 201, 212.

2- अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्। श्लोकार्द्ध
साहित्य दर्पण दसम परिच्छे

3- श्रृंगार प्रकाश 2-73.

अनुप्रास अलंकार काव्य की शोभा को वैसे ही बढ़ाता है जैसे- चन्द्रमा की चन्द्रिका तथा अंगनाओं की कान्ति की लावण्य अभिवर्धित करता है। किञ्चिद् भी अनुप्रास के गुम्फन से उपमादि अलंकारों से विरहित भी काव्य सुशोभित होता है-

'यथा ज्योत्स्ना चन्द्रमसं यथा लावण्यमंगनाम्।[1]
अनुप्रसास्तथा काव्यमलंकर्तुमयं क्षमः' ।।
'उमादिविमुक्तापि राजते काव्यपद्धतिः।[2]
यद्यनुप्रासलेशोऽपि हन्त तत्र निवेश्यते' ।।

भोजराज के अनुप्रास के प्रयोग में चम्पूरामायण काव्य में ऋतुओं पर्वतों संध्या के समय तथा चन्द्रोदय सरोवर एवं आश्रमों के वर्णन के समय तथा सभी प्राकृतिक छटा के वर्णन में बड़े ही सुन्दर ढंग से शब्द गुम्फन देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त कवि ने लंकापुरी विश्वामित्र अगस्त्य एवं युद्ध आदि के वर्णनों में अनुप्रास अलंकार से युक्त शब्दों के सन्निवेश में शब्द प्रयोग पटुता का परिचय दिया है। उपर्युक्त वर्णनों में अनुप्रास युक्त पदावली की अनुपम स्वर लहरी इनके अलंकारप्रियता को प्रकट करती है। उदाहरणार्थ अनेक प्रकार के तरु समुदाय से विलसित पम्पासर का प्रान्त प्रदेश जिसमें वासन्तिक शोभा विराजमान है उसका सुन्दर वर्णन इस प्रकार है -

'ततस्तस्यास्तटवने नानानोकहनिवहपरिष्कृते निभृतेतरभ्रमणपरभृतव्रातचञ्चूमयविपञ्ची-समुदञ्चितपञ्चमाञ्चिता सन्तताकुञ्चितपञ्चशरशरासनवञ्चितपथिकजनसञ्चारप्रपञ्चा प्रमदचञ्चल-चञ्चरीककुलकञ्चुकितमाधवी माधमी भूतिरुदजृम्भतः' ।[3]

इसी प्रकार हेमन्त ऋतु में पीतवर्ण की धान के बालियों से लहराते हुए खेतों एवं कामदेव की विजययात्रा के सन्दर्भ में प्रस्तुत वीरों के प्रयाण के रूप में सुशोभित निहार आदि का सुन्दर वर्णन बहुत ही सुन्दर तथा आह्लादकारी है-

---

1- श्रृंगार प्रकाश 2-76.
2- श्रृंगार प्रकाश 2-106.
3- चम्पूरामायण पृष्ठ संख्या 254.

'अथ कदाचिदुपचीयमानमनोभववैभवः पाककपिशकलममञ्जरीपुञ्जपिञ्जरीभूतकेदा-प्रपञ्चःपञ्चबाणरणप्रयाणोचितवीरपाणवत्पत्रपुटपात्रद्दश्यावश्यायबिन्दुसंदोहश्चन्द्रातपे निरानन्दतां चन्दानानुलेपने निर्लोलुपतां'.......।[1]

चम्पूरामायण काव्य में अनुप्रास के अन्य भेदों का भी कवि भोजराज ने प्रयोग किया है। जिमसें लाटानुप्रास, वृत्यनुप्रास का भी प्रयोग करके कविता कामिनी को सुशोभित किया है।

अनुप्रास अलंकार से युक्त स्थलों का परिचय इस प्रकार है -

बालकाण्ड	-	12, 19
वृत्यनुप्रास	-	1, 5
लाटानुप्रास	-	34
अयोध्याकाण्ड	-	71, 72
किष्किन्धा काण्ड	-	26
सुन्दर काण्ड	-	54
युद्ध काण्ड	-	1
वृत्युप्रास	-	11

अर्थालंकार

कवि भोजराज ने न केवल शब्दों का ही अपितु अर्थों का सौन्दर्य वर्धन के लिए विशिष्ट उपमा, उत्प्रेक्षादि अर्थालंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। कवि भोजराज की कल्पना का रम्य विलास एवं उनकी कला चातुर्य सहृदय विद्वान् जनों के लिए इन अलंकारों के सुन्दर एवं उचित प्रयोगों के माध्यम से आकर्षण का केन्द्र बनती है। उपमादि अर्थालंकारों के प्रयोगों के उदाहरण एवं प्रयोगों का समुचित विवरण इस प्रकार है -

---

1- चम्पूरामायण पृष्ठ संख्या 216.

उपमा[1]

काव्य के अर्थ को अधिक सहृदय मनोरंजक बनाने में अर्थालंकारों की विशेष उपयोगिता होती है। क्योंकि अर्थ के सौन्दर्य की वृद्धि बिना इनके सम्भव नहीं होती है। इन अर्थालंकारों में भी उपमा अलंकार के माध्यम से सहृदय पाठक एवं श्रोता काव्य के अर्थ को उपमान के माध्यम से जहाँ शीघ्र ग्रहण करता है वहीं उस चमत्कारिक प्रयोग से अहलादित होता है। अप्पयदीक्षित चित्रमीमांसा में कहते हैं कि उपमा वह नर्तकी है, जो विविध प्रकार की अलंकार भूमिका में काव्य रंगमंच पर प्रकट होकर सहृदय रसिक जनों को आप्लावित करती है -

> उपमैका शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्[2] ।
> रञ्जयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः' ।।

उपमा ही वह अलंकार है जिसके विचित्र प्रयोग के कारण कालिदास के लिए उपमा कालिदासस्य यह उक्ति प्रसिद्ध हो गई है।

चम्पूरामायण में भोजराज ने उपमा अलंकारों का विविध प्रकार से प्रयोग किया है। उनके उपमा प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि भोजराज उपमालंकार के वर्ण्य विषय के अनुसार यथावत् प्रयोग में अतीव कुशल प्रतीत होते हैं। उनकी उपमायें वास्तविक स्वरूप को प्रभावशाली ढंग से सुधीजनों के हृदय में चित्र सा बिखेर देती है।

चम्पूरामायण में उपमाओं के विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते हैं। जैसे लौकिक विषयों को उपमान बनाकर प्रस्तुत उपमाएँ प्राकृतिक उपमानों को लेकर प्रस्तुत उपमाएँ मनोविज्ञान को लेकर प्रस्तुत उपमाएँ, शास्त्रों को उपमान बनाकर पाण्डित्यपूर्ण उपमाएँ,

---

1- साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः ।। 14 ।।
साहित्य दर्पण दसम परिच्छेद

2- चित्रमीमांसा पृष्ठ 6.

अन्र्तकथाओं पर आधारित उपमाएँ, श्लेष अलंकार को लेकर प्रस्तुत उपमाएँ इस ग्रन्थ में प्रयुक्त हुई हैं। इनका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है।

लौकिक उपमा -

कवि भोजराज ने चम्पूरामायण में भावात्मक जगत की सूक्ष्मता को मार्मिक एवं हृदयाह्लादक बनाने के लिए यथार्थ जगत से विविध उपमानों को एकत्रित किया है जो शीघ्र ही हृदयग्राही बनते हैं। इन्हीं उपमाओं के माध्यम से कवि अपने पात्र विशेषों का चरित्र भी चित्रित करते चलते हैं जो अत्यधिक मार्मिक एवं श्लाघ्य होता है -

'यामेवाहुर्निशिचरकुलोन्मूलने मूलहेतुं[1]
यस्याश्चितं प्रकृतिकुटिलं गात्रमित्रं बभूव।
अम्भोजिन्या शिशिर सरितः कासरीवाच्छमम्भः
कैकेय्याः सा हृदयमदयं मन्थरा निर्ममन्थ' ।।

इस पद्य में मन्थरा के कुटिल हृदय का उसके विकृत अंगों से साम्य की परिकल्पना कवि की अपूर्व सूझ की परिचायिका है साथ ही कैकेयी के राम के प्रति स्नेहित एवं स्वभावतः निर्बल अन्तःकरण का साम्य कमल समूहों से व्याप्त होने से शीतल सरिता के स्वच्छ जल को मन्थन कर पंकिल बना देने वाली महिषी से की गई है। वह सहृदय पाठकों के समक्ष मन्थरा की कूट चालों से कैकेयी का निर्दोष एवं पवित्र हृदय को क्षुभित होने का साक्षात् चित्र अंकित करती है। ऐसा प्रतीत होता है मानों मन्थरा ने स्वयं कैकेयी के बुद्धि में बैठकर उसे झंकझोर दिया हो। इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण भी प्रेक्षणीय है -

'तनयविरहवार्तामात्रसंतप्यमाना-[2]
दथ दशरथचित्ताच्चेतना निर्जगाम।
दवहुतवहरोज्वलिया लेह्यमाना-
ज्झटिति गहनगुल्मादुज्जिहाना मृगीव' ।।

1- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 9.

2- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 13.

इस पद्य में राम के विरहाग्नि की लपटों से धधकते हुए दशरथ के हृदय से भागने वाली चेतना की साम्यता उस मृगी से दी गई है जो दावाग्नि ज्वाला से प्रज्ज्वलित उपवन से आत्मत्राणार्थ इस उपमा विधान के द्वारा दी गई है। इस प्रकार लौकिक विषयों को अभिलक्ष्य करके इन उपमाओं का प्रयोग हुआ। जिसे कवि भोजराज ने प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

प्राकृतिक उपमा -

काव्य में प्रकृति का वर्णन उसकी चारुता की अभिवृद्धि करता है। कवि स्वयममेव प्रकृति का पुजारी होता है। इसलिए प्राकृतिक वर्णन इन कवियों का सर्वदैव हृदयग्राही होता है। भोजराज ने न केवल इन प्राकृतिक स्थलों का वर्णन किया है। अपितु अपनी उपमाओं में भी इनकी स्थापना की जिससे इन उपमाओं के कारण वर्ण्य विषय उज्ज्वल होता है साथ ही काव्य सुषमा अभिवर्धित होती है। यथा- दशरथ के अंगों में श्वेत केशादि को लेकर प्रकटित वृद्धावस्था उसी प्रकार सुशोभित हो रही है जैसे- विकसित कमल कदम्ब (समुदाय) में शशि का शुभ्र प्रकाश अवतरित होता है -

'मम सुरनरगीतख्यातिभिर्हेतिभिर्वा[1]
दिवि भुवि च समानप्रक्रमैर्विक्रमैर्वा ।
नियतमपरिहार्या या जरा सा मदंगे
विकचकमलषण्डे चन्द्रिकेवाविरासीत्' ।।

कमलकोष में जैसे पराग रहता है। वैसे ही प्रजा जनों के नेत्र कमलों में आनन्द अश्रु छलक उठे -

'आनन्दबाष्पविसरो वदने प्रजाना-[2]
माविर्बभूव मकरन्द इवारविन्दे ।
रामस्य कान्तिमभिषेकदिने भवित्री
प्रक्षाल्य चक्षुरिव वीक्षितुमादरेण' ।।

1- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 3.
2- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 4.

मन्थरा के द्वारा शिक्षित विकृत मति कैकेयी का हृदय दशरथ की भर्त्सना से वैसे ही नहीं पिघला जैसे लता कुञ्ज से आवृत्त होने पर चन्द्रकान्त मणिमय भूमि पूर्णचन्द्र के अखण्ड प्रकाश से भी नहीं पिघलती -

'एवं भर्त्रा भर्त्सिताप्यार्द्रचित्ता नाभूदेषा मन्थराक्रान्तवृत्तिः[1]।
राकाचन्द्र राजमानेऽप्य बाढं वीरुच्छन्ना चन्द्रक्रान्तस्थलीव' ।।

वनगमन के समय राम से पहले ही सीता रथ पर सवार होती है। कवि ने उनकी उपमा हरित वर्ण अश्व से युक्त रथ पर चलने वाले सूर्य की प्रभा से दी है। जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य के आगे रहती है - वैसे ही सीता राम के आगे रथ पर आरूढ़ हैं -

'प्रारब्धयात्रस्य रघूद्वहस्य प्रागेव सीता रथमारुरोह[2]।
आनीलरथ्यं रथमारुरुक्षोरहनां प्रभोरग्रसरी प्रभेव' ।।

इसी प्रकार के ऐसे इन उपमाओं के अनेक स्थल हैं। जहाँ कवि ने मानवीय भावनाओं एवं क्रियाओं आदि में प्राकृतिक परिवर्तनों का आरोपण कुशलता पूर्वक किया है। अर्न्तजगत एवं बर्हिजगत से चयैत होने के कारण उपमाओं में एक विलक्षण चमत्कृति है। इनकी अतीव विशिष्टता यह है कि पाठकों एवं श्रोताओं के समक्ष समग्र चित्र को प्रस्तुत करते हैं।

मनोवैज्ञानिक उपमा -

मनोभावों का स्वाभाविक चित्रण वर्णन के स्वरूप में विशिष्टता प्रदान करता है। आचार्य भोज के वर्णन में सजीवता प्रदान के उद्देश्य से भोज द्वारा कल्पित उपमा विधान में मनोवैज्ञानिक विषयों का समावेश सफलता पूर्वक किया गया है जिससे ये उपमाएँ रस की पोषिकाएँ, भावों की उत्तेजिका एवं प्रकृतार्थ की उपस्थापिकाएँ बन गई हैं -

---

1- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 23.
2- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 42.

'कल्याणवादसुखितां सहसैव कान्तां[1]

कान्तारचारकथया कलुषीचकार ।

अम्भोदनादमुद्रितां विपिने मयूरीं

संत्रासयन्निव धनुर्ध्वनिना पुलिन्दः' ।।

इसमें राम के राज्याभिषेक की सूचना से आनन्द से पुलकित सीता को राम ने अपने वन गमन की वार्ता को सुनाकर वैसे ही व्यथित कर दिया जैसे घनों के गर्जन से आनन्दित हो नृत्य करती हुई मयूरी को शबरी का धनुष टंकार विचलित कर देता है। इस पद्य में सीता के मनोवैज्ञानिक स्वरूप का चित्रण इस उपमा के माध्यम से किया गया है।

पाण्डित्यपूर्ण उपमाएँ -

भोजराज अनेक शास्त्रों के ज्ञाता कवि का ज्ञान उसके कृतियों के माध्यम से सहृदय विज्ञों के समक्ष प्रकट होता है। भोजराज ने अपने शास्त्रीय स्वरूप को कविता के अन्दर उपमा विधान से प्रकट कर दिया है -

'असौ जनकनन्दिनीं तत इतो विचिन्वन्क्षणा -[2]

दशोकवनिकामगादपगतान्यमार्गभ्रमः ।

परामभिलषन्गतिं शमधनो यथा निर्मम-

स्त्रयीमखिलकिल्वषप्रशमनैकदिव्यौषधिम्' ।।

अर्थात् अन्य सांसारिक कर्म मार्ग से प्रथक होकर कोई शान्त निष्ट मोक्षाभिलाषी विरक्त व्यक्ति सम्पूर्ण पापकक्षय कारक दिव्यौषधि स्वरूप ब्रह्म विद्या को अपनाता है। इसी प्रकार हनूमान् अन्य मार्गों को छोंड़कर सीता के अन्वेषण में संलग्न हनूमान् अशोक वाटिका को प्राप्त करते हैं। इस श्लोक में भोज का दार्शनिक दृष्टि का सन्निवेश स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। इसी प्रकार बालकाण्ड में भोज की यह विशेषता प्रकट होती है[3]-

---

1- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 31.

2- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 15.

3- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 98, 108, 117.

अन्तर्कथाओं पर आधारित उपमाएँ -

ऐसे भी अनेक स्थल हैं जिनमें भोजराज ने प्रसंग को सुन्दर एवं स्पष्ट बनाने के लिए उपमा विधान में अन्तर्कथाओं की संरचना की है जिनमें उपमायें विद्यमान हैं। यथा -

'विराधोऽपि क्रुधा सरभसमभिपत्य स्कन्धे निधाय रामलक्ष्मणौ गतिनिरोधापराधपरिहाराय हिमकराहिमकरौ प्रस्थै वहन्विन्ध्य इव प्रतस्थे' ।[1]

इस गद्य खण्ड में विराध की तुलना विन्ध्य पर्वत से की गई है। इस तरह उपमा विधान में अन्तर्कथाओं को भी उपमान बनाया गया है। इनके अन्य उदाहरण हैं[2] -

श्लिष्ट उपमाएँ -

चम्पूरामायण में ऐसे अनेक उपमाओं का समायोजन है जहाँ कवि ने श्लिष्ट विशेषण एवं शब्दों के आधार पर अद्भुत चमत्कार की सृष्टि किया है। इसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार है -

'तत्काले पिशिताशनाशपिशुना संध्येव काचिन्मुने-[3]
रध्वानं तरसा रुरोध रुधिरक्षोदारुणा दारुणा।
स्वाधीने हनने पुरीं विदधती मृत्यो· स्वकृत्यात्यय-
क्रीडत्किंकरसंघसंकटमहाश्रृंगाटकां ताटका।।'

'आजानपावनक्षीरां वृषनन्दविधायिनीम् ।
श्रुतिप्रणयिनीं सोऽयमापगामाप गामिव ।।'

चम्पूरामायण पृष्ठ 203.

चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड पृष्ठ 230, आरण्य काण्ड 9, किष्किन्धाकाण्ड पृष्ठ 95.

चम्पूरामायण बालकाण्ड पृष्ठ 41, 54.

चम्पूरामायण में उपमा अलंकारों का जिन-जिन स्थलों में प्रयोग हुआ है। उनका विवरण इस प्रकार है।[1]

प्राविश्य विपिनं महत्तदनु मैथिली वल्लभो[2]
महाबलसमान्वतश्चलितनीलशैलच्छविः ।
निशाचरदवानलप्रशमनं विधातुं शरै-
श्चचार सशरासनः सुरपथे तडित्वानिव ।।

उत्प्रेक्षा[3]

चम्पूरामायण के जिन स्थलों में ऐसे वर्णनात्मक स्थल हैं जिनमें प्रकृति नगर आदि का वर्णन हुआ है। उन स्थलों में कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से सुन्दर वैचित्र्यपूर्ण अनुपम कल्पनाओं की अतीव रमणी अभिव्यञ्जना की है जो वर्ण्य विषय के लावण्य को द्विगुणित कर देती है यथा - वनगमन के अवसर पर अत्यन्त सुकुमार भवनों में निवास करने योग्य अदृष्टपूर्व जनक सुता सीता को जन साधारण जब वन जाते देखते हैं तो उनकी आन्तरिक वेदना उमड़कर चीत्कार कर उठती है। उन सबका धैर्य समाप्त हो जाता है, नेत्रों से अजस्त्र अश्रुधारा प्रवाहित हो उठती है। उक्त कारुणिक वातावरण का चित्रण करते हुए कवि की कल्पना अतीव रमणीय है -

'सीता पुरा गगनचारिभिरप्यदृष्टा[4]
मा भूदियं सकलमानवनेत्रपात्रम् ।
इत्याकलय्य नियतं पिदधे विधाता
वाष्पोदयेन नयनानि शरीरभाजाम्' ।।

1- उपमा अलंकार के अन्य उदाहरण बालकाण्ड 94, 96 तथा पृष्ठ 39.
किष्किन्धाकाण्ड 23, 24, 36 / सुन्दर काण्ड 5, 41 / युद्ध काण्ड 42, 45, 65 तथा पृष्ठ 387, 430.

2- आरण्यकाण्ड - 1

3- सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। सूक्त 136 काव्य प्रकाश पृष्ठ 460.

4- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 33.

ऐसे ही ऋष्यमूक पर्वत पर रावण द्वारा हरण कर ले जाते समय वस्त्र एवं आभूषण गिरा दिये जाते हैं। उस समय का वर्णन अतीव हृदयग्राही है। उसमें उत्प्रेक्षा का प्रयोग अतीव कमनीय है -

'......क्ष्माधरे कस्मिंश्चित्सुग्रीवसात्कृतदशग्रीवप्रतापानलसद्दशं बालिविनाशपिशुनम-होल्कापातप्रतिमं रामसाहाय्यकप्रोत्साहनाय पुत्रमभिपतत्पतंगबिम्बशंकावहं कनक पिशंगकौशेयमयोत्तरीयान्तरितमाभरण जालमपातयत्' ।[1]

यहाँ गिरते हुए स्वर्णिम अलंकारों की कवि कल्पित उत्प्रेक्षा का जहाँ एकत्र काव्य शोभा की अभिवृद्धि करती है। वहीं दूसरी ओर बालि एवं रावण विनाश रूप भविष्य में घटने वाली घटनाओं की कलात्मक रीति से सूचा भी देती है। चम्पू-रामायण में कवि के अनूठे एवं रमणीय उत्प्रेक्षा के उदाहरण अनेक स्थलों में उपलब्ध होते हैं, जहाँ कवि की कल्पनाओं का वाणी में अनुस्यूत होने की पद्यत्ति हठात् पाठकों को आश्चर्य युक्त कर देती है। वस्तु उत्प्रेक्षा फलोत्प्रेक्षा, स्वरूपोत्प्रेक्षा सभी के सरस प्रयोग अनेक स्थलों में प्राप्त होते हैं। भोजराज ने उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग जिन-जिन स्थानों में किया है। उनका विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 7, 46, 47 तथा पृष्ठ 24, 58.
अयोध्या काण्ड - 4, 28, 33, 39, 44, 45, 53, 79 तथा पृष्ठ 110, 188, 194.
आरण्य काण्ड - 10, 11, 33 तथा पृष्ठ 208, 227, 239, 242.
किष्किन्धा काण्ड - 20, 24, 27, 29, 31, 34 तथा पृष्ठ 270, 289.
सुन्दर काण्ड - 19, 48, 62 तथा पृष्ठ 308, 316, 317.
युद्ध काण्ड - 15, 28 तथा पृष्ठ 434.

रूपक[2]

भोजराज ने रूपक अलंकार का प्रयोग विशेष करके उन प्रसंगों में किया है जहाँ स्तुति या प्रशंसा के प्रसंग आये हैं। यहाँ इसका समायोजन अतीव कुशलतापूर्वक

1- चम्पूरामायण पृष्ठ 242.
2- रूपकं रूपितोपद्दि (पा वि) षये निरपह्वे साहित्य दर्पण दसम परिच्छेद।

हुआ है जिससे पात्रों की विशेषता के साथ-साथ उनके स्वरूप का भी उद्घाटन प्रभावशाली ढंग से हुआ है।

मिथिलापुरी के महात्म्य वर्णन के समय पृथ्वी का एक नारी के रूप में संसृष्टि चित्रण अतीव सुन्दर हुआ है -

'देव्या यस्या वसनमुदधिः पीठिका हाटकाद्रि -[1]
हरिः सिन्धुः सगरतनयस्वर्गमार्गैकबन्धुः ।
क्रीडाशैलः प्रथमपुरुषक्रोडदंष्ट्रा च तस्याः
सीतामातुर्जगति मिथिलां सूतिकागेहमाहुः' ।।

ऐसे ही वर्षा काल के अवसान का चित्रण करते हुए भोज की अद्भुत कल्पना रूपक अलंकार के प्रयोग से जिस तरह प्रस्फुटित है वह अतीव सहृदयाह्लादक है -

'तापोपशान्तिनटनात् कृतलोकहर्षा[2]
वर्षानटी गगनरंगतलात् प्रयाता ।
अम्भोदवाद्यमचिरेण शशाम सर्वं
निर्वापिताश्च सहसैव तडित्प्रदीपाः' ।।

चम्पूरामायण में रूपक के अन्य सांगपरम्परिक आदि भेदों के अनेक उदाहरण प्रस्तुत होते हैं जिनका विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 1, 20, 27, 29, 78, 81, 100
अयोध्याकाण्ड - 51, 74, 86
आरण्य काण्ड - पृष्ठ 216
किष्किन्धा काण्ड - 5, 33
सुन्दर काण्ड - 12, 25, 26, 38, 51, 57, 59, 66
युद्धकाण्ड - 5

---

1. चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 100.
2. चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 33.

अतिशयोक्ति[1]

भोज की कवित्व शैली की प्रमुख विशेषता है कि इनकी अतिशयोक्ति के माध्यम से वे वैचित्र्य की स्थापना करती है। सौन्दर्य शौर्य पराक्रम समृद्ध आदि का जो भी वर्णन कवि करता है उसको पूर्णतया सजीव कर भव्य रूप प्रदान करने में भोज की विशेषता ही प्रमुख हेतु रही है।

उदाहरणार्थ यथा - लंका की सम्पन्नता का वर्णन करते हुए कवि कहता है -

'अस्ति प्रशस्तविभवैविबुधैरलंघया[2]
लंकेति नाम रजनीचरराजधानी।

लंका की समृद्धि का कवि कल्पना प्रसूत यह वैचित्र्य पूर्ण वर्णन वहाँ की मणिमय अट्टालिकाओं का भव्य चित्रण उपस्थित करता है। जिस फल के प्रकाशित प्रसादों के समक्ष सूर्य चन्द्रमा एवं अग्नि भी तेजोहीन दिखलायी पड़ते हैं। वह देश कितना दिव्य दर्शनीय एवं समृद्ध होगा। सहज ही में उसका अनुमान इस वर्णन से ही हो जाता है। ऐसे ही रावण के प्रताप के चित्रण में कवि की विचित्र अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनाएँ एक दैविक वातावरण की सृष्टि करती हैं। इस तथ्य का प्रकाशन एवं वैचित्र्य का सन्निवेश कवि ने हनूमान् के सामर्थ्याति विषयता का परिचय देता है -

'उज्जृम्भितस्य तरसा सुरसां विजेतुं[3]
पादौ पयोधिकलितौ पवमानसूनोः ।
तस्योत्तमांगम्भवद्गगनस्तवन्ती
वीचीचयस्खलितसीकरमालभारि' ।।

अतिशयोक्ति अलंकार का जिन स्थलों में प्रयोग हुआ है उनका विवरण इस प्रकार है -

---

1- निगीर्याध्यवसानेन्तु प्रकृतस्य परेण यत्। प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्।। कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः । विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः सा ।।
काव्य प्रकाश नवम् उल्लास।

2- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 18.

3- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड - श्लोक संख्या 7.

बालकाण्ड - 15, 18, 28, 42, 43, 114 तथा पृष्ठ 23.

अयोध्याकाण्ड - 8

किष्किन्धा काण्ड - 10, 40, 46

सुन्दर काण्ड - 7, 13, 18, 30

युद्धकाण्ड - 14, 27, 32, 36, 40, 55

दृष्टान्त[1]

वर्णनीय विषय की काव्यात्मक शोभा की अभिवृद्धि कैसे और किस प्रकार हो सकती है। इसके विशद् ज्ञान का परिचय कवि भोजराज के सुनियोजित अलंकारों के प्रयोग से ज्ञात होता है। कवि अलंकारों का प्रयोग केवल शब्द सौन्दर्य अभिवृद्धि के लिए ही नहीं अपितु भावों के सौन्दर्य के अभिवृद्धि के लिए भी करता है। इसलिए विषय की प्रभावशाली प्रस्तुती के लिए कहीं-कहीं दृष्टान्त अलंकार का आलम्बन कवि के विवक्षितार्थ की प्रभावशाली प्रस्तुती के लिए सर्वथा उचित होता है। जब राम के राज्याभिषेक की तैयारी में प्रजाजन के औत्सुक्य को देखकर दशरथ प्रश्न करते हैं कि मैं इतने दिनों से पुत्र के समान इस प्रजा का पालन कर रहा हूँ। किन्तु यह प्रजा मुझे छोंड़कर इस दुधमुहे राम पर कैसे इतना अनुरक्त हो रही है। इस प्रश्न का उत्तर मन्त्रीगण दृष्टान्त अलंकार के माध्यम से देते हुए कहते हैं -

'देवे स्थितेऽपि तनयं तव रामभद्रं[2]
लोकः स्वयं भजतु नाम किमत्र चित्रम् ।
चन्द्रं बिना तदुपलम्भनहेतुभूतं
क्षीरोदमाश्रयति किं तृषितश्चकोरः' ।।

इस पद्य में चन्द्रमा के प्रति चकोर के आकर्षण रूप दृष्टान्त के माध्यम से राम के प्रति प्रजाजनों के असीम अनुराग का अभिव्यञ्जन उत्तम रीति से हुआ है। वर्णन की तार्किकता उसे वैचित्र्यपूर्ण ही बनाती है।

1- दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम् 40.
साहित्य दर्पण दसम परिच्छेद।

2- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 6.

चम्पूरामायण में इस प्रकार के अन्य स्थल भी हैं। जिनमें प्रकृतितार्थ का पोषण करने के लिए दृष्टात अलंकार का सुन्दर समायोजन हुआ है। उनका विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 4

सुन्दर काण्ड - 21, 50, 63

युद्ध काण्ड - 25

अर्थान्तरन्यास[1]

अर्थान्तरन्यास अलंकार के प्रयोग में कवि का झुकाव न के बराबर है। ऐसा प्रतीत होता है कि अर्थान्तरन्यास के समायोजन में कवि प्रवृत्त नहीं होना चाहता। फलतः इसके उदहारण चम्पूरामायण में अल्प ही प्राप्त होते हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 115

सुन्दर काण्ड - 2

युद्ध काण्ड - 20

तद्गुण[2]

चम्पूरामायण में कवि भोजराज इस अनवर्थ संज्ञक तद्गुण अलंकार का प्रयोग बड़ी ही कुशलता पूर्वक किया है। इनका इस अलंकार से विशिष्ट भाव-चित्रण अतीव सुन्दर हुआ है -

---

1- सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेनन वा यदि।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते ।। 61 ।।
साहित्य दर्पण दसम परिच्छेद।

2- तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणग्रहः ।
तद्रूपाननुहारस्तु हेता सत्यप्यतद्गुणः ।। 96 ।।
साहित्य दर्पण दसम परिच्छेद।

'क्षीराम्भोधेजठरमभितो देहभासा प्रराहै [1]

कालोन्मीलत्कुवलयदलद्वैतमापादयन्तम् ।

आतन्वानं भुजगशयने कामपि क्षौमगौरे

निद्रामुद्रां निखिलजगतीरक्षणे जागरूकाम्' ।।

प्रस्तुत स्थल में विष्णु की देह प्रभा से प्रभावित वातावरण का नीलत्व एवं विकसित कुवलय वन से उसका औपम्य एक अपूर्व मनोरम चित्रण प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार आकाश से पतन के समय गंगा की प्राकृतिक छटा एवं प्रवाह के साथ-साथ तद्गुण अलंकार में गुम्फित वर्णन भोज की कला चातुरी एवं वर्णनोपयुक्त अद्भुत कलाओं के सन्निवेश का परिचय देता है -

'तरंगाकृष्टमार्तन्डतुरंगायासितारुणा ।[2]

फेनच्छन्नस्वमातंगमार्गणव्यग्रवासवा' ।।

इस पद्य में गंगा के फेन से समस्त वातावरण के श्वेताप हो जाने का वर्णन तथा उससे उत्पन्न इन्द्र की व्यग्रता कवि की अनूठी कल्पना की द्योतिका है। इससे सम्बन्धित गद्यखण्ड -

बालकाण्ड - पृष्ठ 102

एकावली[3]

एकावली अलंकार का चम्पूरामायण में एक ही उदाहरण प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है -

---

1. चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 14.
2. चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 79.
3. स्थाप्यतेऽपोह्यते वा चेत् स्यात्तदैकावली द्विधा । साहित्य दर्पण दसम परिच्छेद।

'उच्चैर्गतिर्जगति सिद्धयति धर्मतश्चे[1]

तस्य प्रभा च वचनैः कृतकेतरैश्चेत् ।

तेषां प्रकाशनदशा च महीसुरैश्चे-

तानन्तरेण निपतेत् क्व नु मत्प्रणामः' ।।

इस अलंकार के प्रयोग के माध्यम से कवि ने ब्राह्मणों के प्रति अपनी श्रद्धा की अभिव्यञ्जना की है।

विषम [2]

विषम् अलंकार के प्रयोग की स्थिति गद्य खण्ड में विशेष दृष्टिगोचर होती है। वक्कल वस्त्र धारण किये हुए राम एवं लक्ष्मण जब वन में विचरण कर रहे हैं। उन्हें देखकर विराध कहता है -

चीरं वपुषि, जटाः शिरसि, करे च चण्डकोदण्डः। क्वायमाकल्पः, क्वच कल्पलताकल्पेयमनल्पाभरणा तरुणीति' ।[3]

इस प्रसादगुण युक्त संगीतात्मक गद्य में राम के वशभूषा से धनुष एवं सीता की विषमता का विन्यास कवि ने बड़ी ही चतुरता पूर्वक किया है।[4]

विभावना एवं विशेषोक्ति[5]

इन दोनों अलंकारों का एक ही श्लोक में सन्निवेशकर भोजराज ने सीता की सुकुमारता एवं धैर्य धारण क्षमता की व्यञ्जना बड़े ही सुन्दर ढंग से की है -

---

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक सं0 2.

2- क्वचिद्यदतिवैधर्म्यान्नि श्लेषो घटनामियात्। कर्तुः क्रियाफलावाप्तिर्नैवानर्थश्चयद्भवेत्।।
गुणक्रियाभ्यां कार्यस्य कारणस्य गुणक्रिये। क्रमेण च विरुद्धे यत् स एष विषमो मतः ।।
काव्य प्रकाश 10/126, 127.

3- चम्पूरामायण पृष्ठ संख्या 201.

4- बालकाण्ड 22/ सुन्दर काण्ड 42.

5- विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते। उक्तानुक्तनिमित्तत्वाद् द्विधा सा परिकीर्तिता ।। 66 ।। साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद।

'तस्या विदेहदुहितुः पदयोर्नरवेषु[1]

लाक्षां विनाप्यरुणिमा सहसा बभूव।

वन्ये पथि प्रियतमेन सह व्रजन्त्या

वैवर्ण्यमाविरभवन्न कदापि वक्त्रे' ।।

इस प्रकार इन दोनों अलंकारों का प्रयोग कवि ने कुशलता पूर्वक किया है।

'मध्यं तनुत्वादविभाव्यमानमाकाशमासीदसितायताक्ष्याः।[2]

गर्भोदये विष्णुपदापदेशात्कार्श्यं विहायापि विहाय एन।।"

विरोधाभास

कवि भोजराज अपने काव्य में अलंकारों का स्वभाविक प्रयोग किया है। जिससे काव्य में उनसे सौन्दर्य की अभिवृद्धि स्वतः होती है। इसी क्रम में विरोधाभास की प्रस्तुती अतीव सुन्दर ढंग से हुई है। जिसके उदाहरणों में अनुपम छटा का सौन्दर्य अर्धोक्तिता गद्य एवं पद्य खण्डों में प्रेक्षणीय है -

'मातुराज्ञां वहन्मूर्ध्ना मालामिव महायशाः।[3]

वनाय रामो वव्राज जगतानाय च" ।।

'तत्र विस्तृतपक्षद्वन्द्वमप्यप्रति द्वन्द्वं शौर्यावस्था प्रत्ययं कृतापरोक्षमिव तार्क्ष्यं महामहीध्रकल्पं गृध्रराजमद्राक्षीत्' ।

'निशिचरपतिरित्यवेत्य रोषादशनिनिपातनिभेन ताडनेन ।

असुरहितममुं प्रहृत्य दैत्यं सुरहितमेव चकार वालिसूनुः' ।।

1- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 55.

2- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 28 (विभावना का उदाहरण).

3- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 27, पृष्ठ 214, किष्किन्धा काण्ड। श्लोक संख्या 39.

चमत्कारपूर्ण विरोधाभास का एक उदाहरण सर्वथा प्रेक्षणीय है -

'अक्लेशसंभूतगतागताभ्यां वितीर्णविस्तीर्णमहार्णवोऽपि।[1]
आनन्दसिन्धौ पृतनासमक्षमक्षस्य हन्ता नितरां ममज्ज' ।।

इस प्रकार विरोधाभास का अनुपम सौन्दर्य देखने को मिलता है।

सहोक्ति[2]

सहोक्ति अलंकार का चम्पूरामायण में अन्य अलंकारों की अपेक्षा समायोजन अल्प मात्रा में ही हुआ है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है -

'आकृष्य दूरमुटजादथ दर्शिताशः[3]
क्रव्याश एष रघुनाथशरेण विद्धः ।
कार्तस्वरेण तनुतां विजहौ हतोऽस्मी-
त्यार्तस्वरेण सह रामवचोनिभेन' ।।

एक उदाहरण अतिशयोक्ति का बालकाण्ड[4] में सहोक्ति के साथ आया है। जहाँ सहोक्ति की अपेक्षा अतिशयोक्ति अधिक प्रभावशाली है। शेष विवरण अन्य पद्यों आदि का इस प्रकार है।

युद्ध काण्ड - 87.

तुल्ययोगिता[5]

यह अलंकार कवि के द्वारा ऐसे स्थल पर प्रयुक्त हुआ है जहाँ एक ही क्रिया से दो पदार्थों का सम्बन्ध जोड़कर वैचित्र्य प्रकट करने का प्रयास किया है।

---

1. चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 72.
2. सहार्थस्य बलादेकं यत्रस्याद्वाचकं द्वयोः ।। 54 ।। साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद।
3. चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 26.
4. चम्पूरामायण बाल काण्ड श्लोक संख्या 52.
5. सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते। पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषा वा यदा भवेत् ।। 47 ।। साहित्य दर्पण दसम परिच्छेद।

'तदनु शूलममखण्डयदञ्जसा शितशिखं रघुनायकसायकः[1] ।
नियतमेव विराधविरोधिना. हृदयश्‍रलमपि त्रिदिवौकसाम्' ।।

इसके उदाहरण इस प्रकार हैं -

बालकाण्ड - 113

अयोध्या काण्ड - 53

आरण्य काण्ड - 3, 14

किष्किन्धा काण्ड - 11

युद्धकाण्ड - 48, 80

परिसंख्या [2]

परिसंख्या अलंकार का केवल एक ही उदाहरण चम्पूरामायण में प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है -

'मा भूत्वत्पदपद्मयोररुणिमा कान्तारसंचारतः[3]
पाणौ पाटलिमा मनाक्प्रसरतु ज्याकर्षणादेव मे ।
कैकेयीपरिभूततातवचने नम्रो भवान्मा स्म भू -
त्किञ्चन्मामकमार्य शौर्यजलधे नम्रं धनुर्वर्तताम्' ।।

यथासंख्या

यथासंख्या अलंकार यदि कुशलता पूर्वक किया जाये तो अत्यधिक अहलादकारी होती है कवि भोजराज के द्वारा वसन्त ऋतु के प्रसंग में अतीव सुन्दर एवं हृदय ग्राही है -

---

1- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 3.

2- प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद्वस्तुनो भवेत्। तादृगन्यव्ययोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा ।। 8। ।। साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद।

3- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 29.

'यत्र कान्तैर्वियुक्तानां युक्तानामपि सुभ्रुवाम्।[1]

दोलाकर्मवितन्वन्ति मनांसि च वपुंषि च' ।।

यहाँ कान्ता रहित तथा कान्ता युक्त रमणियों के दोलाकर्म में क्रमशः मन तथा शरीर का समन्वय कवि को विशिष्ट शैली का परिचय देती है। इसके अन्य उदाहरण इस प्रकार है -

अयोध्या काण्ड - 48

किष्किधा काण्ड - 2

काव्यलिंग[2]

काव्यलिंग अलंकार सहैतुक होने से अतीव प्रभावकारी होता है। चम्पूरामायण में इस अलंकार का प्रयोग यद्यपि अल्प स्थलों में ही है तथापि जहाँ भी है अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

भरत कैकेयी के कुकर्मों से अत्यन्त दुखित होकर उसे कोषते हुए कहते हैं -

'अपिवदियममन्त्रे कालयोगान्नरेन्द्रे[3]

वरयुगरसनाभ्यां प्राणवायुं तदीयम् ।

अपनगरममुष्या वर्तनं युक्त रूपं

पितृवनवसुमत्यां कापि वल्मीकवत्याम्' ।।

उक्त स्थल में उत्तरार्ध वाक्यार्थ के प्रति पूर्वार्द्ध वाक्यार्थ के कारण रूप से उपस्थित होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है जो भरत के हृदय ग्लानि को प्रकटित करता है। इसके अन्य उदाहरण इस प्रकार है -

आरण्य काण्ड - 25

---

1. चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 2.
2- हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंग निगद्यते ।। 62 ।। साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद।
3- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 69.

निदर्शना[1]

कवि ने जहाँ भी माननीय भावों एवं क्रियाओं का अतीव मार्मिक एवं सजीव चित्रण किया है वहाँ निदर्शना सुन्दर संयोजन किया है। जिस समय राम एवं लक्ष्मण के अप्रतिम सौन्दर्य से आकृष्ट है। मदनसर विंध्य व्यग्रमती शूर्पणखा की दयनीय दशा का अनूठा वर्णन निर्दशना अलंकार से युक्त इस प्रकार है -

'दशरथात्मजयुग्मनिरीक्षणसमाकुलबुद्धिरियं दधौ ।[2]
उभयकूल समस्थितशाद्वलभ्रमगतखिन्नगवीदशाम्' ।।

यह वर्णन शूर्पणखा की तात्कालिक मनःस्थिति को प्रकट करता है साथ ही उसके आवागमन की व्यर्थता को भी संकेतित करता है। चम्पूरामायण में निर्दशना अलंकार के ऐसे ही सुन्दर उदाहरण इस प्रकार हैं -

सुन्दर काण्ड - 37, 38.

व्यतिरेक [3]

व्यतिरेक अलंकार के प्रयोग में कवि के चमत्कार पूर्व चित्रण अतीव हृदय ग्राही हैं। जितने भी उदाहरण चम्पूरामायण में इसके प्राप्त होते हैं एक से एक बढ़कर अनुपम छटा को बिखेरते हैं। गम्य व्यतिरेक अलंकार का एक सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है -

'यद्यस्ति कौतुकमपूर्वमृगे मृगाक्षि[4] ।

---

1. सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वाऽपि कुत्राचित् ।
   यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत्सा निदर्शना ।। 51 ।।
   साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद।
2. चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 16.
3. आधिक्ययुपमेयस्योपमानान्न्यूनताऽथवा। व्यतिरेकः। साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद।
4. चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 38.

प्रस्तुत पद्य में निष्कलंक सीता के मुख की तुलना चन्द्र से करने के लिए उसे निष्कलंक करने का यह विचित्र ढंग कवि ने निकाला है। इसके द्वारा चन्द्रमा की अपेक्षा सीता के अनुपम सौन्दर्यातिशय की अनोखी व्यञ्जना कराई है।

ऐसे ही सामने लहराते हुए विशाल समुद्र को देखकर उत्साहहीन वानर वीरों को प्रोत्साहित करने के लिए अंगद के दर्द भरे प्रोत्साहन वाक्य उल्लेखनीय हैं

'किमिति भजथ मौनं वानरा । मानहीनाः[1]
सगररचितकूल्योल्लंघने कुण्ठिताशाः ।
अकलशभवलेहयं दुःशमं वाडवाद्यै -
रनवधिमयशोब्धिर्किं समर्थाम्तिरीतुम्' ।।

यहाँ साधारण समुद्र से अपयश रूपी समुद्र के आधिक्य वर्णन में ही चमत्कृत है जो अत्याधिक मार्मिक है।

स्वाभावोक्ति[2]

कवि भोजराज ने जैसे ही अनेक अलंकारों को स्वाभाविकतया स्थान दिया है। वैसे ही स्वाभावोक्ति अलंकार को भी सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। सीतान्वेषण के पश्चात् जब अंगद आदि कपि जब मधुवन को उजाड़ते रहते हैं। उस समय का सुन्दर स्वभाविक वर्णन अतीव हृदयावर्जक है -

'आरुह्याद्रिमथावरुह्य विपिनान्यासाद्य नानाफला-[3]
न्यास्वाद्य प्लुतमारचय्य वदनैरापाद्य वाद्यक्रमान् ।
आलिंग्य द्रुममक्रमं मदवशादावधूय पुच्छच्छता -
मारादाविरभूदहंप्रथमिकापीना कपीनां चमूः' ।।

चम्पूरामायण किकिष्न्धा काण्ड श्लोक संख्या 45.
स्वाभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णम् ।। 92 ।। साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद।
चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 70.

कारण माला [1]

कारण माला का प्रयोग इन्द्रजीत के वध के समय हुआ है। जिससे युद्ध का वर्णन अतीव प्रभावकारी होता है। इसका उदाहरण इस प्रकार है -

'पतति स्म तत्प्रथममस्त्रमुज्ज्वलं[2]
सशिरस्त्रामिन्द्रजयिन शिरस्ततः ।
अनु पुष्पवृष्टिरनघा दिवौकसा -
मथ वाष्पवृष्टिरमरारियोषिताम्' ।।

उदात्त[3]

जहाँ भी उदात्त भावों का स्वरूप वर्णन होता है वहाँ कवि उदात्त अलंकार का प्रयोग करता है। रावण के समृद्ध भाव के उदात्त अलंकार से युक्त एक सुन्दर पद्य संरचना इस प्रकार है -

'सोऽयं ददर्श दशकन्धरमन्धकारि[4]
लीलाद्रितोलनपरीक्षितबाहुवीर्यम् ।
बन्दीकृतेन्द्रपुरवारवधूकराग्र -
व्याधूतचामरमरुच्चलितोत्तरीयम्' ।।

अर्थापत्ति[5]

वात्सल्य प्रेम के अतिशयता में रस परिपाक को बढ़ाने वाली अर्थापत्ति अलंकार की समायोजना प्रस्तुत पद्य में अतीव हृदयाग्राही है।

---

1. परं परं प्रति यदा पूर्वपूर्वस्य हेतुता। साहित्य दर्पण परिच्छेद ।76
2. चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 76.
3. लोकातिशयसम्पत्तिवर्णनोदस्तमुच्यते। यद्वाणि प्रस्तुतस्यांग महतां चरितं भवेत् ।। 94 साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद।
4. चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 43.
5. दण्डापूपिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते। साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद ।

'अविरतकृषितान्त वत्समालोक्य धेनो-[1]
रपि समजशतानां मातुरस्त्रं बभूव ।
तदहि तनयशोकं सन्तरेदेकपुत्रा
कथय कथमिदानीं कोसलेन्द्रस्य पुत्री' ।।

इस पद्य में कौसल्या का दुख इस प्रकार है जैसे- अपने बछड़े को बहुत समय तक हल में जुते देखकर कामधेनु को होता है।

समाधि [2]

समाधि अलंकार का प्रयोग चम्पूरामायण में विराध द्वारा राम लक्ष्मण को कन्धे में उठाकर ले जाते समय वन भ्रमण में सुकरत्व का वर्णन होने से आया है।
आरण्य काण्ड 45.

अधिक अलंकार [3]

अगस्त्य के महात्म्य का वर्णन जहाँ पर है वहाँ बतलाया गया है कि यह वह अगस्त्य ऋषि हैं जिनके हस्त का स्पर्श होने से यह अथाह सागर जो सम्पूर्ण नदियों का पति कहा जाता है मकरन्द बिन्दु की दिशा को प्राप्त हो गया है।

प्रस्तुत पद्य अधिक अलंकार का चम्पूरामायण में अतीव सुन्दर उदाहरण है -

'तस्येदमाश्रमपदं सरसीरुहाक्षि संख्यविहीनमहिमैकनिकेतनस्य।[4]
भर्ता समस्तसरितां कुपितस्य यस्य हस्तारविन्दमकरन्ददशामवाप' ।।

---

1. चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 68.
2. समाधिः सुकरे कार्ये दैवाद्वस्त्वन्तरागमात् ।। 85 ।। साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद।
3. आश्रयाश्रयिणोरेकस्याधिक्येऽधिकमुच्यते। साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद।
4. चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 8.

संसृष्टि तथा संकर [1]

संस्कृत जगत के प्रायः सभी साहित्य शास्त्र के रचनाकारों ने सभी काव्यों में जहाँ अलंकारों का मिश्रण चारुता को उत्पन्न कर रहा है। वहाँ एक वाक्य में इस मिश्रण की दो अवस्थाओं को स्वीकार किया है। जिस पद्य में अनेक अलंकार परस्पर निरपेक्ष भाव से स्थित हो वहाँ संसृष्टि अलंकार और जहाँ उन अलंकारों की स्थिति सापेक्ष हो वहाँ संकर अलंकार होता है।

भोजराज तो संसृष्टि एवं संकर को अलग-अलग न मानकर संसृष्टि को ही स्वीकार करते हुए कहते हैं -

संसृष्टिरतोऽभिशोभते।[2]

चम्पूरामायण में संसृष्टि का एक उदाहरण इस प्रकार है -

'आबालवृद्धमनुगच्छति रामभद्र-[3]
मेषा पुरी तदिह मा खलु निर्गुणा स्याम ।
इत्यादरादिव धरा बहुधा विधाय
धूलिच्छलान्निजतनुं तमनु प्रतस्थे' ।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा का धूलिच्छलात् इस अपह्नुति से सापेक्ष मिश्रण होने के कारण संकर अलंकार है। इसी प्रकार श्लेष संकीर्ण उपमा, यमक, अनुप्रास एवं उत्प्रेक्षा का मिश्रण[4] उत्प्रेक्षा तथा चमक का मिश्रण[5] एवं गम्योत्प्रेक्षा तथा रूपक का मिश्रण[6] इस प्रकार है।

---

1. यद्येत एवालंकारा परस्परविमिश्रिताः । तदा पृथगलंकारौ संसृष्टिः संकरस्तथा ।। 97 ।। साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद।
2. श्रृंगार प्रकाश पृष्ठ 395.
3. चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 44.
4. चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 41.
5. चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 9.
6. चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 56.

कतिपय अन्य अलंकार

कवि भोजराज द्वारा चम्पू-रामायण में कुछ ऐसे अलंकारों का भी प्रयोग अल्प मात्रा में हुआ है। जिनका प्रस्फुटन अल्प ही दृष्टिगोचर होता है। उनमें प्रत्यनिक, प्रतीप, भ्रान्तिमान, असंगति, समुच्चय, सन्देह, पर्यायोक्ति, उभयालंकार, विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका उदाहरण सहित उल्लेख इस प्रकार है -

प्रतीप अलंकार[1] -

'अविरलमिनवंशं दग्धुमाश्रित्य तापं जनमनसि किरन्त्यां हन्त सत्यां भवत्याम्।[2]
अनुसवनमपापैर्देवता पूज्यमाना वहति कथमिदानीमाश्रयाशाभिधानम्' ।।

भ्रान्तिमान अलंकार[3] -

'पानेन हीनजलमब्धिमपास्य नूनं मैनाक एष मुनिमाश्रयतीति जातम्।[4]
शंकामिमां रघुपतेः कथितात्मवशंस्त्वत्तातमित्रमहमित्यहरज्जटायुः' ।।

सन्देह अलंकार[5] -

'सप्राणा चेज्जनकतनया किं न तिष्ठेत मह्यं[6]
हिंस्त्रैः सत्वैर्न खलु निहता रक्तसिक्ता न पृथ्वी।
गोदावर्यां पुलिनविहृतिं रामशून्या न कुर्या -
द्युक्तं नक्तंचरकवलनात्संस्थिता सर्वथा सा' ।।

---

1. प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम् । निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते।। 87 ।। (साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद).
2. चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 67.
3. साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धि भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः ।। 36 ।। (साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद)
4. चम्पूरामायण आरण्यकाण्ड श्लोक संख्या 13.
5. सन्देहःप्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः ।। 35 ।। (साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद).
6. चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 39.

असंगति अलंकार[1] -

'स मारुतेर्नैर्ऋतपाशजन्मा बन्धोऽभवद्बन्धविमोक्षहेतुः।[2]
पुरा पुलस्त्यान्वयपांसनेन बन्दीकृतानां सुरसुन्दरीणाम्' ।।

समुच्चय अलंकार[3] -

'श्रुत्वा शक्रजितः सुतस्य निधनं शोकेन रक्षःपतेः
क्लान्तं निःश्वसदश्रुपूरभरितं क्रन्दच्चफूत्कारि च।
कोपेनाथ विपाटलं कुटिलितभ्रूवल्लि वृत्तेक्षण
जज्ञे दष्टघनोष्ठमट्टहसितोद्रिक्तं समस्तं मुखम् ।। 77 ।।

(युद्धकाण्ड)

---

1. कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसंगतिः । (साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद).
2. चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 422.
3. समुच्चयोऽयमेकास्मिन् सति कार्यस्य साधके ।। 84 ।। (साहित्य दर्पण दसम् परिच्छेद

अष्टम अध्याय

छन्द

वाक्यों के दो स्वरूप ग्रहीत होते हैं। एक बिना लय स्वर के पाठ्य स्वरूप एक लय समन्वित गेय रूप में। पाठ्य स्वरूप लय स्वर विरहित पाठ्य स्वरूप वाला वाक्य गद्य कहा जाता है। लय स्वर समन्वित जिसका सुमधुर गान किया जा सके ऐसा वाक्य गेय कहा जाता है। गेय वाक्य किसी न किसी पद संरचना विशेष पद्यति से गुम्फित होता है और वही मात्रा विशेष या यति विशेष के नियमों से अनुबन्धित पद्धति छन्द कहलाती है। छन्दों के अनेक स्वरूप होते हैं जिनमें प्रथम भेद तो लौकिक एवं वैदिक स्वरूप को लेकर होता है। लौकिक छन्दों का ही प्रयोग वेदों में यथा कथञ्चित प्राप्त होता है। किन्तु कुछ ऐसे वैदिक छन्द हैं जिनका प्रयोग लोक में सर्वथा वर्जित है। वे केवल वैदिक छन्द ही कहे जाते हैं। जैसे- गायत्री, त्रिष्टुप जगती आदि। अन्य जो छन्द वेद के साथ-साथ लोक में भी प्रयुक्त होते हैं उन्हें लौकिक छन्द कहा जाता है।

छन्दों के स्वरूप भेद से दो भेद माने गये हैं। प्रथम मात्रिक और दूसरा वर्णिक -

'पिंगलादिभिराचार्यैः यदुक्तं लौकिक द्विधा ।[1]
मात्रावर्णविभेदेन छन्दस्तदिह कथ्यते' ।।

मात्रिक छन्दों में आर्या और औपच्छन्दासिक आदि छन्द आते हैं।

वर्णिक छन्द में अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्दों का समावेश माना जाता है।

काव्यों में छन्दोबद्ध पद्य रचना को विशेष महत्व दिया गया है। अपने विवक्षित विषय को चारुतर रीति से प्रस्तुत करने के लिए विषयानुरूप छन्दों का आश्रयण

1- वृत्तरत्नाकर।

कर कवि अपनी कृति को अनुपम स्वरूप प्रदान करता है। विषयों के भावों को जिस प्रकार वर्णों के यथेष्ठ प्रयोग रस भावादि के व्यञ्जक होते हैं। वैसे ही छन्दों के माध्यम से भी रस भावादि की व्यञ्जना में सहायता मिलती है। इसलिए केवल शब्द योजना या गद्य-पद्य का प्रयोग ही काव्य में रस सिद्धि के प्रयोग के लिए पर्याप्त नहीं होता।

उसके लिए छन्दों के उचित प्रयोग में कवि का चातुर्य अपेक्षित होता है। यदि कवि की भावों के अनुरूप छन्दों की उचित योजना होती है तो काव्य का सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है। इसीलिए कवि क्षेमेन्द्र कहते हैं -

'प्रबन्धः सुतरां भाति यथास्थानं निवेशितैः।
निर्दोषैर्गुणसंयुक्तैः सुवृत्तैर्मौक्तिकैरिव' ।।
काव्ये रसानुसारेण वर्णनागुणेन च ।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित' ।।[1]

जो सुन्दर छन्दों की योजना से युक्त प्रबन्ध होते हैं उनकी शोभा सुन्दर आचरण युक्त सज्जन पुरूष के समान होती है। प्रसंगानुसार रसाभिव्यञ्जक छन्दों का प्रयोग न होने पर उनका अनुचित प्रयोग वैसे ही हास्य का विषय बनता है जैसे कोई अज्ञ व्यक्ति करधनी को कण्ठ का हार बना ले।

भोजराज ने अपने चम्पूरामायण काव्य में प्रसंग के अनुसार रसाभिव्यञ्जक अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। जहाँ मात्रिक छन्दों में आर्या, औपच्छन्दसिक जैसे- छन्दों का प्रयोग हुआ है वहीं वर्णिक छन्दों में अनुष्टुप वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, रुचिरा, उपजाति, इन्द्रवज्रा स्त्रग्धरा, पृथ्वी, हरिणी, प्रहर्षिणी, शालिनी, पुष्पिताग्रा, शिखरिणी तत्कुटक, प्रमिताक्षरा, वंशस्थ, तोटक, मञ्जुभाषिणी, मन्दा–क्रान्ता, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा, रथोद्धता आदि छन्द विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कवि ने इन छन्दों का विभिन्न प्रसंगों में सौन्दर्य एवं रस की अभिवृद्धि के लिए समुचित प्रयोग किया है। चम्पूरामायण में जिन-जिन छन्दों का पद्यों की संरचना में सर्वाधिक उपयोग हुआ है। उन्हीं का क्रमशः विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

1- सुवृत्ततिलक - 3-1, 7.

अनुष्टुप[1] भोजराज के प्रिय छन्दों में अनुष्टुप छन्द का प्रथम स्थान है क्योंकि चम्पूरामायण में सर्वाधिक एवं सुन्दर प्रयोग इसी छन्द में हुए हैं। अनुष्टुप एक ऐसा छन्द है जो लगभग सभी भावों का वहन करने में पूर्ण समर्थ होता है। आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं -

'आरम्भे सर्गबन्धस्य कथाविस्तारसंग्रह।
शमोपदेशवृत्तान्ते सन्तः शंसन्त्युनुष्टुभम्' ।।

इस छन्द में निबद्ध रचना के द्वारा हर तरह के वर्णन सर्वथा सशक्त सुन्दर एवं मार्मिक होते हैं। चाहे कथा का प्रसंग स्वरूप हो, चाहे अलंकृत वर्णन हो, चाहे आन्तरिक मनोव्यथा का स्वभाविक वर्णन हो, दार्शनिक दृष्टान्तों का उद्घाटन हो तो चाहे ऋतुओं युद्धों तथा सुन्दर चन्द्रबिम्ब के चित्रण का प्रसंग हो प्रत्येक स्थल में अनुष्टुप की चारुता चित्ताकर्षक होती ही है।

चम्पूरामायण के कतिपय अलंकृत अनुष्टुप पद्यों का स्वरूप इस प्रकार है।

चम्पूरामायण में जिन-जिन पद्यों में अनुष्टुप छन्द की योजना की गई है। उनका काण्ड के अनुसार विवरण इस प्रकार है -

अनुष्टुप छन्द से युक्त बालकाण्ड के श्लोक - 22, 30, 35, 36, 42, 43, 44, 54 से 89 तक 91 से 93 तक 98, 101, 107, 108, 110, 114, 117.

अयोध्या काण्ड - 11, 35, 36, 37, 40, 58, 59, 61, 65, 71, 72, 75, 80, 81, 82, 83, 84.

आरण्य काण्ड - 2, 4, 14, 17, 30, 32, 33.

किष्किन्धा काण्ड - 2, 7, 8, 20, 21, 22, 23, 29, 30.

सन्दर काण्ड - 4, 5, 10, 11, 16, 22, 27, 29, 31, 41, 77.

युद्ध काण्ड - 21, 45, 52, 54, 72, 101, 102.

1- लक्षण - श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोः ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।।
श्रुतबोध, 10

वसन्ततिलका[1]

कवि भोजराज जहाँ भी उत्तम भाव अभिव्यञ्जन का स्थल समझते हैं वहाँ वसन्ततिलका छन्द से सम्वलित पद्य रचना को ही प्रस्तुत करते हैं। अनुष्टुप छन्द के पश्चात् यह छन्द कवि का भावाभिव्यञ्जन के लिए सर्वथा उपयुक्त माध्यम रहा है। इसी छन्द से युक्त गणेश वन्दना द्वारा ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण होता है। स्तुति मूलक प्रसंगों में,[2] करुण रस के उन्मेष में,[3] रावण एवं हनूमान् के स्वरूप चित्रण में,[4] ऋषि अगस्त्य के माहात्म्य एवं आश्रम वर्णन में,[5] क्रोध के वर्णन में,[6] लंका की समृद्धि एवं रावण के प्रताप वर्णन के अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण में, वसन्ततिलका छन्द की योजना कवि की अलौकिक एवं विलक्षण अलंकारपूर्ण काव्य कल्पनाओं की उद्भावना अतीव प्रभावकारी हुई है। इस छन्द की योजना कवि ने मनोवैज्ञानिक वर्णन में विशेष रूप से किया है। विशेषतया क्रोधावस्था के साथ-साथ जहाँ भय आदि मानसिक भावों का भी चित्रण है वहाँ वसन्ततिलका का प्रयोग अतीव महत्वपूर्ण हुआ है। प्रारम्भ में ही रावण के विशिष्ट स्वरूप चित्रण के इस छन्द से निबद्ध कतिपय पद्य इस प्रकार है। बालकाण्ड-[7]

'अस्ति प्रशस्तविभवैर्विबुधैरलंघया
लंकेति नाम रजनीचरराजधानी ।
माणिक्यमन्दिरभुवां महसां प्ररोहै -
स्तेजस्त्रयाय दिनदीपदशां दिशन्ती' ।। 18 ।।

1- लक्षण- उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगः । (वृत्तरत्नाकर 3-78).

2- अयोध्या काण्ड - 51, बालकाण्ड 16.

3- अयोध्या काण्ड - 12, 15, 21, 22 तथा आरण्य काण्ड - 36, 38, 40, 41.

4- सुन्दर काण्ड - 44, 45, 46, 47, 48.

5- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड - 8, 10.

6- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड - 53.

7- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक 18, 19, 20.

'एनां पुराणनगरीं नगरीतिसालां
सालाभिरामभुजनिर्जितयक्षराज.।
हेलाभिभूतजगतां रजनीचराणां
राजा चिरादवति रावणनापमधेय:' ।। 19 ।।

'यद्बाहुराहुरसनायितशस्त्रधारा
दिक्पालकीर्तिमयचन्द्रमसं ग्रसन्ति।
यद्वैरिणां रणमुखे शरणप्रदायी
नवास्ति कश्चिदमुमन्तकमन्तरेण' ।। 20 ।।

चम्पूरामायण में वसन्ततिलका छन्द में निबद्ध जिन श्लोकों का प्रयोग हुआ है उनका क्रमशः काण्डानुसार विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 1, 2, 12, 16, 21, 27, 50, 52, 94, 112, 115.
अयोध्या काण्ड - 4, 5, 6, 12, 15, 21, 22, 30, 31, 33, 34, 41, 44, 46, 50, 51, 53, 55, 56, 70.
आरण्य काण्ड - 8, 10, 28, 36, 38, 40, 41.
किष्किन्धा काण्ड - 13, 33, 35, 40.
सुन्दर काण्ड - 3, 7, 12, 18, 20, 36, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 52, 53, 55, 62, 66, 71, 75.
युद्ध काण्ड - 2, 6, 7, 14, 17, 20, 23, 32, 34, 51, 53, 70, 78, 91, 93.

शार्दूलविक्रीडित[1]

शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग वस्तुतः नायक राजा आदि के शौर्य पराक्रम के वर्णन एवं स्तुति में अधिक उपयुक्त होता है।. कारुणिक प्रसंग जहाँ प्राप्त होता है वहाँ पर भी यह छन्द उपयुक्त होता है। यह छन्द वीररस एवं करुण रस के अभिव्यंजक के रूप में कहीं-कहीं उपयुक्त बनता है। कवि भोजराज ने इस छन्द

---

1 - सूर्याश्वैर्मसजास्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्। वृत्तरत्नाकर 3-99.

का प्रयोग शौर्य प्रदर्शन के प्रसंगों में जैसे - ताटका का शौर्य[1], राक्षसों के क्रूरकृत्य[2], राम का शौर्य[3] प्रदर्शन, लक्ष्मण का पराक्रम,[4] सुग्रीव का पराक्रम,[5] एवं सेतुबन्ध,[6] कुम्भकर्ण वध,[7] राम-रावण युद्ध के समय राम का शौर्य[8] एवं मेघनाद के पराक्रम प्रदर्शन के समय[9] रावण वध[10] की अवस्था में राजा दशरथ की प्रशंसा में[11] राम द्वारा समुद्र स्तुति के प्रसंग में,[12] इस छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है।

इस छन्द का प्रयोग शौर्य और स्तुति के प्रसंग में लगभग सभी कवि करते हैं। परन्तु इस छन्द के प्रयोग के विषय में भोजराज की एक अनोखी विशेषता है कि उन्होंने कारुणिक प्रसंगों में भी शार्दूलविक्रीडित छन्द के माध्यम से अपने पात्रों के शोकपूर्ण भाव तथा अवस्था की सुन्दर अभिव्यक्ति की है यथा- राम जटा बन्धन[13] दशरथ मरण[14], सीता विलाप[15], अशोक वाटिका में सीता की दीनावस्था का चित्रण[16], रावण शोक का निरुपण[17] इन प्रसंगों में इस छन्द का प्रयोग सुन्दर रीति से हुआ। ऐसे

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 41.
2- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 48.
3- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 103.
4- आरण्यकाण्ड श्लोक संख्या 18 और किष्किन्न्धा काण्ड श्लोक संख्या 37.
5- चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 26.
6- चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 26, 33.
7- चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 58, 59.
8- चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 83, 85.
9- चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 68.
10- चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 87.
11- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 106.
12- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 10.
13- चम्पूरामायण अयोद्धयाकाण्ड श्लोक संख्या 54.
14- चम्पूरामायण अयोद्धयाकाण्ड श्लोक संख्या 60.
15- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 29.
16- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 17.
17- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 40.

भी स्थल हैं जहाँ दो-दो भावों को एक ही छन्द में कवि ने अपी चतुरता से पिरो दिया है। जिनमें किसी पद्य में हर्ष एवं शोक[1] दोनों की छटा है तो किसी में बीभत्स एवं करुण[2] का संगम है तो किसी में रौद्र एवं वीररस का अद्भुत संगम है। इसका उदाहरण इस प्रकार है -

'कोपादुत्पतितस्तदा हरिपतिः कोटीरमुत्पाटितं[3]
चक्रे नैर्ऋतनायकस्य सुदृढीचक्रे च वैभीषणम् ।
युद्ध्वा तत्प्रथमावमानकुपितेनैतेन बुद्ध्वा ततो
मायामस्य जगाम कोमलगुणग्राम स राम पुनः' ।।

इनके अलावा वीराभास की व्यञ्जना राम एवं सीता के गौरवपूर्ण कथन रामजन्म के समय लग्न आदि का चित्रण करते हुए अपने स्वाभावोक्ति अलंकार निरूपण में कपियों की चंचल प्रकृति का सुन्दर वर्णन इस छन्द में प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ स्वभावोक्ति से सम्बन्धित यह पद्य इस छन्द का प्रस्तुत है -

'आरुह्याद्रिमथावरुह्य विपिनान्यासाद्य नानाफला -[4]
न्यास्वाद्यप्लुतमारचय्य वदनैरापाद्य वाद्यक्रमान् ।
आलिंगय द्रुममक्रमं मदवशादाधूय पुच्छच्छटा -
मारादाविरभूदहंप्रथमिकापीना कपीनां चमूः' ।।

इस छन्द में निबद्ध चम्पूरामायण के श्लोकों का विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 1, 2, 12, 16, 18, 19, 20, 21, 27, 50, 52, 94, 112, 115.

अयोध्या काण्ड - 4, 5, 6, 12, 15, 21, 22, 30, 31, 33, 34, 41, 44, 46, 50, 51, 53, 55, 56,70.

1- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 48.

2- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या 49.

3- चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक

4- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्ले

आरण्य काण्ड - 8, 10, 28, 36, 38, 40, 41.

किष्किन्धा काण्ड - 13, 33, 35, 40.

सुन्दर काण्ड - 3, 7, 12, 18, 20, 36, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 52, 53, 55, 62, 66, 71, 75.

युद्ध काण्ड - 2, 6, 7, 14, 17, 20, 23, 32, 34, 51, 53, 70, 78, 91, 93.

मालिनी [1]

वस्तुतः मालिनी छन्द का प्रयोग अधिकांशतः सर्ग अन्तिम में उचित होता है। ऐसा आचार्य क्षेमेन्द्र स्वीकार करते हैं।[2] भोजराज ने छन्दों के प्रयोग के विषय में अपनी स्वतन्त्र दृष्टि रखी है। भोजराज रौद्र, वीर एवं भयानक रसों की अवस्था को छोड़कर लगभग अन्य सभी रसों के प्रयोग के प्रसंग में मालिनी छन्द का प्रयोग किया है। विशेष करके करुण रस के प्रसंग में यथा कैकेयी द्वारा जहाँ दशरथ की भर्त्सना[3] है। भरत द्वारा कैकेयी की भर्त्सना है।[4] लक्ष्मण द्वारा सीता की भर्त्सना है।[5] तथा अंगद द्वारा रावण की भर्त्सना[6] आदि प्रसंगों में तथा श्रृंगार आदि के अवस्था में भोज ने इस छन्द का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त जहाँ वर्णनात्मक स्थल है वहाँ पर भी कवि भोजराज ने बड़ी कुशलता से इस छन्द का प्रयोग किया है। आरण्य काण्ड में श्रीराम के द्वारा अगस्त्य आश्रम के वर्णन के प्रसंग में उक्त छन्द से निर्मित यह पद्य प्रेक्षणीय है। इस छन्द से सम्बन्धित अन्य श्लोकों का विवरण इस प्रकार है -

---

1- ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः । वृत्तरत्नाकर 3-83.

2- कुर्यात् सर्गस्य पर्यन्ते मालिनीं द्रुततालवत् । 3-19 । (सुव्रततिलक).

3- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 19.

4- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड 66.

5- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड 27.

6- चम्पूरामायण युद्ध काण्ड 13.

'इह समदगजेन्द्रन्यस्तहस्तातिभारात् -[1]

पथि नियमितशाखः सल्लकीवृक्ष एषः ।

अभिनयति निकामं संगतोच्छ्रायहानि -

मुनिवरकरपाताद् भुग्नविन्ध्याद्रिमुद्राम' ।।

इसके अतिरिक्त इस छन्द से निबद्ध श्लोकों का विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड -	8, 17, 45, 53, 99, 109, 111.
अयोध्या काण्ड -	3, 10, 13, 38, 55, 52, 25, 45, 49, 64.
आरण्य काण्ड -	37, 42, 9, 11, 24, 27, 31
किष्किन्धा काण्ड -	5, 12, 19, 38, 45, 47
सुन्दर काण्ड -	19, 21, 39, 69.
युद्ध काण्ड -	16, 29, 31, 89.

रूचिरा [2]

रूचिरा छन्द का प्रयोग कवि भोजराज ने लव कुश के वर्णन में, मधुवन के उजाड़ने के बाद सूचना देने के समय, मेघनाद की आसुरी माया से नागपाश से आबद्ध राम लक्ष्मण के वर्णन के अवसर पर आयोध्या लौटते समय नगर देखने की इच्छा से राम के रथ पर सवार होते समय इस छन्द से आबद्ध रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है -

'वियत्तले तदनु निलीय मायया[3]

स लक्षयन् रघुतनयं सलक्ष्मणम् ।

अजिह्यगानधिगतजिह्यगाकृती -

नमर्षतः समिति ववर्ष रावणिः' ।।

1- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड 9.

2- चतुर्ग्रहैर्यतिरुचिराजभस्जगाः ।

3- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 44.

यह चम्पूरामायण में चार स्थलों में पाया जाता है -

'अलंकृतः कृतमभिषेकमादरा-[1]

दमात्यसंहतिभिरवाप्य राघवः ।

परोन्मुखः पुनरयमानशे रथं

मनोरथं स च भरतो महारथः' ।।

बालकाण्ड - 9.

सुन्दर काण्ड - 68.

उपजाति[2]

उपजाति छन्द लगभग सभी कवियों का यह छन्द रहा है। क्योंकि श्रृंगार के आलम्बन, उदार नायिका रूप आदि का वर्णन, वसन्त आदि ऋतुओं के वर्णन आदि में अधिक प्रयुक्त होता है। चम्पूरामायणकार ने अपने इस काव्य में उक्त प्रसंगों में इस छन्द का उपयोग न करके अन्य वर्णनों के प्रसंग में इस छन्द का प्रयोग किया है। इसका प्रयोग कई स्थलों में अतीव सुन्दर रूप में प्राप्त होता है। इस छन्द से निबद्ध एक रचना इस प्रकार है -

'ततो महर्षिर्जनकस्य राज्ञः सभां सुधर्मासदृशीं प्रपेदे ।[3]

तौ चापतुश्चापविलोकलोलौ सचापकौ कोसलराजपुत्रौ' ।।

इस छन्द से निबद्ध चम्पू रामायण के अन्य पदों का विवरण इस प्रकार है -

---

1- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 108.

2- स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।
उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततौ गौ ।।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ ।
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।। वृत्तरत्नाक 3-30, 31, 32.

3- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 102.

बालकाण्ड - 10, 49, 97.

अयोध्याकाण्ड - 7, 17, 18, 26, 39, 43.

आरण्यकाण्ड - 12, 35.

किष्किन्धा काण्ड - 1, 42, 44.

सुन्दर काण्ड- 1, 8, 24, 25, 28, 42, 65, 72, 76.

युद्ध काण्ड - 98.

इन्द्रवज्रा[1]

इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग कई स्थलों में भोजराज करते हैं। यथा-दशरथ द्वारा विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण के भेजने के प्रसंग में, त्रिशंकु द्वारा विश्वामित्र की प्रेरणा से स्वार्गारोहण के प्रसंग में, राम राज्याभिषेक के समय प्रजा के हर्ष वर्णन में, राम के वन गमन के अवसर पर सीता के रथारोहण, सुग्रीव द्वारा सीता के आभूषणों को राम को दिखाये जाने के समय कई स्थलों में इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग कवि ने किया है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है -

'अस्ति प्रशस्ता जनलोचनानामानन्दसंदायिषु कोसलेषु[2] ।
आज्ञासमुत्सारितदानवानां राज्ञामयोध्येति पुरी रघुणाम्' ।।

बालकाण्ड - 34, 96.

अयोध्या काण्ड- 8, 42.

किष्किन्धा काण्ड- 10.

सुन्दर काण्ड - 73 75.

युद्धकाण्ड - 42.

1- स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । वृत्तरत्नाकर 3-30.

2- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 11.

स्त्रग्धरा [1]

स्त्रग्धा छन्द का प्रयोग जहाँ पर वायु आदि के आवेग आदि का वर्णन हो ऐसी अवस्था में स्त्रग्धरा का प्रयोग हृदयावर्जक होता है। भोज ने भी ऐसे ही प्रसंगों में समास युक्त पदावलियों के द्वारा इस छन्द का प्रयोग बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है। वीर हनूमान् के लंका नगरी की ओर वेगपूर्वक आगे बढ़ने के प्रसंग का अतीव ओजपूर्ण इस छन्द से युक्त पद्य इस प्रकार हैं -

'वक्ष:संघट्टचूर्णीकृतकनकमहाभित्तिचैत्योत्थधूल्या[1]
नक्षत्राणामकाले सरणिमरुणयन्वीरलक्ष्म्या समेतः ।
रक्ष:शूराख्यशारां क्षितितलफलके क्षेपणीयां हनूमा-
नक्षक्रीडां विधातुं दशमुखनगरीचत्वरे तत्वरेऽसौ' ।।

भोजराज जिस कथा को अत्यन्त संक्षेप से कहना चाहते हैं। उसके वर्णन में भी इस छन्द का प्रयोग कवि ने बड़ी कुशलता से किया है। इस छन्द से निबद्ध रचनाएँ चम्पूरामायण में इस प्रकार हैं -

बालकाण्ड - 95.
आरण्यकाण्ड - 15.
किष्किन्धा काण्ड - 24, 46.
सुन्दर काण्ड - 38, 59, 67

पृथ्वी [2]

जहाँ क्रोधपूर्वक आक्षेप या धिक्कार आदि का वर्णन हो ऐसे स्थल में प्रायः पृथ्वी छन्द का प्रयोग कविगण कुशलता से करते हैं। भोजराज इस छन्द का प्रयोग करते समय सर्वथा सावधान रहते हैं। आरण्य काण्ड का प्रारम्भ इस छन्द से होता

1- चम्पूरामायण सुन्दरकाण्ड श्लोक संख्या 38.

2- जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः । वृत्तरत्नाकर 3, 92.

है जिसमें कवि भोजराज ने राक्षसों के विनाश के लिए कटिबद्ध दण्डकवन में भ्रमणशील धनुषधारी श्रीराम का सुन्दर वर्णन किया है। जो इस प्रकार है -

'प्रविश्य विपिनं महत्तदनु मैथलीवल्लभौ[1]
महाबलसमन्वितश्चलितनीलशैलच्छविः ।
निशाचरदवानलप्रशमनं विधातुं शरै-
श्चचार सशरासनः सुरपथे तडित्वानिव' ।।

पृथ्वी छन्द का भोजराज ने धर्नुभंग के समय उसके टंकार के वर्णन में, वन वर्णन में, मयूर की केका ध्वनि के वर्णन में, हनूमान् द्वारा सीतान्वेषण के प्रसंग में, राक्षसों के संहार के समय युद्धादि की अवस्था में, पृथ्वी छन्द का अधिकाधिक प्रयोग प्राप्त होता है। चम्पूरामायण में इस छन्द से निबद्ध रचना का विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 105.
अयोध्या काण्ड - 32.
आरण्य काण्ड - 1.
किष्किन्धा काण्ड - 27.
सुन्दर काण्ड - 15.
युद्ध काण्ड - 8, 24, 28, 40, 41, 43, 65, 73, 79, 86, 105, 107.

हरिणी [2]

हरिणी छन्द का प्रयोग अधिकांशतः जहाँ उदारता का सुन्दरता का औचित्य विचार का प्रसंग हो वहाँ हरिणी छन्द की छटा हृदय हरिणी होती है। चम्पूरामायण में इससे निबद्ध पद्य युद्ध भूमि में मेघनाद द्वारा पराक्रम प्रदर्शन के औचित्य के वर्णन में विशेष रूप से हुआ है। इसका प्रयोग कम ही स्थलों में हुआ है।

1- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या - 1.

2- भवति हरिणीन्सौ भ्रौ स्लौ गो रसाम्बुधिविष्टपैः। वृत्तरत्नाकर 3-94.

इसका एक उदाहरण इस प्रकार है -

'यद्बुचितमहो मायाशीलस्य यद्भुजशालिनी[1]

सदृशमथ वा युक्तं नक्तंचरेन्द्रसुतस्य यत् ।

शतमखजितः शौर्यं यद्वानुरूपमथात्मन -

स्तदकृत रुषामन्दो मन्दोदरीतनयो रणे' ।।

अयोध्या काण्ड - 2.

युद्ध काण्ड - 75, 94.

प्रहर्षिणी [2]

प्रहर्षिणी छन्द का प्रयोग बहुत ही अल्प स्थलों में किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का आग्रह इस छन्द के प्रति न्यून ही रहा है। कौसल्या के प्रति ईर्ष्या, कैकेयी के विष खाकर मरने की धमकी के प्रसंग में, बालि वध के उपरान्त करुणार्द्र तारा के राम को ललकार के प्रसंग में ही इस छन्द का प्रयोग हुआ है -

'सत्योद्यां गिरमिहं निर्वहस्व मा वा[3]

सन्मानं भुवि न सहेय राममातुः ।

संस्थास्ये विषमुपभुज्य पश्यतस्ते

संनाहं त्यजसि न चेत्प्रवर्तमानम्' ।।

कारुण्यं निरवधि यत्तव प्रसिद्धं[4]

शीतांशोः सहजमिवातिहारि शैत्यम् ।

तत्सर्वं मनुकुलनाथ ! रम्यकीर्ते !

मत्पापात्कथय कथं त्वया निरस्तम्' ।।

1- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 75.

2- म्नौ ज्रौ गास्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम् । वृत्तरत्नाकर 3-70.

3- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 20.

4- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 14.

शालिनी [1]

शालिनी छन्द का प्रयोग भी न्यून स्थल में ही प्राप्त होता है। पहले प्रसंग में कैकेयी के कोपावस्था के वर्णन के प्रसंग में है। दूसरा वर्णन गुहराज निषाद द्वारा प्रस्तावित राज्य का राम के द्वारा अस्वीकार कर देने के प्रसंग में है -

'एवं भर्त्रा भर्त्सितार्प्याद्रचित्ता नाभूदेषा मन्थराक्रान्तवृत्तिः ।[2]
राकाचन्द्रे राजमानेऽप्यबाधं वीरुच्छन्ना चन्द्रक्रान्तस्थलीव' ।।

'तस्मिन्नित्थं प्रार्थनाथ जि सख्यौ प्रत्याचख्यौ रामभद्रः प्रियोक्त्या ।[3]
मातुर्वाक्याद्वल्कलेनावृतं मे गात्रं क्षात्रप्रक्रियां नार्हतीति' ।।

पुष्पिताग्रा[4]

पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग कवि ने कई स्थलों में किया है। दशरथ की मृत्यु के पश्चात् भरत के अयोध्या आने पर, अंगद द्वारा असुरवध के प्रसंग में अग्नियास्त्र से व्याकुल समुद्र का राम की शरण में उपस्थित होने के प्रसंग में इस छन्द से युक्त श्लोकों की सुन्दर योजना प्राप्त होती है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है -

'अतिचकितमतिः पुरैव पश्यन् पुरमयथापुरचारपौरवर्गम् ।[5]
न्यविशत् भरतः परीतदूतः पितृभवनं पितृकाननादनूनम्' ।।

चम्पूरामायण में इस छन्द से युक्त अन्य पदों का विवरण इस प्रकार है -

अयोध्या काण्ड - 62, 63.

आरण्य काण्ड - 5, 7.

1- शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः । वृत्तरत्नाकर 3-70.

2- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 23.

3- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 49.

4- अयुजि नयुगरेफता याकरो युजि च नजौ जरगाश्चपुष्पिताग्रा। वृत्तरत्नाकर 4-10.

5- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 62.

किष्किन्धा काण्ड - 7, 39.

युद्ध काण्ड - 25, 66, 95.

शिखरिणी [1]

शिखरिणी छन्द का सुमधुर प्रयोग सभी को रुचिकर होता है। चम्पूरामाय काव्य में, भरद्वाज द्वारा भरत सेना के स्वागत के समय वनवासी राम के स्वरूप के चित्र में, चन्द्रकला के समान प्रिय सुन्दर सीता के चरणों में, भरत के प्रणाम करने के प्रस में और हनूमान् द्वारा अशोक वाटिका के उजाड़ने के वर्णन में इस छन्द का प्रयोग क ने किया है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है -

'तथातिथ्यं चक्रे भरतबलभाजां तनुभृतां[2]
भरद्वाजः सोऽयं भ्रूकुटिभट कल्पाखिलसुरः ।
तपस्तप्त्वा घोरं दिवि सुमनसस्तत्फलभुजो
यथा तेषां तोषं क्षणमभिलषेयुर्मुनिकृतम्' ।।

इस छन्द से युक्त अन्य पद्यों का विवरण इस प्रकार है -

आयोध्या काण्ड - 77, 78

किष्किन्धा काण्ड - 26

सुन्दर काण्ड - 37

मन्दाक्रान्ता [3]

मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग वस्तुतः वर्षा प्रवास तथा विपत्ति के व के प्रसंग में ही उचित माना जाता है। भोज ने कुछ स्थलों में राम के विलाप के तो कुछ स्थलों में विष्णु के निवास स्थान स्वरूप पराक्रम आदि के वर्णन के प्रसं

1- रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलाग· शिखरिणी। वृत्तरत्नाकर 3-91.

2- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 76.

3- मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ तो गुरु चेत्। वृत्तरत्नाकर 3-95.

पृथ्वी के वैशिष्ट्य, मन्थरा के कुटिल हृदय आदि के प्रसंग में इस छन्द का प्रयोग कवि ने किया है। इसका एक उदहारण इस प्रकार है -

'सप्राणा चेज्जनकतनया किं न तिष्ठेत महयं[1]
हिस्रैः सत्वैर्न खलु निहता रक्तसिक्ता न पृथ्वी ।
गोदावर्यां पुलिनविहृतिं रामशून्या न कुर्या -
द्युक्तं नक्तञ्चरकवलनात् संस्थितासर्वथा सा' ।।

शेष श्लोकों का विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 13, 14, 15, 100, 23
अयोध्या काण्ड - 9
आरण्य काण्ड - 39
किष्किन्धा काण्ड - 4
युद्ध काण्ड - 15

रथोद्धता[2]

रथोद्धता छन्द का प्रयोग साहित्यकार विशेषतया चन्द्रोदय आदि के वर्णन में कहते हैं। कवि के लिए यह छन्द प्रिय रहा है। यहाँ तक कि अयोध्या काण्ड का प्रारम्भ एवं अन्त कवि ने इसी छन्द से किया है। इस छन्द के माध्यम से दशरथ के राज्य के सुख का अन्त में राक्षसों के विनाश के समय दण्डकावन में प्रवेश का वर्णन इसी छन्द के माध्यम से हुआ है। गर्भावस्था में कौसल्या का सौन्दर्य क्रुद्ध परशुराम का विनम्र भाव कैकेयी द्वारा दशरथ की भर्त्सना मतंग मुनि का क्रोध सब का वर्णन इसी छन्द में हुआ उदाहरणार्थ अयोध्याकाण्ड का प्रथम पद्य इस प्रकार है -

---

1- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 39.

2- स्यान्नराविह रथोद्धता लगौ। वृत्तरत्नाकर 3-39.

'गच्छता दशरथेन निर्वृति भूभुजामसुलभां भुजाबलात्[1]।
मातुलस्य नगरे युधाजितः स्थापितौ भरतलक्ष्मणानुजौ' ।।

इस छन्द से युक्त अन्य पद्य का विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 26, 113.

अयोध्या काण्ड - 1, 16, 86

किष्किन्धा काण्ड - 11

सुन्दर काण्ड - 54, 51

उपेन्द्रवज्रा[2]

उपेन्द्रवज्रा छन्द का स्वल्प ही प्रयोग हमें प्राप्त होता है। यह छन्द कौसल्या के गर्भावस्था के लक्षण वर्णन में रावण के द्वारा एकान्त में मन्त्रियों के परामर्श के वर्णन में इसका प्रयोग हुआ है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है -

'अपाटवात्केवलमंगकानां मनोज्ञकान्तेर्महिषीजनस्य[3] ।
शनैः शनैः प्रोज्झितभूषणानि चकाशिरे दौहृदलक्षणानि ।।

इस छन्द से निबद्ध अय पद्यों का विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 25

आरण्य काण्ड - 23

किष्किन्धा काण्ड - 41

सुन्दर काण्ड - 23

युद्ध काण्ड - 12

1- चम्पूरामायण अयोध्याकाण्ड श्लोक संख्या 1.

2- उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। वृत्तरत्नाकर 3.30, 31.

3- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 25.

द्रुतविलम्बित[1]

द्रुतविलम्बित छन्द अतीव कर्णप्रिय एवं हृदयावर्जक है। इसका प्रयोग प्राकृतिक वर्णन में अधिक होता है। कवि भोजराज ने भी इसका ऋतु वर्णन में ही प्रयोग किया है। हेमन्त ऋतु के वर्णन के प्रसंग में इस छन्द से युक्त यह उदाहरण सर्वथा श्लाघ्नीय है -

'करतलैरपचायमथेक्षणैरपचयं च वनेषु जनेषु च।[2]
सुमनसां मनसामपि यद्दिने विरचयन्ति विलोलविलोचनाः' ।।

इस छन्द से निबद्ध अन्य पद्यों का विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड - 24
आरण्य काण्ड - 3
किष्किन्धा काण्ड - 3
युद्ध काण्ड - 7।

मञ्जुभाषिणी [3]

मञ्जुभाषिणी छन्द का प्रयोग केवल युद्ध काण्ड में ही है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है -

'अभयागतो मदपयाति चेन्मुधा[4]
रघवो भवन्ति लघवो न किं सखे।
अनुजोऽयमस्तु तनुजोऽथवा रिपोः
करुणापदं हि शरणागतो जनः' ।।

1- द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ। वृत्तरत्नाकर 3-50.

2- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 3.

3- संजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी। वृत्तरत्नाकर 3-73.

4- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 18.

इस छन्द से निबद्ध अन्य पद्यों का विवरण इस प्रकार है -

युद्ध काण्ड - 57, 76, 92.

प्रमिताक्षरा [1]

प्रमिताक्षरा छन्द से युक्त पद्यों का स्वरूप युद्ध आदि के वर्णन में प्राप्त होता है। इसके युद्ध काण्ड में केवल चार ही उदाहरण हैं जो इस प्रकार हैं -

'अवकीर्य दाशरथिरश्रुझरैरनुजं पुलस्त्यतनुजं च शरै:[2]।
युगपद्दयधात्करूणवीररसौ युधि शोकहर्षशबलं च बलम्' ।।

'अनुनीय रावणिरथो विधुरं पितरं दधत्पृथुसमीकधुरम्[3]।
सरथी समेत्य सधनु: शरधीश्चलितश्चमूभिरभिदाशरथी ।।

इस छन्द से निबद्ध श्लोक इस प्रकार है -

युद्ध काण्ड - 64, 81.

तत्कुटक [4]

तत्कुटक छन्द का प्रयोग कवि ने वर्षा ऋतु के वर्णन के समय किया है जो वर्णन अतीव मनोहर है। इस छन्द से निबद्ध किष्किन्धा काण्ड में कवि की अकेली रचना है।

'रघुपतिचापघोषसमयो भवितेति किल[5]
व्युपरतमुद्भटं घनघटाजनितं स्तनितम् ।
श्वसितमरुदिभरस्य विजित: किल शान्तिमगात्
परिचितकेतकीकुटजनीपवन: पवन:' ।।

1- प्रमिताक्षरा सजससैरुदिता । वृत्तरत्नाकर 3-61.
2- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 50.
3- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 63.
4- हयदशभिर्नजौ भजबला गुरु तत्कुटकम् । वृत्तरत्नाकर 3-96.
5- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 32.

औपच्छन्दसिक[1]

यह छन्द मात्रिक छन्दों के अन्तर्गत आता है। कवि भोजराज ने इस छन्द का प्रयोग सीता द्वारा हनूमान् को श्रीराम के लिए अपना सन्देश देने के प्रसंग में किया है। इस छन्द से निबद्ध इस काव्य में कवि की यह अकेली रचना है -

'कुशरूपकुशेशयासनास्त्रं[2]
विजहौ वासविवायसे स वीरः ।
अथ तत्कृपया हृताक्षिमात्र -
श्चिरजीवी स दधौ यथार्थसंज्ञाम्' ।।

वंशस्थ[3]

वंशस्थ छन्द का प्रयोग कवि ने अंगद के द्वारा नारान्तक एवं हनूमान् के द्वारा देवान्तक वध के अवसर पर उसके वर्णन के प्रसंग में किया गया है। एक ही श्लोक इस छन्द में प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है -

'ममाथ शैलादथ वालिनन्दनो नरान्तकं संयति वानरान्तकम्[4]
हनूमता सोऽपि हतः सुरान्तकः पुरान्तकेनेवरुषा पुरान्तकः' ।।

तोटक [5]

तोटक छन्द का प्रयोग कवि ने लक्ष्मण और इन्द्रजीत के युद्ध के प्रसंग में किया है। जो इस प्रकार है -

---

1- पर्यन्ते यौ तथैव शेषमौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम् । वृत्तरत्नाकर 2-13.
2- चम्पूरामायण सुन्दर काण्ड श्लोक संख्या - 35.
3- जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ। वृत्तरत्नाकर 3-47.
4- चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या - 61.
5- इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्। वृत्तरत्नाकर 3-48.

'शतधारकठोरशिखविशिखःशतधा विरचय्य शरासगुणम्[1] ।
विदधे विबुधेशजित समरे हतसारथिमप्यथ दाशरथिः' ।।

आर्या[2]

भोजराज विविध छन्दों के प्रयोग के माध्यम से चम्पू काव्य की रोचकता बढ़ाने में अप्रतिम है सभी सुमधुर छन्दों की योजना इन्होंने अपने इस काव्य में करने का प्रयास किया है। आर्या छन्द का प्रयोग वस्तुतः नीति आदि प्रसंगों के वर्णन में प्रकृति के वर्णन के प्रसंग में अधिक उपयुक्त होता है। इसका एक ही पद्य है। जो वर्षा वर्णन के प्रसंग में भोजराज ने निबद्ध किया है -

'उपचितजीवनधारा सत्पथभाजो निरस्तसन्तापाः[3] ।
भूपा इव नवमेघाः पौरस्त्यमहाबलाकुलिताः' ।।

इन छन्दों में औपच्छन्दासिक, प्रमिताक्षरा, वंशस्थ, तोटक, मञ्जुभाषिणी ये छन्द वस्तुतः लक्ष्मणसूरि के द्वारा प्रयुक्त हैं क्योंकि युद्ध काण्ड की रचना इन्हीं के द्वारा हुई है। अन्यत्र इनका प्रयोग न होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि ये छन्द भोजराज के लिए रूचिकर नहीं थे।

दोष

काव्य रसास्वादजन्य अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है। इसीलिए, उसके प्रयोजनों में 'सद्यःपरनिर्वृतये' यह एक प्रयोजन भी स्वीकार किया गया है। काव्य के मुख्यार्थ का बाधक यदि कोई तत्व काव्य में आ जाये तो उसे दोष शब्द से अभिहित

1- चम्पूरामायण युद्धकाण्ड श्लोक संख्या 74.

2- यस्याः पादे प्रथमे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।

3- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक संख्या 25.

किया जाता है। वाच्यार्थ रस का आश्रय होता है तथा शब्दादि रस तथा वाच्यार्थ दोनो के लिये उपयोगी होते हैं अतः दोषों का सम्बन्ध वाच्यार्थ तथा शब्दादि दोनों से हो जाता है।

'मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्यः[1]।
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः'।

काव्य प्रकाश में शब्द दोषों की संख्या 16 मानी गयी है। श्रुतिकटु, च्युत संस्कार अप्रयुक्त, असमर्थ, निहतार्थ, अनुचितार्थ, निरर्थक, अवाचक, तीन प्रकार का अश्लील (ब्रीड़ा, जुगुप्सा, अमंगल, व्यञ्जक) संदिग्ध, अप्रतीत, ग्राम्य नेयार्थ क्लिष्टं, अविमृष्टविधेयांश, विरुद्धमतिकृत् इन दोषों में उपर्युक्त तेरह दोष पद एवं समास दोनों में पाये जाते हैं, किन्तु अन्त के तीन दोष समस्त पद में ही प्राप्त होते हैं।[2]

भोजराज एक परम विचारक समालोचक तथा उत्तम कवि थे। अपने काव्यों में यथावसर अपने प्रखर पाण्डित्य की स्थापना प्रसंगवशात् स्थापित करने का आवश्यक किया है। कहीं-कहीं इस प्रदर्शन का यदि सुन्दर प्रभाव प्राप्त होता तो विपरीत परिस्थिति में उनका पाण्डित्य प्रदर्शन विपरीत स्थिति को अर्थात् दोष को उत्पन्न कर देता है। इनके काव्यों में भी यथास्थल अनावधानतावश दोष हैं जिनका विशेष ध्यान देने पर ज्ञात होता है। अधिकांश दोष इनके पाण्डित्यप्रदर्शन के कारण ही हुए जिनके कारण अप्रयुक्त एवं क्लिष्ट आदि दोष उत्पन्न होते हैं। च्युत् संस्कार दोष का कहीं भी दर्शन नहीं होता क्योंकि भोजराज स्वयमेव न केवल एक व्याकरण वेत्ता थे, अपितु सरस्वतीकण्ठाभरण जैसे व्याकरण ग्रन्थ के प्रणेता भी हैं।

1- काव्य प्रकाश सप्तमोल्लास सूत्र संख्या 71 श्लोक संख्या 49.

2- 'दुष्टं पदं श्रुतिकटु च्युतसंस्कृत्यप्रयुक्तमसमर्थम् ।
निहतार्थमनुचितार्थं निरर्थकमवाचकं त्रिधाऽश्लीलम्' ।। 50 ।। काव्य प्रकाश
सन्दिग्धमप्रतीतं ग्राम्यं नेयार्थमथ भवेत् क्लिष्टम्।
अविमृष्टविधेयांशं विरुद्धमतिकृत् समासगतमेव ।। 51 ।। काव्य प्रकाश।

इनके चम्पूरामायण काव्य में जिन स्थलों में दोष का आभास होता है उनका क्रमशः विवरण इस प्रकार है।

पौराणिक मान्यता के अनुसार ईश्वर प्रलयावस्था में वट वृक्ष के पत्ते को आधार बनाकर सूक्ष्म रूप से एक छोटे बालक के रूप में उसमें शयन करता है -

'वटस्य पत्रस्य पुटे शयानम्'

कवि ने सोचा कि इस भाव को हम अपने कविता के माध्यम से कैसे चमत्कारिक बना सकते हैं और उन्होंने कौसल्या की गर्भावस्था में विद्यमान भगवान् विष्णु के स्वरूप का चित्रण उसी तात्पर्य को लेकर के कर दिया -

'न्यग्रोधपत्रसमतां क्रमशः प्रयाता-[1]
मंगीचकार पुनरप्युदरं कृशांगयाः ।
जीवातवे दशमुखोरगपीडितानां
गर्भकछलेन वसता प्रथमेन पुंसा' ।।

यहाँ पर कवि ने 'न्यग्रोधपत्रसमतां' के माध्यम से वटपत्र सादृश्यता की परिकल्पना कर अपने उद्देश्य की पूर्ति की किन्तु उक्त कल्पना एवं गर्भावस्था में कौसल्या का उक्त वर्णन क्लिष्ट दोष से युक्त है। वस्तुतः जिस काव्य का अर्थ बिना किसी कठिनाई का अनुभव किये स्वभाविक रीति से ही अर्थ ज्ञान प्राप्त हो तो वह उत्तम माना जाता है। प्रस्तुत स्थल में वट पत्र सादृश्य की परिकल्पना कौसल्या के उदर की एक कठिन परिकल्पना है। जिसे 'विष्णु वट पत्र में शयन करते हैं' इसका तथा 'वटपत्रसमम् स्त्रीणाम् उदरम् पुत्रदायकम्' इसका भी ज्ञान नहीं है वह इन अर्थों की संगति नहीं बैठा सकता फलतः उसे इस स्थल में अत्यन्त क्लिष्टता का सामना करना पड़ेगा। फलतः यह स्थल क्लिष्टता दोष से युक्त है।

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 27.

इसी तरह क्लिष्टता का एक अन्य दोष भी प्रेक्षणीय है। धर्मशास्त्र में कहा गया है कि ब्राह्मण पलाश एवं बिल्व के दण्ड को धारण करें और क्षत्रिय पीपल के दण्ड को धारण करें[1]। प्रस्तुत स्थल में ब्रह्मचारी वेश में विद्यमान श्रीराम को क्षत्रिय होने के कारण पीपल का दण्ड धारण करना चाहिए, परन्तु वे पीपल के दण्ड को धारण न कर विश्वामित्र के सम्पर्क में होने से पलाश दण्ड को धारण करते हैं -

'संक्रान्तवर्णान्तरगाधिसूनोः सम्पर्कपुण्यादिव रामभद्रः[1]।
क्षात्त्रक्रमात्पिप्पलदण्डयोग्यः पलाशदण्डाद्वतपाणिरासीत्' ।।

यह पद्य विरोधाभास अलंकार का सम्गुम्फन होने से अलंकार और भाव की दृष्टि से वैचित्र्ययुक्त एवं सुन्दर है। किन्तु क्लिष्ट दोष से युक्त भी है क्योंकि किस वर्ग विशेष को कौन सा दण्ड आदि धारण करना चाहिए, इसका ज्ञान उसी को है जो स्मृति आदि धर्मशास्त्रों का ज्ञाता हो। सामान्य व्यक्ति को इसका ज्ञान नहीं है। फलतः इस पद्य के अर्थावबोध में अवरोध होने से उक्त ज्ञान सामान्य पाठक को नहीं हो सकता। इसलिए यह पद्य भी क्लिष्टता दोष से युक्त माना जा सकता है।

कवि राजा भोज शब्दालंकारों का प्रयोग अत्यधिक करते हैं जिनमें यमक अलंकारों की वैचित्र्यपूर्ण योजना यदि किसी स्थलविशेष पर सराहनीय है तो कुछ स्थल में उसका प्रयोग अनावश्यक बुद्धि-व्यायाम से युक्त होने के कारण और शब्द वैचित्र्य से युक्त होने के कारण कुछ खटकता सा है। फलतः रसापकर्षक होने से ऐसे स्थल दोष युक्त कहे जा सकते हैं। बालि मृत्यु शय्या में पड़ा हुआ है। बाण का आघात उसे असहनीय पीड़ा से विचलित कर रहा है। वहाँ वातावरण को गम्भीरता का तिरस्कार करने वाली शब्दगुम्फन युक्त अलंकार प्रधान वाणी सहृदयों के मस्तिष्क को बुद्धि व्यायाम में लगाकर हृदय के ग्राह्य करुण रस की हानि कराने अधोलिखित गद्य अनुचितार्थ दोष से युक्त कहा जा सकता है।

---

1. चम्पूरामायण बाल काण्ड श्लोक संख्या 49.

'प्रशान्तासुरोऽयं प्रशान्तासुरभूत्'[1]

ऐसे ही जब तारापति के वियोग में विलाप करती है तो लम्बे समास का समायोजन तथा अनेक अलंकारों से युक्त लम्बे वाक्य भी करुण रस के अपकर्षक होने से अनुचितार्थ रस दोष से युक्त हैं।[2]

यमक अलंकारों के कारण अन्य स्थलों में भी रसापकर्षकता देखी जाती है। जैसे- श्रीराम के वियोग में व्याकुल होकर मूर्च्छित अवस्था में विद्यमान दशरथ चेतना प्राप्त करने के पश्चात् जब विलाप करते हैं -

'रामः काममुपाश्रयिष्यति वनं त्यक्त्वा धृतं कौतुकं[3]
लोकस्त्यक्ष्यति कौतुकं चिरधृतं तस्याभिषेके कथम् ।
धर्मापायभयेन वत्सविरहं वक्ष्यामि वक्ष्यामि किं
यावत्कल्पमकीर्तिरातिजननी जायेत जाये तव' ।।

उनके इस कथन में कौतुकम्-कौतुकम्, वक्ष्यामि-वक्ष्यामि जायेत-जायेत इन स्थलों में यमक की भरमार से करुण रस की ग्राह्यता में बुद्धि व्यायाम की प्रधानता होने से अवरोध होता है। अतः इसे भी अनुचितार्थ दोष से युक्त कहा जा सकता है।

किन्हीं-किन्हीं स्थलों में इन शब्दालंकारों से चारुता की वृद्धि के प्रयास में कवि ने अपने कृत्रिम प्रयास से जो अलंकारों की योजना की है उससे स्वाभाविक काव्य प्रवाह बाधित होता है जिसे काव्य दोष के अन्तर्गत माना जा सकता है। उनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

---

1- चम्पूरामायण किष्किन्धा काण्ड पृष्ठ 279.

2- हा सकलभुवनबहुभतबाहुबलगोलभगन्धर्वसिन्धुरपञ्चताकरणपञ्चाननदश मुखभुजभुजंगभोगनिरोधाहितुण्डिकायितबालवलय वालिन् कथं गतोऽसीति।
(पृष्ठ संख्या 280).

3- चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 14.

'तत्र सीताविवाहार्थममरैरपि दुष्करम् ।[1]
जनकः कल्पयामास धनुरारोपणं पणम्' ।।

'दशशतनयनेऽपि वीक्ष्यमाणे दशरथपुत्रसिषेविषैव जाता।
मनसिजशरभंगकारिवृत्तेर्मनसि मुने शरभंगनामभाजः' ।।[2]

'वृषस्यन्ती वृषस्कन्धं राघवं रावणानुजा।[3]
भूयः शूर्पणखा भेजे शूर्पकारातिबाधिता' ।।

कुछ ऐसे स्थल भी हैं जिनमें कवि ने अपने व्याकरण ज्ञान का अनावश्यक ही प्रयोग किया है। 'निर् उपसर्ग पूर्वक अय गतौ' धातु से बनने वाले प्रयोगों में 'र्' के स्थान में 'ल्' का भी विधान होने से निर्+अय-निल्+अय दोनों अवस्थायें प्राप्त होती हैं। लोक में 'गृह' के अर्थ में 'निलय' शब्द का ही प्रयोग प्राप्त होता है।

'जननीतिविहीनो में जननीति स धर्मवित् ।
निरयान्निरयाद्वीरो निरयादिव सानुजः' ।।[4]

प्रस्तुत पद्य में निरयात् का तीन बार प्रयोग है जिसमें एक का नरक, एक का गृह तथा एक का तिगन्त निरगच्छत् अर्थ में प्रयोग हुआ है। गृह अर्थ में इसका प्रयोग एक क्लिष्ट कल्पना के साथ-साथ इस अर्थ में अप्रसिद्ध प्रयोग कहा जा सकता है जिसे अप्रयुक्त दोष के अन्तर्गत स्वीकार किया जा सकता है।

अप्रचलित शब्दों के प्रयोग की एक परम्परा सी इनके इस चम्पूरामायण ग्रन्थ में देखने को मिलती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है-

---

1. चम्पूरामायण बाल काण्ड श्लोक संख्या 101.
2. चम्पूरामायण बाल काण्ड श्लोक संख्या 7.
3. चम्पूरामायण बाल काण्ड श्लोक संख्या 17.
4. चम्पूरामायण अयाध्या काण्ड श्लोक संख्या 71.

कृतकेतर -

वेद के लिए यद्यपि अनेक प्रसिद्ध शब्द हैं। किन्तु उन सभी को छोंड़करके भोजराज ने कृतकेतर शब्द का प्रयोग इस श्लोक में किया है-

'उच्चैर्गतिर्जगति सिद्धयति धर्मतश्चे[1]
तस्य प्रमा च वचनैः कृतकेतरैश्चेत् ।
तेषां प्रकाशनदशा च महीसुरैश्चै -
तानन्तरेण निपतेत् क्व नु मत्प्रणामः' ।।

इसमें 'कृतक' का अर्थ है अनित्य उससे इतर कहलायेंगे नित्य और नित्य वचन वेद के ही माने जाते हैं। इस प्रकार कृतकेतर शब्द का तात्पर्यार्थ वेद होता है। फलतः कृतकेतरैः वचनैः इस शब्द का वेद वाक्यैः यह तात्पर्यार्थ प्राप्त होता है। इस प्रकार वेद के विषय में उक्त रूप में कृतकेतर शब्द की योजना क्लिष्टत्व एवं अप्रयुक्त दोष से ग्रस्त है।

मलिम्लुच -

अपहरण कुशल के अर्थ में भोजराज ने 'तदनु जनकराजधानीं रामलक्ष्मणनिरीक्षण-कौतुकादनवरतपतितेन विकचकुवलयनिचयोपचीयमानमेचकमरीचिमलिम्लुचेनपौरनारीलोचन रोचिषा'।[2]

उक्त गद्य खण्ड में 'मलिम्लुच' शब्द का जो प्रयोग किया है वह भी एक अप्रसिद्ध शब्द है। अतः उसके प्रयोग से यह स्थल अप्रयुक्त दोष से ग्रस्त है।

वाडव -

'वाडव' शब्द का प्रयोग समुद्र अग्नि के लिए ही प्रसिद्ध है (वाडव वाडवानलः) फलतः वाडव शब्द का ब्राह्मण अर्थ में जो प्रयोग-

---

1. चम्पूरामायण बाल काण्ड श्लोक संख्या 2.
2. चम्पूरामायण बाल काण्ड श्लोक संख्या 87.

'सकलसरिद्वल्लभनि:शेषीकरणवाडववाडवप्रशस्तमपास्तसमस्ताशमप्युपगतदक्षिबाशं वृषैकतानजन्मानमपि कुम्भजन्मानं भगवन्तमगस्त्यमपश्यत्' ।[1]

इस गद्य खण्ड में दिया गया है। उसे अप्रयुक्त दोष के अन्तर्गत कहा जा सकता है। यद्यपि 'द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवा:' इस 'अमर कोष' के प्रमाण से वाडव शब्द ब्राह्मणवाचक है तथापि 'ब्राह्मण' अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रचलित न होने के कारण उक्त प्रयोग अप्रयुक्त दोष कहलायेगा।

शूर्पकाराति -

कामदेव के पर्यायवाची अनेक सुन्दर एवं सुलभ कई शब्द हैं जिनका प्रयोग अनेक कवि करते आये हैं। किन्तु भोजराज ने -

'वृषस्यन्ती वृषस्कन्धं राघवं रावणानुजा[2]।
भूय: शूर्पणखा भेजे शूर्पकारातिबाधिता'।।

इस श्लोक में कामदेव के लिए 'शूर्पकाराति' शब्द का प्रयोग किया है जो अप्रचलित शब्द है। फलत: उक्त स्थल अप्रयुक्त दोष से ग्रस्त है।

पुण्डरीक -

कोषकार 'पुण्डरीक' शब्द का प्रयोग 'श्वेत कमल' 'श्वेत छत्र' औषधि अग्नि दिग्गज व्याघ्र आदि अर्थों में मानते हैं -

'पुण्डरीक: सिताम्भोजे सितच्छत्रे च भेषजे[3]।
पुंसि व्याघ्रेऽग्निदिंनगे कोशकारान्तरेऽपि च' ।।

---

1. चम्पूरामायण आरण्य काण्ड पृष्ठ 212.
2- चम्पूरामायण आरण्य काण्ड श्लोक संख्या 17.
3- मेदिनी कोष।

तथापि कवि जगत में पुण्डरीक शब्द का सर्वाधिक प्रयोग श्वेत कमल या सामान्य कमल अर्थ में प्रसिद्ध है।

फलतः 'मुकुलितहृदयपुण्डरीका पुण्डरीकयूथपरिवृतसारंगांगनाभंगीमंगीकुर्वाण गीर्वाणतरुणीव शापबलाद्वसुधां प्रपन्ना जनकनन्दिनी चिन्तामेवमकरोत्'।[1]

इस स्थल में व्याघ्र के लिए 'पुण्डरीक' पद का प्रयोग अप्रयुक्त दोष से युक्त ही माना जायेगा।

रथांगविहंग -

'चक्रवाक' पक्षियों के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग कवियों के द्वारा किया गया है जिसमें कोक, चक्र, चक्रवाक, रथांगाह्वय आदि शब्दों के प्रयोग प्राप्त होते हैं। रथांगविहंग यह प्रयोग 'प्रतिकमलाकरं प्रखिंते विश्लेषवेदनापूर्वरंगे रथांगविहंगदीनक्रेंकारे, नक्षत्रमालालंकृते गगनमतंगजे'।[2]

इस स्थल में अप्रयुक्त दोष से युक्त ही कहा जायेगा। ऐसे ही अनेक शब्द के प्रयोग चम्पू रामायण में प्राप्त होते हैं, जो उन अर्थों में केवल कोष ग्रन्थों में ही दिखलायी पड़ते हैं। काव्यों में उनका प्रयोग अत्यल्प होने से वे सभी अप्रयुक्त दोष के अन्तर्गत ही स्वीकार किये जा सकते हैं। उनमें अग्नि अर्थ में आश्रयाश, सिंह अर्थ में काण्डीर हंस अर्थ में धार्तराष्ट्र आदि शब्द विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

रसदोष

दोषों के विचार में पद एवं वाक्यगत दोषों के अतिरिक्त भी रसनिष्पत्ति के कारणों आदि में विकलता आदि आने के कारण काव्यों में रस दोष होते हैं। जिनमें व्यभिचारी भावों रसों स्थायी भावों का ही अपने वाचक शब्दों से कथन (स्वशब्दवाच्यता) अनुभाव और विभाव की कष्ट कल्पना से अभिव्यक्ति प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण

1- चम्पूरामायण पृष्ठ संख्या 332.

1- चम्पूरामायण 316.

करना रस की बार-बार दीप्ति अनावसर में ही रस का विस्तार या विच्छेद करना अप्रधान रस का प्रधान से अधिक विस्तार करना, प्रधान रस को त्याग देना पात्रों का विर्पयय कर देना प्रकृति रस के अनुपकारक का कथन आदि रस में दोष माने जाते हैं[1]।

भोजराज ने यद्यपि अपने इस चम्पू रामायण काव्य की संरचना को प्रयत्नपूर्वक अदुष्ट बनाने का ही प्रयास किया है। तथापि अनावधानतावशात् कुछ रस दोष अवश्य ही आ गये हैं। विशेष करके करुण रस की अभिव्यक्ति में और रौद्र रस की अभिव्यक्ति में कई स्थलों में 'शोकेन' एवं 'कोपेन' इस रूप में स्थायी भावों का कथन होने से उक्त स्थल में रसदोष स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है-

'श्रुत्वा शक्रजितः सुतस्य निधनं शोकेन रक्षःपतेः[2]
क्लान्तं निःश्वसदश्रुपूरभरितं क्रदच्च फूत्कारि च।
कोपेनाथ विपाटलं कुटिलितभ्रूवल्लि वृत्तेक्षणं
जज्ञे दष्टघनौष्ठमट्टहसितोद्रिक्तं समस्तं मुखम्' ।।

'आलोक्य इनमनुजं हृदि शक्तिघाता-[3]
च्छोकेन विद्धहृदयः सुतरां स रामः ।
कोपेन चापमथ कुण्डलयांचकार
लंकापतेरपि ललाटलिपि विधाता' ।।

इस प्रकार इन दोनों पद्यों में शोक एवं कोप शब्द का उल्लेख होने से रस दोष स्पष्ट होता है।

1- काव्य प्रकाश सप्तम उल्लास - 60 से 62 श्लोक सूक्त संख्या 81.

2. चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 77.

3. चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 80.

चम्पूरामायण का युद्धकाण्ड लक्ष्मणसूरि के द्वारा विरचित होने से इस दोष से दुष्ट काव्य तो है, किन्तु भोजराज नहीं होते। क्योंकि चम्पू काव्य का यह अंश उनके द्वारा रचित नहीं माना जाता।

इसी प्रकार -

'साम्ये सत्यपि चारुशारमुभयोर्धानुष्कमायाविनो-[1]
विच्छन्नाननदर्शनात्समभवद्व्रीडां रणे रावणे' ।।

इस स्थल में 'व्रीडा' का अपने वाचक शब्द द्वारा कथन होने से व्यभिचारी भाव की स्वशब्दवाच्यता दोष है।

ऐसे ही बालकाण्ड में -

'लज्जावशादविशदस्मरविक्रियाभिस्ताभिर्वधूभिरतिवेलमवाप्तसौख्यान्।[2]
इक्ष्वाकुनाथतनयान् प्रथमो रसानां तारुण्ययोगचतुरश्चतुरः सिषेवे।।

'लज्जावशादवि' में भी 'लज्जा' - रूप व्यभिचारिभाव का स्ववाचक शब्द द्वारा कथन तथा 'प्रथमोरसानाम्' में रस के सामान्यवाचक 'रस' शब्द का कथन होने से उक्त स्थल में रस-दोष कहा जा सकता है।

ऐसे ही-

'सवल्कले दाशरथौ विषादादामीलिताक्षो यदभूद्वसिष्ठः ।[3]
तदेव जातं करणं महर्षेः काकुत्स्थयाथार्थ्यविलोकनस्य' ।।

इस श्लोक में 'विषाद' रूप व्यभिचारी भाव का कथन होने से उक्त स्थल में रस दोष होता है।.

---

1. चम्पूरामायण युद्ध काण्ड श्लोक संख्या 85.
2. चम्पूरामायण बाल काण्ड श्लोक संख्या 116.
3. चम्पूरामायण अयोध्या काण्ड श्लोक संख्या 39.

दोषों की काव्यों में अनेक प्रकार से गणना की गई है। जो किसी न किसी रूप में काव्य के सौन्दर्य के अपकर्षक्र दिखायी पड़ते हैं। तथापि शास्त्रकारों ने उन्हीं दोषों को अधिक हानिकारक माना है, जो सर्वथा रस के अपकर्षक माने गये हैं।

इसीलिए दोष के लक्षण में मुख्यार्थहतिर्दोषः यह लक्षण किया गया है। फलतः जो दोष च्युत् संस्कृति आदि रस के सर्वथा बाधक हैं वही दोष माने जाते हैं। जो रस के उत्कर्ष में सहायक बन जाते हैं ऐसे दोष होते हुए भी वे हानिकारक नहीं बन पाते।

गुण

काव्य में मुख्य तत्व रस को माना गया है इसीलिए आचार्य विश्वनाथ कविराज ने काव्य के लक्षण में रस को आत्मा मान करके वाक्यम् रसात्मकं काव्यं[1] काव्य का लक्षण स्वीकार किया है। स्वयं भोजराज ने अपने काव्य लक्षण 'निर्दोषं गुणवत् काव्यं अलंकारै अलंकृतम्म् रसानवितम् कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति'।[2] में रस का उल्लेख अन्त में करते हुए इसके प्राधान्य को स्वीकार किया है।

इसी प्रकार रस की प्रधानता सभी विद्वान स्वीकार करते हैं। प्रधानता को प्राप्त इस रस के जो धर्म हैं उन्हीं को गुण कहते हैं। ये गुण माधुर्य, ओज और प्रसाद भेद से तीन प्रकार के होते हैं।[3]

माधुर्य -

'चित्तद्रवीभावमयो ह्लदोमाधुर्यमुच्चते'[4] अर्थात् रति आदि के स्वरूप से अनुगत् आनन्द के उद्भूत होने के कारण सहृदय पुरुषों के चित्त के आर्द्र होने से जो आह्लाद

1- साहित्य दर्पण काव्य लक्षण प्रथम परिच्छेद।

2- सरस्वती कण्ठाभरण 1/2.

3- रसस्यांगित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यदयो यथा। गुणाः माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा। (साहित्य दर्पण अष्टम् परिच्छेद श्लोक संख्या 1)।

4- साहित्य दर्पण अष्टम् परिच्छेद।

होता है वही माधुर्य कहा जाता है। यह माधुर्य गुण संयोग, श्रृंगार, करुण, विप्रलम्भ, शान्त आदि रसों में क्रमशः अधिकाधिक प्राप्त होता है। इनमें शान्त रस में सर्वाधिक माधुर्य की उपलब्धि होती है -

'संभोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात्'[1] ।। 2 ।।

माधुर्य गुण जिन रचनाओं में होता है वे रचनाएँ प्रयाशः टवर्गभिन्न वर्गान्त्य वर्णों से युक्त समासं रहित अथवा छोटे-छोटे समास वाली होती हैं।[2]

भोज ने संयोग वियोग करुण एवं शान्त रस के परिपाक की अवस्था में जिन शब्दावलियों का प्रयोग किया है उनमें माधुर्य गुण की सम्प्राप्ति हमें होती है। जिसका एक सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है -

'नारायणाय नलिनायतलोचनाय
नामावशेषितमहाबलिवैभवाय।
नानाचराचरविधायकजन्मदेश -
नाभीपुटाय पुरुषाय नमः परस्मै' ।।[3]

प्रस्तुत पद्य भगवान विष्णु की स्तुति में प्रयुक्त है। इसमें शान्स रस का परिपाक होता है। पूर्वोक्त वर्णन के अनुसार ही जहाँ वर्गान्त्य वर्णों 'र ण' का सुन्दर प्रयोग है। वहीं अल्प समास वाले पदों का भी प्रयोग कवि ने बड़ी सुन्दरता से किया है।

माधुर्य गुण से युक्त अतीव मनोरम अनेक मधुर पद्य एवं गद्यों की रचना भी कवि ने की है। जिनका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है -

---

1- साहित्य दर्पण अष्टम् परिच्छेद।

2- मूर्ध्नि वर्गान्त्यवर्णेन युक्राष्टठऽढान्विना। रणौ लघू च तद्व्यक्तौ वर्णाः कारणतां गताः। आवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा मधुरा रचना तथा। साहित्य दर्पण अष्टम् परिच्छेद।

3- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 16.

बालकाण्ड

'इन्द्रनीलाचलोदञ्चच्चन्द्रिकाधवलस्मितः ।
वाचमूचे सुधाधारां मधुरां मधुसूदनः' ।। 22 ।।

'अथ वीचीचयच्छन्नदिगन्तगगनान्तरा।
शशांकशंखसंभिन्नतारामौक्तिकदन्तुरा' ।। 78 ।।

अयोध्याकाण्ड

'आनन्दबाष्पविसरो वदने प्रजाना-
मविर्बभूव मकरन्द इवारविन्दे।
रामस्य कान्तिमभिषेकदिने भवित्रीं
प्रक्षाल्य चक्षुषि वीक्षितुमादरेण' ।। 4 ।।

'अभूदराजकम्लानसद्गणं गगनांगणम् ।
आलोक्येव तदा शान्तमशेषं च महीतलम्' ।। 6। ।।

आरण्य काण्ड

'पत्र कान्ता न पश्यन्ति क्लान्ता विरहवहिनना।
निशावसानवेलां च वेलांच व्यसनाम्बुधेः' ।। ।4 ।।

'दशरथात्मजयुग्मनिरीक्षणक्षणसमाकुलबुद्धिरियं दधौ।
उभयकूलसमस्थितशाद्वलभ्रमगतागतखिन्नगवीदशाम्' ।। ।6 ।।

किष्किन्धाकाण्ड

'स तां सतां बुद्धिमिव प्रसन्नां पम्पां वियोगज्वरजातकम्पः ।
विलोकयंल्लोकनिविष्टकीर्तिशर्तिं रघूणां प्रवरः प्रपेदे' ।। । ।।

'यत्रं कान्तैर्वियुक्तानां युक्तानापि सुभ्रुवाम्।
दोलाकर्म वितन्वन्ति मनांसि च वपूंषि च' ।। 2 ।।

सुन्दरकाण्ड

'पक्षाभिघातरयरेचितवीचीचिमालात्पाथोनिधे:पवननन्दनविश्रमाय ।
उत्तुंगश्रृंगकुलकीलितनाकलोको मैनाकभूभृदुदजृम्भत संभ्रमेण' ।। 3 ।।

'तत्र तत्पत्रसंछन्नगात्रः पुत्रो न नभस्वतः ।
न्यग्रोधदलसंलीनजनार्दनदशां दधौ' ।। ।6 ।।

युद्धकाण्ड

'आनन्दमन्थरमनन्तरमाञ्जनेयादाकार्ण्य वृत्तिमनघां जनकात्मजायाः ।
दृष्टिर्दशाननरुषा परुषायमाणा बाणासनोपरि दधे प्रभुणा रघूणाम्' ।। 4 ।।

'ममाथ शैलादथ वालिनन्दनो नरान्तकं संयति वानरान्तकम्।
हनूमता सोऽपि हतः सुरान्तकः पुरान्तकेनेव पथा पुरान्तकः ।। 6। ।।

ओज -

ओज गुण काव्य में वीर, वीभत्स, रौद्र आदि रसों के परिपाक में तथा वीरादि रसाभाव में भी क्रमशः अपने पूर्व स्वरूप को प्रकट करता है। ओज गुण चित्र का विस्तार स्वरूप दीपतत्व ही है। इसमें वर्ग के आदि तथा तृतीय वर्ण से युक्त द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ण, ऊपर अथवा ठीक नीचे रेफ के साथ, अन्तिम वर्ण रहित टवर्ग के साथ शकार तथा षकार आदि का प्रयोग जहाँ हो वहाँ ओज गुण स्पष्ट होता है। यहाँ पर समासों का बाहुल्य होता है तथा वर्ण संघटना औद्धत्य युक्त होती है। यह चित्त को इतनी शीघ्रता से व्याप्त करता है जैसे सूखे ईंधन को अग्नि शीघ्रतया व्याप्त कर लेती है।[1]

1- ओजश्चितस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते ।। 4 ।।
वीरबीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु ।
वर्गस्याद्यतृतीयाभ्यां युक्तौ वर्णौ तदन्तिमौ ।। 5 ।।
उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफाष्टठडढैः सह।
शकारश्च षकारश्च तस्य व्यञ्जकतां गताः ।। 6 ।।
तथा समासो बहुलो घटनौद्धत्यशालिनी।
चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः ।।

चम्पूरामायण काव्य में वीर वीभत्स रौद्र आदि के रसों के परिपाक की अवस्था में ओज गुण से विशिष्ट अनेक रचनाएँ गद्य एवं पद्य के रूप में हमें प्राप्त होती हैं। ओज गुण विशिष्ट कवि की एक गद्य रचना उदाहरणार्थ - इस प्रकार प्रस्तुत है -

'एष मृगांकोऽपि मृगयायासपरिश्रन्तिविश्रान्त्यै ससंभ्रमं नमज्जनपरिवृते मज्जनगृहाभिमुखे दशमुखे तत्रत्यविचित्रतरशातकुम्भस्तम्भाग्रप्रत्यग्र प्रत्युप्तस्फटिकशिलाशाल-भञ्जिकापुञ्जकरतलकलितनिजोपलमयकलशमुखादच्छाच्छामविच्छिन्नधारामम्बुधारां निजकराभि-मर्शादापादयंस्तस्य प्रसादपिशुनानां सुनासीरचिरकांक्षतानां विंशतिविधवीक्षणानां क्षणमात्रं पात्रं भवति' ।[1]

इस गद्य रचना में रावण के ऐश्वर्य एवं उसके वीरता का विशिष्ट वर्णन है। इसी प्रकार रावण का प्रचण्ड योद्धा के रूप में सुन्दर वर्णन इस प्रकार है -

'यदाहुराहुरसनायितशस्त्रधारा[2]
दिक्पालकीर्तिमयचन्द्रमसं ग्रसन्ति।
यद्वैरिणां रणमुखे शरणप्रदायी
नवास्ति कश्चिदमुमन्तकमन्तरेण' ।।

ओज गुण विशिष्ट चम्पूरामायण काव्य में जो रचनायें हैं उनका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है -

बालकाण्ड

'वंशास्पृशा हृदयहारिफलान्वितेन
रामेरितेन सहसा सहसायकेन।
स्नेहार्दितेन निरगादनुरागिणीव
प्राणावलिर्हृदयतः पिशिताशनानाम्' ।। 52 ।।

---

1. चम्पूरामायण पृष्ठ संख्या 24.
2. चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 20.

'तिष्ठन्क्षत्रार्हवृत्तौ मुनिरगमदसावाश्रमं ब्रह्मसूनो-

रातिथ्यं तत्र लब्ध्वा निरवधि सुरभेः प्राभवादित्यवेत्य।

सा तेन प्रार्थिताभूत्तदनु मुनिवरे नाम्युपेते चकर्ष

क्रोशन्तीं तां तथैव प्रचुरबलजुषा कांदिशीको बभूव' ।। 95 ।।

अयोध्याकाण्ड

'मम सुरनरगीतख्यातिभिर्हेतिभिर्वा

दिवि भुवि च समानप्रक्रमैर्विक्रमैर्वा ।

नियतमपरिहार्या या जरा सा मदंगे

विकचकमलषण्डे चन्द्रिकेवाविरासीत्'।। 3 ।।

'अलघुचलितझञ्झावातनिष्पेषदोषा -

दशनिरिव कठोरः शीतलाम्भोदपंक्तौ ।

अपहृतजनसौख्यान्मन्थराभेदवाक्या -

दपि भरतजनन्यां हन्त दौर्जन्यमासीत्' ।। 10 ।।

आरण्यकाण्ड

'इह समदगजेन्द्रन्यस्तहस्तातिभारा -

त्पथि नियमितशाखः सल्लकीवृक्ष एषः ।

अभिनयति निकामं संगतोच्छ्रायहानि -

र्मुनिवरकरपाताद्भुग्नविन्ध्याद्रिमुद्राम्' ।। 9 ।।

'सीतामाहर्तुकामामसुलभविषयप्रार्थनोद्दामकामां

सौमित्रिः शस्त्रपाणिर्दशमुखभगिनीं तामनार्यो निवार्य ।

कामक्रोधात्मिकानामहमहमिकया प्रेखंतामायतानां

तस्याः श्वासानिलानामकुरुत तरसा मार्गविस्तारकृत्यम्' ।। 19 ।।

किष्किन्धाकाण्ड

'निर्भिन्नसालकटकोऽस्मि यथा तथा त्वं
पौलस्त्यसालकटकं युधि पाटयेति।
ऊचे शिलादलनजातरवेण नूनं
तस्मै वलीमुखवराय शिलीमुखः सः' ।। ।3 ।।

'महासमरसूचकः प्रतिदिशं मनोजन्मो
मयूरगलकाहलीकलकलः समुज्जृम्भते।
पयोदमलिने दिने परुषविप्रयोगव्यथां
नरेषु वनितासु वा दधति हन्त के का इति' ।। 27 ।।

सुन्दरकाण्ड

'तस्मिन्प्रदोषसमये सहसा हनूमा
न्कीर्तिच्छटाजवनिकामपनीय शत्रोः ।
आविर्बभूव समुनःपरितोषणाय
लंकाप्रवेशनवनाटकसूत्रधारः' ।। 92 ।।

'एषा राक्षससार्वभौमनगरी रक्षश्चमरक्षिता
तस्येदं सदनं सुवर्णशिखरं बिभ्राणमभ्रावलीम् ।
एतत्पुष्पकमाहृतं धनपतेरित्यादरान्मरुते -
स्तत्रादर्शयदिन्दुदीपकिरणप्रद्योतिताशा निशा' ।। ।3 ।।

युद्धकाण्ड

मुद्रामुदितजीवितां जनकजां मोहाकुलं राघवं
चूडारत्नविलोकनने सुचिरं निध्याय निध्याय च ।
प्रारेभे हृदि लक्ष्मणः कलयितुं पौलस्त्यविध्वंसनं
धीरः पूरयितुं कथां च विमलामेकेन काण्डेन सः ।। 3 ।।

अमी तटसमीपनिर्झरतरंगरिंगत्पयो -
जडीकृतपटीरभूरुहकुटीरसंसारिणः ।2
मनो विधुरयन्ति मे मलयमेखलामेदुरा
दुरासदवनप्रियतमारुता मारुताः ।। 8 ।।

प्रसाद -

जिन शब्दों का केवल श्रवण होने से ही अर्थ ज्ञान हो जाये अर्थावबोध के लिए किसी भी प्रकार का आयास न करना पड़े उन समस्त रचनाओं में तथा सभी रसों में प्रसाद गुण रहता है। प्रसाद अर्थ ही प्रसन्न होना है। माधुर्य एवं ओज गुण जहाँ रस विशिष्ट में ही प्राप्त होते हैं वहीं प्रसाद गुण का क्षेत्र सर्वत्र व्यापक है।

प्रसाद गुण युक्त रचना कवियों एवं समीक्षकों के द्वारा सर्वदा सराहनीय स्वीकार की गई है और वही रचना सहृदयों को शीघ्र रस परिपाक होने से आनन्ददायिनी भी होती है।

'अम्भोजसम्भवममुं बहुभिस्तपोभि-
राराधयन वरमवाप परैर्दुरापम् ।
तस्मादशेषभुवनं निजशासनम्य
लक्षीकरोति रजनीचरचक्रवर्ती' ।।

प्रसाद गुण युक्त जो रचनाएँ कवि की अधिक सशक्त हैं। उनका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है ।

बालकाण्ड

'आजानपावनक्षीरां वृषानन्दविधायिनीम् ।
श्रुतिप्रणयिनीं सोऽयमापगामाप गामिव' ।। 54 ।।

'पुरा मनोरमा नाम सुमेरोरभवत्सुता ।
गृहमेधी तयैवासीच्चक्रवर्ती धराभृताम्' ।। 55 ।।

अयोध्याकाण्ड

'अथ दशरथः पुत्रं रामं स्वतस्त्रिजगत्पतिं
स्वविषयमहीमात्रे कर्तुं पतिं विदधे मतिम् ।
भुवनभरणे कल्पं कल्याणभूधरमादरा -
त्स्वगृहपतलीधुर्यस्तम्भं विधातुमना इव' ।। 2 ।।

'आपूरयन्मंगलतूर्यघोषैराशावशावल्लभकर्णतालान्।

उज्जृम्भितः कोऽपि गिरामभूमिरुन्मस्तकः पौरजनप्रमोदः' ।। 8 ।।

आरण्यकाण्ड

'या तु नः पदवी सैषा यातुनश्चास्य लक्ष्मण।

यातुकामं तयैवेदं यातु कामं न हन्यताम्' ।। 4 ।।

'अयि कवलय माममू विमुञ्चेत्यतिकरुणं रुदतीमवेक्ष्य सीताम्।

अरमरचयतामुभावसिभ्यां पिशितभुजं भुजभारहीनमेनम्' ।। 5 ।।

किष्किन्धाकाण्ड

'कुशस्तम्भेऽपि संभूतं सौरभ्यमिव भासते ।

तपोवेषेऽपि सौन्दर्यं युवयोर्युवयोगिनोः' ।। 7 ।।

'पुष्मद्वार्तासुधास्वादलुब्धयोः श्रोत्रयोः सुखम्।

स्वयमेव ग्रहीतुं मे जिह्वा प्रवर्तते' ।। 8 ।।

सुन्दरकाण्ड

'सागरेण कृतज्ञेन तवाध्वश्रान्तिशान्तये।

मारुते प्रेरितोऽस्म्यद्य सौम्य विश्रस्य गम्यताम्' ।। 4 ।।

'त्वत्पित्राहं परित्रातः पूर्वं पर्वतभेदिनः।

तस्मान्नास्मि विपक्षोऽद्य सपक्षइति मां भज' ।। 5 ।।

युद्धकाण्ड

'वारिदादपि च रामनामतः पूरिता पुनरपांगधारया।

तत्क्षणं प्रति चचाल दक्षिणं वाहिनीशमखिलापि वाहिनी' ।। 5 ।।

'रहस्तदानीं रजनीचरेन्द्रः प्रहस्तमुख्यानिदमाबभाषे।

इदं तु मे वाञ्छितमीक्षितं वो वदन्तु यद्वैरिजनोचितं नः' ।। 12 ।।

रीति-

काव्य रचनाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका शब्द संगठन की होती है। यदि सुन्दर अर्थावबोधक चुने हुए शब्दों का प्रयोग प्रबन्ध में हुआ तो वही प्रबन्ध श्रोता एवं पाठकों के लिए सर्वथा ग्राह्य हो जाता है। यदि इसमें किसी भी प्रकार विगूढ़ता आ गई हो तो वह सहृदयों से उपेक्षित हो जाता है। इसी लिए शब्द संयोजन की काव्यों में प्रमुख भूमिका स्वीकार की जाती है। यही शब्द अथवा पद संघटना काव्य शास्त्रियों में 'रीति' नाम से प्रसिद्ध है। कुछ आचार्य[1] तो इसे (रीति) काव्य की आत्मा तक स्वीकार करते हैं। रीति का लक्षण आचार्य विश्वनाथ ने इस प्रकार किया है -

'पदसंघटना रीतिरंगसंस्थाविशेषवत् ।[2]
उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा' ।। 1 ।।

अर्थात् अंग संस्थान विशेष के समान पदों की संघटना को रीति कहते हैं और यह रीति रस आदि की उपकारिका मानी जाती है।

शास्त्रकारों ने रीति के सामान्यतया चार भेदस्वीकार किये हैं। वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली तथा लाटी या लाटिका माधुर्य व्यञ्जक वर्णों के द्वारा जहाँ ललित रचना हो या तो समास बिलकुल न हो अथवा अल्प मात्रा में दो या तीन पदों के ही छोटे-छोटे समास हों वहाँ वैदर्भी रीति होती है।[3] ओज गुण के प्रकाशक वर्णों के द्वारा आडम्बर युक्त पदबन्ध हों बड़े लम्बे-लम्बे समास हों वहाँ गौडी रीति होती है[4] जहाँ वदर्भी एवं गौडी रीतियों से अतिरिक्त वर्णों की संयोजना हो पाँच या छः पदों का समास हो और वह रचना ओज कान्ति आदि से समन्वित हो, मधुर हो, सुकुमार हो उसे पाञ्चाली

1- 'रीतिरात्मा काव्यस्यात्मा'।

2- साहित्य दर्पण नवम् परिच्छेद।

3- वैदर्भी चाथ गौडी च पाञ्चाली लाटिका तथा।
माधुर्यव्यञ्जकवर्णै रचना ललितात्मिका ।। 2 ।।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते। साहित्य दर्पण नवम् परिच्छेद।

4- ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः ।। 3 ।।
समास बहुला गौडी - साहित्य दर्पण नवम् परिच्छेद।

रीति कहते हैं।[1] वैदर्भी एवं पाञ्चाली दोनों के गुणों को धारण करने वाली जो रचना है उसे लाटी रीति कहा जाता है।[2]

काव्यों में इन चार रीतियों में से किसी न किसी की स्थिति अवश्य स्वीकार की जाती है क्योंकि कवि अपनी प्रतिभा विशेष से ऐसे ही शब्दों का संगठन करता है जिनसे उक्त चार स्वरूपों की स्थिति बनती है। फलतः इन चार में किसी न किसी की सत्ता होना आवश्यम्भावी है।

कवि एवं शास्त्रकार भोजराज ने सुन्दर अलंकार एवं गुण युक्त रसाभिव्यञ्जक शब्दों के द्वारा जो यह चम्पू काव्य रचना की है वह अत्यन्त रमणीय है। इसमें बहुत से ऐसे स्थल हैं जहाँ वैदर्भी रीति का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है।

'नूनं जनेन पुरुषे महति प्रयुक्त-[3]
मागः परं तदनुरूपफलं प्रसूते ।
कृत्वा रघूद्वहगतेः क्षणमन्तरायं
यद्भार्गवः परगतेविहतिं प्रपेदे' ।।

'अथ सङक्रान्तया जामदग्न्यशक्तिसम्पदा सम्पन्नं पन्नगपरिवृढभोगभुजाभिरामं राममविरलमालिंगय मूर्ध्न्युपाघ्राय दशरथः परिखयेव परिसरे परिसरन्त्या सरयूसरितानुविद्धामयोध्यां दारकान् सदारान् सादरमवलोकयन्तीनां पौरपुरन्ध्रीणां नीरन्ध्रितगवाक्षैः कटाक्षैः सौन्दर्यवञ्चितता पिञ्छैःपिञ्छातपत्रायमाणधवलातपत्रः प्रविवेश'।[4]

कवि ने अपने प्रतिभा का चमत्कार दिखलाते हुए- 'एष मृगांकोऽपि मृगयायासपरि-श्रान्तिविश्रान्त्यै ससंभ्रमं नगज्जनपरिषृते मज्जनगृहाहाभिमुखे दशमुखे तत्रत्यविचित्रतरशातकुम्भस्त-

---

1- वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः।
समस्तपञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मता ।। 4 ।।
साहित्य दर्पण नवम् परिच्छेद।

2- लाटी तु रीतिवैर्दर्भीपाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता। 5 पूर्वार्द्ध
साहित्य दर्पण नवम् परिच्छेद।

3- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या ।।5.

4- चम्पूरामायण बालकाण्ड पृष्ठ संख्या ।0।.

म्भाग्रप्रत्यग्रप्रत्युप्तस्फटिकशिलाशालभञ्जिकापुञ्जकरतलकलितनिजोपलमयकलशमुखादच्छाच्छाम-विच्छिन्नधारामम्बुधारां निजकराभिमर्शादापादयंस्तस्य प्रसादपिशुनानां सुनासीरचिरकांक्षितानां विंशतिविधवीक्षणानां क्षणमात्रं पात्रं भवति' ।[1]

'अथ वीचीचयच्छन्नदिगन्तगगनान्तरा ।[2]
शशंखसंभिन्नतारामौक्तिकदन्तुरा' ।। 78 ।।

'तरंगाकृष्टमार्तण्डतुरंगायासितारुणा।
फेनच्छन्नस्वमातंगमार्गणव्यग्रवासवा' ।। 79 ।।

'आविः शाखाशिश्वोन्नेयनन्दनद्रुमकर्षणा।
एकोदकनभोगार्गदिङ्मूढदिवसेश्वरा' ।। 80 ।।

'आवर्तगर्तसम्भ्रान्तविमानप्लवविप्लवा।[3]
नीलजीमूतशैवालकृतरेखा हस्तितटा' ।।

इस प्रकार श्लोक 78 से 81 तक बालकाण्ड में समस्त वाक्य समूहों की रचना कर पाञ्चाली रीति के प्रति भी कवि रागमुक्त नहीं है। फलतः वेदर्भी एवं पाञ्चाली से युक्त पद संघटनात्मक स्वरूप चम्पूरामायण काव्य का होने से इस काव्य में लाटी रीति का मानना अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है।

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड पृष्ठ संख्या 24.

2- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 78 से 80.

3- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या 81.

नवम अध्याय

उपसंहार

कवियों की परम्परा में कालिदास आदि महाकवि जैसे सरस पदबन्धों के रचना-चातुर्य में उत्तमोत्तम माने गये हैं वैसे ही काव्य जगत की एक नई विधा के साथ पोषित करने का महत्व प्राप्त हुआ है महाकवि भोजराज को, जिन्होंने गद्य एवं पद्य की अनुपम सरस रचना से संगम की वह पावन साहित्य भूमि तैयार की है जिसमें दोनों का आस्वाद सहृदयों को प्राप्त होता है। जिसे चम्पू शब्द से जाना जाता है (गद्य पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्याभिधीयते) कवि भोजराज शास्त्रों के भी न केवल प्रकृष्ट ज्ञाता थे, अपितु अनेक शास्त्रों के रचनाकार के रूप में भी इनका नाम आदर के साथ लिया जाता है।

भोजराज का कार्यकाल इतिहासकार सिन्धुराज की मृत्यु के पश्चात् लगभग 1010 ई0 में माना जाता है। इनके सिन्धुराज पिता थे। माँ का नाम सावित्री तथा पत्नी का नाम लीलावती था। इनके दो सन्तानें थीं एक पुत्र जिसका नाम जयसिंह था एवं एक पुत्री जिसका नाम भानुमती था। इतिहासकारों ने इनका सम्पूर्ण काल ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर दस सौ बासठ ई0 तक का स्वीकार किया है। ये परमारवंशी क्षत्रिय थे। इनके राजधानी के रूप में धारा नगरी प्रसिद्ध थी। जो विविध शास्त्र मर्मज्ञों एवं महाकवियों से सुसेवित थी। भोजराज के समय में उनके नगर में संस्कृत का ही पूरा साम्राज्य था। इसीलिए उनके काल में अनेक काव्यों महाकाव्यों एवं शास्त्रों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचनाएँ हुई स्वयं भोजराज ने ही ज्योतिष में चार गन्थों की, वैद्यक में तीन, शैव शास्त्र में चार नीति शास्त्र में एक, नाममालिका कोष, योग सूत्र टीका (राजमार्तण्ड, धर्मशास्त्र में दो, व्याकरण में शब्दानुशासन, वस्तुशास्त्र में समरांगण सूत्रधार, सुभाषित प्रबन्धु, सरस्वतीकण्ठाभरण, चम्पूरामायण आदि कुल 23 ग्रन्थों की रचना की थी)।

यद्यपि भोजराज ने अनेक ग्रन्थों की रचना की तथापि चम्पू नाम अपूर्व विधा का आश्रयण कर इन्होंने जिस काव्य रचना में अपने को प्रवृत्त किया वह अनुपम कृति चम्पू - रामायण थी। चम्पू - रामायण इनकी ऐसी कृति है, जिसे ये पूरा नहीं कर सके। सम्भवतः इसके लेखन के समय ही चेदिराज कर्ण एवं गुजरात के प्रथम राजा भीम ने भोजराज के ऊपर आक्रमण करके उन्हें वीरगति प्रदान किया था। इसी कारण यह काव्य ग्रन्थ पूरा नहीं हो सका। केवल सुन्दर काण्ड तक ही कवि की स्वरचित कृति है। आगे युद्धकाण्ड की सम्पूर्ति लक्ष्मण सूरि के द्वारा की गई।

इस तरह एक नूतन विधा की यह सरस कृति सम्पूर्णता को प्राप्त हुई थी।

चम्पू काव्य सहृदयों के आनन्दानुभूति का परम उपयुक्त साधन माना गया है। जहाँ इसमें पद्यों की सरस गेयता का प्रवाह है वहीं गद्यों की चमत्कृत पदबन्धता सर्वथा हृदयहारिणी है। इसमें पाठक गद्य एवं पद्य दोनों के आनन्द को प्राप्त करता है।

साहित्य दर्पणकार ने 'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्याभिधीयते' यह लक्षण चम्पू काव्य का स्वीकार किया है। चम्पू काव्य के लक्षण आचार्य दण्डी वागभट्ट आदि ने लक्षण किया है। ये सभी लक्षण चम्पू काव्य के पूर्ण स्वरूप प्रकट करने में पूर्णतया खरे नहीं दिखाई पड़ते। चम्पू काव्यों के स्वरूप को दृष्टि में रखकर यह कहा जा सकता है कि जिसमें वर्ण्य व्यक्ति के दीर्घ जीवन की अनेक घटनाओं का चमत्कार युक्त सरस माधुर्य आदि गुण गुम्फित सुमनोहर अलंकारों से युक्त सरस गद्यपद्योभयमय वर्णन हो वह कविकर्म चम्पू है।

चम्पू काव्य का आदि स्वरूप कृष्ण यजुर्विद से सम्बद्ध तैत्रीय मैत्रायणी तथा काठक संहिताओं में गद्य पद्यात्मक मिश्रित शैली के रूप में प्राप्त होता है। ऐसे ही अर्थवेद संहिता में ऐतरेय ब्राह्मण एवं ऐतरेय आरण्यक में, कठ प्रश्न मुण्डक आदि उपनिषदों में, श्रीमद् भागवत विष्णु आदि पुराणों में गद्यपद्यात्मक

शैली प्राप्त होती है। चम्पू काव्य का प्रथम पुष्प त्रिविक्रम भट्ट के द्वारा विरचित नलचम्पू काव्य प्राप्त होता है और इसके पश्चात् कई कवियों के चम्पू काव्य प्राप्त होते हैं। इन कवियों में त्रिविक्रम भट्ट के अतिरिक्त सोमदेव सूरि, आचार्य हरिश्चन्द्र, अभिनव कालिदास, भोजराज अनन्तभट्ट, अरहदास दिवाकर कर्ण्यपूर, जीवगोस्वामी, मित्र मित्र रघुनाथ दास शेष श्रीकृष्ण आदि के नाम उल्लेखनीय है।

इनके अतिरिक्त भी अनेक चम्पूकारों का विवरण हमें प्राप्त होता है जिनके चम्पू काव्य सहृदयों के मनोरंजक हैं। सम्प्रति दो सौ पैतालिस चम्पू काव्यों का उल्लेख प्राप्त होता है।

चम्पूरामायण चम्पू साहित्य की एक अनुपम कृति है जिसे आदि कवि वाल्मीकि ऋषि द्वारा प्रणीत आदि काव्य रामायण का आश्रयण करके रचा गया है। इसमें भगवान् की अखिल लीलाओं का सरस सालंकार गद्य एवं पद्यों के अनूठे विधान से चित्रित किया गया है। यद्यपि अन्य चम्पू काव्यों में निःश्वास, आश्वास, उच्छवास आदि के द्वारा प्रकरण विभाजन की पारम्परिक विधा रही है तथापि ऋषि बाल्मीकि को आदर्श मानने वाले भोजराज ने रामायण के समान ही काण्डो के माध्यम से अपने काव्य का प्रकरण विभाजन किया है। इसमें बालकाण्ड, अयोध्या काण्ड, आरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड एवं युद्धकाण्ड ये छः विभाग काण्डों के रूप में विद्यमान हैं। कवि भोज ने सुन्दर काण्ड तक की ही रचना की थी। युद्ध काण्ड की पूर्ति लक्ष्मण सूरि के द्वारा हुई। पं0 वेंकटेश ने चम्पू-रामायण के उत्तर काण्ड की भी रचना की थी, किन्तु न ही प्रकाशित हुई और न ही उसमें सर्वजन ग्राह्यता बन पाई। अतः चम्पू-रामायण का युद्ध काण्डान्त स्वरूप ही सहृदय रसिक जनों के द्वारा ग्राह्य रहा है। यह कवि की अन्तिम रचना मानी जाती है। इसीलिए इसमें सर्वथा चारुता स्पष्ट परिलक्षित होती है। रस अलंकार तथा व्यञ्जना आदि सभी की दृष्टि से यह रचना सर्वजन ग्राह्य है।

वाल्मीकि रामायण राम साहित्य की सर्वप्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट कृति मानी जाती है। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम एवं उनसे सम्बन्धित अनेक पात्रों का पूर्ण परिचय दिया गया है। जिसके कारण वाल्मीकि न केवल राम अपितु वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम आदि अनेक कथा पात्रों का समुचित विवेचन प्राप्त होता है। चम्पूरामायण काव्य वाल्मीकि रामायण के ही कथानक का मूलस्वरूप लेकर लिखा गया है। वाल्मीकि रामायण की कथानक को अपने कवित्व शैली में सुमनोहर स्वरूप प्रदान करते हुए न केवल सुन्दर सरस हृदयग्राही स्वरूप प्रदान किया, अपितु वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा कुछ नवीनता की भी ग्राह्यता चम्पू-रामायण में कवि भोजराज ने दिखलायी है।

वाल्मीकि रामायण में प्रत्येक कथा का क्रमशः सटीक वर्णन प्रस्तुत हुआ है। उसका प्रारम्भ ही बड़े ही करूणापूर्ण वर्णन से होता है। जहाँ से ही कथा का सूत्रपात होता है। कवि का -

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।[1]
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्' ।।

यह अलौकिक पद्य रामायण का प्रेरणा स्त्रोत होता है। जिस रामायण को नारद के निर्देशानुसार ब्रह्मा से अनुप्रेरित एवं अनुप्राणित हो महर्षि वाल्मीकि ने छः काण्डों में राम कथा की अवधारण की है और वैसी ही अवधारणा चम्पू काव्य की विधा से कवि भोजराज ने वाल्मीकि रामायण को आदर्श मानकर किया है। यद्यपि दोनों का कथानक एक है फिर भी समताओं के साथ-साथ अनेक विषमताएँ भी दृष्टि गोचर होती हैं। परन्तु वे विषमाएँ ही कवि भोजराज की अपनी मौलिकता की ओर इंगित करती है।

चम्पूरामायण काव्य व्यञ्जना की दृष्टि से भी जहाँ उत्तमता की स्थिति को प्राप्त करता है वहीं वक्रोक्ति औचित्य काकु आदि की दृष्टि से भी इसकी श्रेष्ठता सर्वमान्य है।

1- चम्पूरामायण बालकाण्ड श्लोक संख्या - 6.

चम्पू-रामायण काव्य में लगभग सभी पात्रों का वर्णन घटनाओं के माध्यम से सम्यक रीति से हुआ है। जिस कारण मुख्य पात्रों का जहाँ पूर्ण चरित्र-चित्रित होता है वहीं अन्य पात्रों का भी चरित्र यथासम्भव चित्रित हुआ है। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान् आदि पात्रों के चरित्र जहाँ पूर्ण उदात्तता को लिए हुए है वहीं दशरथ कौसल्या सीता आदि का चरित्र एक आदर्श को प्रस्तुत करता है। कैकेयी बालि एवं रावण आदि का चरित्र अपने परिणति के माध्यम से कदाचार को न अपनाने की शिक्षा देता है। ये सभी चरित्र किसी न किसी रूप में मानव मात्र के उपकारक होते हैं।

भोजराज कवि के अतिरिक्त काव्य शास्त्रकार भी थे। जिन्होंने सरस्वतीकण्ठाभरण नामक काव्यशास्त्र की रचना की और उसमें रसराज श्रृंगार को भी रसों से श्रेष्ठ मानते हैं। वाल्मीकि रामायण में कवि ने करुण रस की उत्कृष्टता स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। अतः वाल्मीकि रामायण का प्रधान रस करुण ही माना जाता है। परन्तु कवि भोजराज यद्यपि वाल्मीकि के कथानक के साथ-साथ अनेक वर्ण्य विषयों का भी आश्रयण किया, किन्तु रस प्रधानता के प्रश्न पर ये अपने सिद्धान्त का परित्याग नहीं कर सके और उसकी परिणति यह हुई कि चम्पू-रामायण का प्रधान रस करुण न होकर विप्रलम्भ श्रृंगार बन गया।

श्रृंगार के संयोग की अपेक्षा विप्रलम्भ का विस्तार कवि ने अधिक किया है। साथ ही प्रसंगानुसार अन्य सभी रस भी यथा क्रम में प्राप्त होता है।

इनमें करुण, वीर, शान्त, भयानक, अद्भुत, हास्य तथा बीभत्स आदि रसों की स्थिति यथा सम्भव प्राप्त होती है।

छन्दों की योजना में कवि सिद्धहस्त हैं इन्होंने चम्पूरामायण में अनेक सुगेय छन्दों का प्रयोग किया है - जिनमें अनुष्टुप, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी रुचिरा, उपजाति आदि अनेक छन्द प्रमुख हैं।

अलंकार काव्य के सौन्दर्य के अभिवर्धक माने जाते हैं। इसीलिए 'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते' यह परिभाषा अलंकारों की की जाती है। यतोहि शब्दार्थोभय काव्य माना जाता है। अतः अलंकारों के शब्द एवं अर्थ भेद से दो भेद माने जाते हैं। कवि ने शब्दालंकारों के साथ-साथ अर्थालंकारों की अतीव मनोहारी छटा बिखेरी है। शब्दालंकारों में जहाँ यमक, अनुप्रास, श्लेष, आदि अलंकारों का श्रुति मधुर प्रयोग किया है। वहीं अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक अतिशयोक्ति दृष्टान्त अर्थान्यास, सहोक्ति आदि में हृदयहारिणी योजना की है।

काव्य कितना ही प्रयत्न पूर्वक क्यों न रचा जाये कुछ न कुछ मानव मस्तिष्क जन्य दोष अनवधानता वश आ ही जाते हैं। जिसमें अनेक दोष काव्य के आत्मा रस के अपकर्षक हो जाते हैं। फलतः काव्य के आस्वादन में अल्पता आने की सम्भावना आती है। यद्यपि उसी अनवधानता के कारण कुछ दोषों की सत्ता यथाकथञ्चित चम्पूरामायण में दृष्टि गोचर होती है, किन्तु उनसे रसापकर्षकत्व रूप कार्य की सत्ता अत्यल्प ही प्रतीत होती है। माधुर्य रस प्रसाद गुणों की अधिकता वैदर्भी एवं पाञ्चाली रीति का अद्भुत संगम जिसमें है ऐसी गद्यपाद्योभय सम्वलित रामायणचम्पू नामक यह कृति अत्यल्प ही वे हृदय होंगे जिन्हें रस रंजित करने में असमर्थ होगी।

पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	सन	संस्करण	सम्पादक	व्याख्याकार
काव्यादर्श	आचार्य दण्डी	चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी	वि0 संवत् 2015			
काव्यानुशासन	आचार्य हेमचन्द्र	निर्णय सागर प्रेस बम्बई	1934			
काव्यालंकार	आचार्य भामह	चौखम्भा प्रकाश वाराणसी	1928	प्रथम		
काव्यालंकार	आचार्य रुद्रट	चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी	1966			
काव्यालंकारसूत्रवृत्ति	आचार्य वामन	चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी	1976			
काव्यप्रकाशप्रदीप		चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी	1982	द्वितीय		
जय प्रकाश प्रदीप उद्योत	नागेश भट्ट					
काव्यालंकार सूत्र वृत्तिः	वामन	राम लाल पुरी आलाराम एण्ड सन्स काशमीरी गेट, दिल्ली, 7	1954	प्रथम	डा0 नगेन्द्र	आचार्य विश्वेश्वर-सिद्धान्त शिरोमणि
काव्यमीमांसा	राज शेखर	चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी	1934	प्रथम	मधु सूचन मिश्र	
कुमारसम्भव	कालिदास ग्रन्थावली	अखिल भारतीय विक्रम परिषद काशी				
कुमारसम्भव चम्पू	श्री शंकरगुरुकुल	वाणी विलास प्रेस, श्री रंगम	1939			
गोपथब्राह्मण						
चम्पूरामायण का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन	डा0 छवि नाथ त्रिपाठी	चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी	1965	प्रथम		

पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	सन्	संस्करण	सम्पाद्दक	व्याख्याकार
चम्पूरामायण	आचार्य भोजराज	चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी	1956			टीकाकार- आचार्य श्री राम चन्द्र मिश्र
चित्रमीमांसा	श्री धरा नन्द विरचित (सुधा) संस्कृत व्याख्योपेता (श्रीमदप्पयदीक्षितविरचिता)	चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी	1971 वि0 संवत् 2028	प्रथम		
जीवन्धर चम्पू	हरिश्चन्द्र	चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी	1958	प्रथम		
जैमिनी उपनिषद ब्राह्मण						
विश्वगुणादर्श चम्पू	वेंकटाध्वरि					
तैत्तिरीय उपनिषद		गीताप्रेस गोरखपुर	1970	अष्टम्	हरिकृष्णादास गोयन्दका	
तैतिरीय संहिता		स्वाध्याय मण्डल पारडी	1957			
तर्कसंग्रह	अन्नमभट्ट	अक्षय वट प्रकाशन बलरामपुर हाउस इलाहाबाद	1988	प्रथम	डा0 अद्यप्रसाद मिश्र	
दशरूपक	धनञ्जय	साहित्य भण्डार मेरठ शिक्षा साहित्य प्रकाशक (रति राम शास्त्री अध्यक्ष)	1983	पंचम्	श्री निवास शास्त्री	

पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	सन्	संस्करण	सम्पादक	व्याख्याकार
ध्वन्यालोक	आनन्द वर्धन	ज्ञान मण्डल लि0 वाराणसी	1962			
नाट्यशास्त्र	भरतमुनि	चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी	1983			श्री बाबू लाल
निरुक्त	यास्क	मेहर चन्द्र लक्ष्मण दास प्रकाशन				छज्जू राम शास्त्री
नृसिंह चम्पू	दैवज्ञ सूर्य	वेंकटेश्वर प्रेस	संवत् 1949			
नव साहसांक चरित	पद्मगुप्त परिमल	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	1973			
			वि0सं0 2020			
पाइयलच्छी नाममाला	धनपाल	केसर वाई जैन ज्ञान मन्दिर पाटण	संवत् 2003			
पातञ्जलयोगसूत्र		भारती विद्या प्रकाशन वाराणसी	1963			
परमारराज वंश का इतिहास	डा0 डी0सी0 गांगुली	रेलेवे क्रासिंग सीतापुर रोड लखनऊ	1933			
प्रबन्ध चिन्तामणि	श्री मेरुतंगाचार्य	सिंधी जैन	1933	प्रथम	जिन विजय मुनि	
		ज्ञान पीठ शांति निकेतन बंगाल				
श्रीमद् भगवत्गीता		गीता प्रेस गोरखपुर				
भोज प्रबन्ध	बल्लाल	गणेश स्कूल बुक डिपो चौक	1963			
		फैजाबाद				
भोज प्रबन्ध		निर्णय सागर प्रेस बम्बई	1869			
महाभारत		गीता प्रेस गोरखपुर				

पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	सन्	संस्करण	सम्पादक	व्याख्याकार
मृत संजीवनी	हलायुध	काव्यमाला सीरीज	सं0 9।			
यशस्तिलक चम्पू		महावरी जैन ग्रन्थ माला वाराणसी	1960			
रघुवंश	कालिदास	निर्णय सागर प्रेस बम्बई	1925			
रसंगंगाधर	जगन्नाथ पं0 राय	चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी	सं0 2020			
राजतरंगिणी	कल्हण	पं0 पुस्तकालय वाराणसी				
राजमृगांग		गर्वनमेंट ओरयेण्टल सीरीज मद्रास	1952			
राजा भोज	श्रीयुत विश्वरेश्वर नाथ रेउ	हिन्दुस्तानी एकेडमी यू0पी0 इलाहाबाद	1932	प्रथम		
वाल्मीकि रामायण	गीता प्रेस गोरखपुर	वि0 2020	तृतीय			
वक्रोक्तिजीवित	कुन्तक	चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी	1967	प्रथम		श्री राधेश्याम मिश्र
विक्रमांक-देव-चरित	महाकवि विल्हण	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी	1984	द्वितीय		श्री हरगोविन्द शास्त्री
विश्वगुणादर्शचम्पू	वेंकटाध्वरि					
वृत्तरत्नाकर	श्री केदार भट्ट	चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस	1984			
वासवदत्ता		चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी	1954			
ऋुतबोध		निर्णय सागर प्रेस बम्बई	1928			
श्रृंगारप्रकाश	भोज	वाणी विलास प्रेस श्रीरंगम	1939			
संस्कृत कवि दर्शन	भोला शंकर व्यास	चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी	1955			

	लेखक	प्रकाशक	सन्	संस्करण	सम्पादक	व्याख्याकार
संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास	युधिष्ठिरमीमांसक	युधिष्ठिरमीमांसक बहालगढ़ जिला सोनीपत हरियाणा	1984	चतुर्थ		
संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	शारदा मन्दिर वाराणसी	1956			
संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	परमानन्द खत्री	लक्ष्मी बुक डिपो कलकत्ता				
संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास		कंशल प्रेस खुर्जा	1956			
ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर	ए. बेरीडल किथ					
ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर	एस.एस. दास गुप्ता					
समरांगण सूत्रधार		वास्तु-वांगमयप्रकाशनशाला शुक्ल कुटी फैजाबाद रोड लखनऊ	1965			
सरस्वती कण्ठा भरण हृदयहारिणी टीका के साथ	भोज	पी0ए0 रामस्वामी शास्त्री त्रिवेन्दम	1948		पी0ए0 रामस्वामी शास्त्री	
साहित्य दर्पण	विश्वनाथ	चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी	1933			
सुभाषित रत्न सन्दोह	अमितगतिकृत	निर्णय सागर प्रेस बम्बई	1903			
सुभाषितावली	वल्लभ देवकृत	बम्बई संस्कृत सीरीज	सं0 31 1886	द्वितीय	दुर्गाप्रसाद	
सुवृत्त तिलक	आचार्य क्षेमेन्द्र कृत	चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस सीटी	1933		दुर्गाप्रसाद और परब द्वारा सम्पादित	

A Concise History of Classical Sanskrit Literature.	Gauri Nath Shastri, Oxford University Press, 1960
A History of Sanskrit Literature.	A.A. Macdonell Landon, 1900.
A History of Sanskrit, Literature.	A.B. Keith Oxford University Press, 1953.
A History of Sanskrit Literature Vol. I	S.N. Das Gupta, University of Calcutta, 1962
A New History of Sanskrit Literature	Krishna Chaitanya, Asia Publishing House, Bombay, 1962.
A Sanskrit - English Dictionary	Monier - Williams, Oxford, 1956.
A Short History of Sanskrit Literature	Hans Raj Agrawal, M.L. Jain, Nai Sarak, Delhi - 6, 1963.
Berweulf and the Ramayana.	I.S. Peter, John Bate Sons and Danielesson Ltd., London, 1934.
Bhoja's Srangara Prakasa	V. Raghavan, Punarbasu Madras - 14, 1963.
Catalogus Catalogrum	T. Anyracht, Franz Steiner Verlag Gmbh Wieshbaden, 1962.
Early History of India	Vincent Smith Oxford, 1924.
History of Dharma Shastra, Vol. I	P.V. Kane, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, 1930.

History Mediaeval Hindu India, Vol. III	C.V. Vaidya, Poona, 1926.
History of Sanskrit Poetics	S.K. De, Luzacs and Co., London, 1923.
Manual of Ethics	Dr. J. Sinha, The Central Book Agency, Culcutta, 1952.
Outlines of the Hitory of Classical Sanskrit Literature	Vidyaratan Pandit S. Rangachar, Sanskrit Sahitya Sadana, Mysore, 1961.
Raja Bhoja	Shri Niwas Ayyangar, Banaras Hindu University.
Rajasekhara's Karpuramanjai.	Manmohan Ghosha, University of Calcutta, 1948.
Shalihotra of Bhoja	Edited by E.D. Kulkarni, Poona, 1953.
Survey of Sanskrit Literatuer	C. Kunhan Raja, Bharatiye Vidya Bhawana, Bombay, 1962.
The History of and Culture of Indian People	K.M. Munshi, Bharatiya Vidya-Bhawana, Bomabay.
The History of Indian Philosophy.	Oxford University Press, 1961.
The History of Sanskrit Poetics	P.V. Kane, Angre's Wadi, Girgaon, Bombay 4, 1951.

The Number of Rasas	V. Raghava, Adyar Library, Adyar, 1940.
The Sanskrit Drama	A.M. Keith, Oxford University Press, 1964.